भज निताई गौर राधेश्याम ।
जप हरे कृष्ण हरे राम ।।

नामाचार्य
श्रीपाद श्रीरामदास बाबाजी महाराज

श्रीरामदास बाबाजी महाराज
(लगभग ३० वर्ष की आयु में)

भूमिका

श्रीयुक्त जीवनकृष्ण दास जी कवि, साधक एवं दार्शनिक हैं। उनकी 'पूजार फूल', 'अर्घ व अंजलि', 'चेतनधारा', श्रीगुरु श्रीराम महिमा', 'लीलावली', 'कृपार दान', इत्यादि काव्य तथा गीत-काव्य रचनायें भक्तहृदय को प्रेमस्रोत में बहा देती हैं। उनका 'भालोबासार-सन्धान' (प्रेम सन्धान) एक अपूर्व दार्शनिक ग्रन्थ गद्य रूप में होते हुए भी कविता समान सुखदायक है। परम आराध्य श्रीमद् रामदास बाबाजी महाराज की जीवनी लिखने की क्षमता आपही में है क्योंकि १४ वर्ष की आयु से लगातार ४५ वर्ष तक उनकी कृपा एवं उनके मधुमय संग का सौभाग्य आपको ही मिला है। यह सभी को ज्ञात है कि श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामी जी की उक्तियाँ श्रीकृष्णदास कविराज महोदय द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत रचना का उपादान है। उससे तुलना किये बिना मैं कहने को बाध्य हूँ कि इस देश के धर्म एवं समाज-जीवन के ऊपर श्रीमद् बाबाजी महाराज ने जो अपार प्रभाव-विस्तार किया उसे भविष्य में लोग श्रीयुक्त जीवनकृष्ण दास महोदय जी की 'श्रीगुरु लीला कथा' पढ़कर जान सकेंगे।

पूज्यनीय ग्रन्थकार की रचना शैली मनोरम है। पाठ करते समय प्रत्येक घटना आँखों के सामने प्रत्यक्ष होती है। गंभीर अनुभूति के बिना ऐसी रचना सम्भव नहीं।

इस ग्रन्थ में पाठक को ग्रन्थकार के विषय में एक विशेष गुण का परिचय मिलेगा। ग्रन्थकार ने कहीं पर भी आत्म-प्रशंसा न करके वैष्णवोचित दैन्य के साथ अपनी त्रुटियों का ही उल्लेख किया हुआ है। इस ग्रन्थ से हमें एक महान् व आदर्श जीवन का मार्ग-दर्शन होता है।

श्रीविमान बिहारी मजूमदार
एम. ए., पि. आर. एस., पि. एच. डि.,
भागवतरत्न
बिहार विश्वविद्यालय के भूतपूर्व इन्स्पेक्टर
आफ् कालेजस्

□

भज निताइ गौर राधे श्याम ।
जप हरे कृष्ण हरे राम ।।

श्रीश्रीराधारमणो जयति—श्रीश्रीगुरुदेवो जयति

जय श्री रूप सनातन भट्ट रघुनाथ ।
श्रीजीव गोपाल भट्ट दास रघुनाथ ।।
एई छय गोसांइर करि चरण बन्द ।
जाहा हइते बिघ्न नाश अभीष्ट पूरण ।।

'श्री श्रीराम'

श्रीगुरु-लीला-कथा

श्रीगुरु श्रीराम संक्षिप्त महिमा

मेरा निवेदन

परम आराध्य श्रीश्रीगुरुदेव १०८ श्रीरामदास बाबाजी महाराज के श्रीचरण दर्शन का सौभाग्य मुझे तेरह वर्ष की आयु में हुआ। मैं तब स्कूल का विद्यार्थी था। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में मैंने गृहत्याग किया। दो वर्ष भ्रमण के पश्चात् उनका कृपाश्रय पाने की लालसा में श्रीधाम नवद्वीप में उनका सान्निध्य लाभ किया। तत्पश्चात् प्राय: पचास वर्ष तक उनकी मधुमय लीला दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त किया। उन्होंने अपनी अशेष लीलामाधुरी को मेरे निकट प्रकट करके मुझे कृत-कृत्य किया। उनकी सारी लीलाकथा मेरे मानसपट पर

अंकित है। मैं कुछ भी नहीं भूला हूँ और न ही भूल सकता हूँ। बीते हुए समय की लीला कथाएँ आज भी मुझे स्मरण हो रही हैं। उनकी लीलामाधुरी लिखकर मैं अपने को धन्य मानता हूँ। श्रीगुरुलीला कथा सभी के जीवन का आश्रय है। इसी कारण सभी को इस श्रीगुरुलीला कथा का उपहार देने की मेरी इच्छा हैं। आशा है पाठक इसे पढ़कर कृतार्थ होंगे।

जिनके प्रेम सिंचित नयनों से प्रेमामृत-धारा बराबर बहती थी, जिनके मुखमण्डल मे सदा मृदुमन्द मधुर हँसी की लहरें बहती थीं, श्री श्रीनिताइ गौर गुणगान से जिनके नयनों से अश्रुवर्षा होती थी, जिनका श्रीअंग अश्रु, कम्प, पुलक, हास्य, हुंकार आदि अष्ट सात्विक भावों से विभूषित रहता था; ब्राह्मण वैष्णव चरणयुगल में जो सर्वदा दण्डवत् प्रणाम करते थे।

समस्त देवदेवी की कृपा लाभ के निमित्त भूलुण्ठित होकर प्रणाम तथा प्रार्थना करते थे; जिनका गोस्वामी सन्तानों के चरणों में अचल अनुराग था, और आचार्य सन्तानगण भी जिनको 'रामदादा' का प्रीति-सम्बोधन देते थे; श्रीमन्महाप्रभु जी की पदांकित भूमि श्रीनवद्वीप, श्रीनीलाचल और श्रीवृन्दावन धाम जिनके हृदय में सर्वदा विराजते थे, एवं जिन्होंने व्याकुल हृदय से श्रीवृन्दावन धाम जाकर श्रीमन्महाप्रभु जी की श्रीवृन्दावन भ्रमण लीला कीर्तन से सबको प्रेमानन्द दान कर धन्य किया था।

रथ यात्रा के समय श्रीनीलाचल धाम में जो श्रीगौरांग लीला स्मरण करते हुए सहस्र-सहस्र भक्तों सहित रथ के आगे

और 'गम्भीरा' में कीर्तन के समय अश्रुधारा से सिक्त होते थे; श्री श्रीगुण्डिचा मार्जन लीला में भक्तों के साथ अपने हाथों से झाड़ू लगाते थे, श्रीश्रीटोंटागोपीनाथ में जाकर जो श्रीनिताइ-गदाइगौर लीला स्मरण कीर्तन में व्याकुल होकर रुदन करते थे, एवं उत्तम चावल से अन्न भोग लगाकर प्रसाद वितरण करने का सुप्रबन्ध करते थे; जो श्रीहरिदास ठाकुरजी के अन्तर्धान उत्सव में श्रीगौरांगप्रभु जी की भक्त-वात्सल्य लीला का स्मरण कर भिक्षा उत्सव करते थे; जो अपने श्रीगुरुदेव श्री-निताइ-गौर-प्रेम-पागल १०८ श्रीराधारमण चरणदास देव, बड़े बाबाजी महाराज के तिरोभाव उत्सव में लाखों से अधिक भक्तों को प्रसाद वितरण करते थे; जिनके चरणयुगल के दर्शनार्थ हजारों लोग आते थे, लाखों लोग जिनके श्रीचरणों का आश्रय लेकर और नाममन्त्र लाभ कर धन्य होते थे; जो श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी के दण्ड महोत्सव लीला में पानिहाटि जाकर वटवृक्ष के नीचे कीर्तन में अजस्र धाराओं से रुदन करते थे, उन परम भागवत मेरे श्रीगुरुदेव १०८ श्रीरामदास बाबाजी महाराज के अरुण चरण युगल में मेरा नित्य वास हो।

जब मैं स्कूल का विद्यार्थी था—तब मेरी तेरह वर्षकी आयु थी। उस समय श्रीबाबाजी महाराज मेरे निवास स्थान जशोहर जिले के मागुरा सबडिवीजन में, अपने दल सहित कीर्तन करने आये। मात्र दो ही दिन मैंने उनके अभय अरुण चरण युगल के दर्शन किये। उस समय श्रीबाबाजी महाराज की आयु सम्भवतः तीस वर्ष होगी।

उनकी अहैतुकी करुणा शक्ति के कारण मैं और अधिक

घर में न रह सका। कुछ दिनों के पश्चात् हो माँ, भाई, बहन और अन्य सम्बन्धियों की ममता छोड़कर मैं घर से निकल पड़ा और प्रायः दो—तीन वर्ष साधु-संगतिमें घूमनेके उपरान्त सदा के लिए उनके शीतल चरणों का आश्रय प्राप्त किया। उनकी कृपा से करीब पचास वर्ष का दीर्घकालीन मधुमय संग सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। आज भी मुझे उनकी सुदीर्घ दिन व्यापी संग सुख की मधुमय लीलाएँ स्मरण हैं।

श्रीगुरुदेव ने बंगला सन् १३६० में १८ अग्रहायण, वृहस्पतिवार, कृष्णा चतुर्दशी तिथि को बराह नगर श्रीपाठबाड़ी, आश्रम में 'नाम करो' यह अन्तिम आदेश प्रदान करते हुए और स्वयं नाम करते-करते नाम संकीर्तन में समाश्रित होकर अपनी अपार लीला का सम्वरण किया। उनकी करुणामयी लीला कथा का कोई भी अंश मैं नहीं भूला हूँ और न भूल सकता हूँ। उनकी पवित्र जीवन कथा मुझे अक्षरशः स्मरण हो रही है।

आज बंगला सन् १३६७ वैशाख मास में मैं अपने जीवन के सन्धि स्थल पर हूँ जहाँ मुझे उनकी कुछ लीलाएँ लिखने के लिये उनकी प्रेरणा मिल रही है।

श्रीगुरुदेव का चित्रपट मेरे सामने है। बैठे-बैठे देख रहा हूँ। उनकी अपार लीला माधुरी हृदयपट पर खिल रही है—कलम मेरे हाथ में है, लिखना आरम्भ किया है, १३ वर्ष की अवस्था से प्राप्त उनकी करुणा के दान के फलस्वरूप उनकी अशेष लीला कथाएँ मुझे स्मरण हो रही हैं। यहाँ उन्हीं के किंचित अंशों को लिपिबद्ध करने का प्रयास कर रहा हूँ।

श्रीगुरुदेव के अगणित भक्त हैं। इस श्रीगुरु-कथा का पाठ कर सभी सुखी होंगे। इसी आशा को लेकर मैं 'श्रीगुरुलीला-कथा' लिखने का यह प्रयास कर रहा हूँ जो पंगु के गिरिलंघन स्वरूप है। अतः सभी की कृपा वांछित है।

जय गुरु श्रीगुरु

श्रीगुरुचरणाश्रित—
जीवनकृष्णदास

□

जय गुरु, जय निताइ

अवतरणिका

इस ग्रन्थ में श्रीपाद रामदास बाबाजी महाराज की पवित्र लीला के वही अंश दिये गये हैं, जो ग्रन्थकार को अपने जीवन में प्रत्यक्ष हुए। श्रीपाद बाबाजी महाशय श्रीनित्यानन्द प्रभु की कृपाशक्ति लेकर पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे। ग्रन्थकार की आन्तरिक एवं अन्तिम अभिलाषा थी कि हिन्दी भाषी निताइ-गौर अनुरागी भक्तजनों को नामाचार्य श्रीपाद रामदास बाबा जी महाशय के विशुद्ध प्रेममय भजन मार्ग का; जिसका उन्होंने स्वयं जीवन में आचरण किया, किंचित् परिचय कराया जाये।

पूज्यनीय श्रीगुरुदेव श्रील जीवनकृष्णदास बाबाजी (ग्रन्थकार) ने दीर्घ ४५ वर्ष पर्यन्त श्रीपाद बाबाजी महाराज के साथ रहकर जिन लीलाओं का दर्शन किया, उन्हीं में से कुछ लीलाएँ इस ग्रन्थ में लिपिबद्ध की गई हैं। श्रीवैष्णव चरणदास जी के शब्दों में—'जिन्होंने श्रीगुरुदेव (श्रीपाद बाबाजी महाशय) का दर्शन, उनका मधुमय संग तथा उनकी कृपा का सौभाग्य प्राप्त किया है, परन्तु आज उनके अन्तर्धान से जो हताश हो चुके हैं, वे इस ग्रन्थ के पाठ से श्रीगुरुदेव का साक्षात् कार प्राप्त कर अपने को धन्य मानेंगे और जिन्हें दर्शन सौभाग्य नहीं मिला, जिनके हृदयको अदर्शन जनित व्यथा व्याकुल और अतृप्त कर रही है, इस ग्रन्थ को पढ़कर उनके हृदय की व्यथा प्रशमित हो जायेगी।

अतः प्रस्तुत ग्रन्थ में पूज्य गुरुदेव की उसी अभिलाषा को पूर्ण करने को चेष्टा की गई है। मूल ग्रन्थ तो अपने आप में परिपूर्ण है, परन्तु अनुवाद में जो भी त्रुटियाँ रह गई हों, आशा है कृपामय पाठक उन्हें गौण समझकर मूल ग्रन्थ के भाव को ही ग्रहण करेंगे।

इस ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद में उत्साह प्रदान करने के लिये तथा संशोधन करने के लिये श्रीयुत अवधबिहारी लाल कपूर श्रीवृन्दावन निवासी एवं श्रीगुरुचरणाश्रित मनमोहन भाई (दिल्ली निवासो) की मैं अत्यन्त आभारी हूँ।

जय गुरु, श्रीगुरु

श्रोगुरुचरणाश्रिता
बन्दना

□
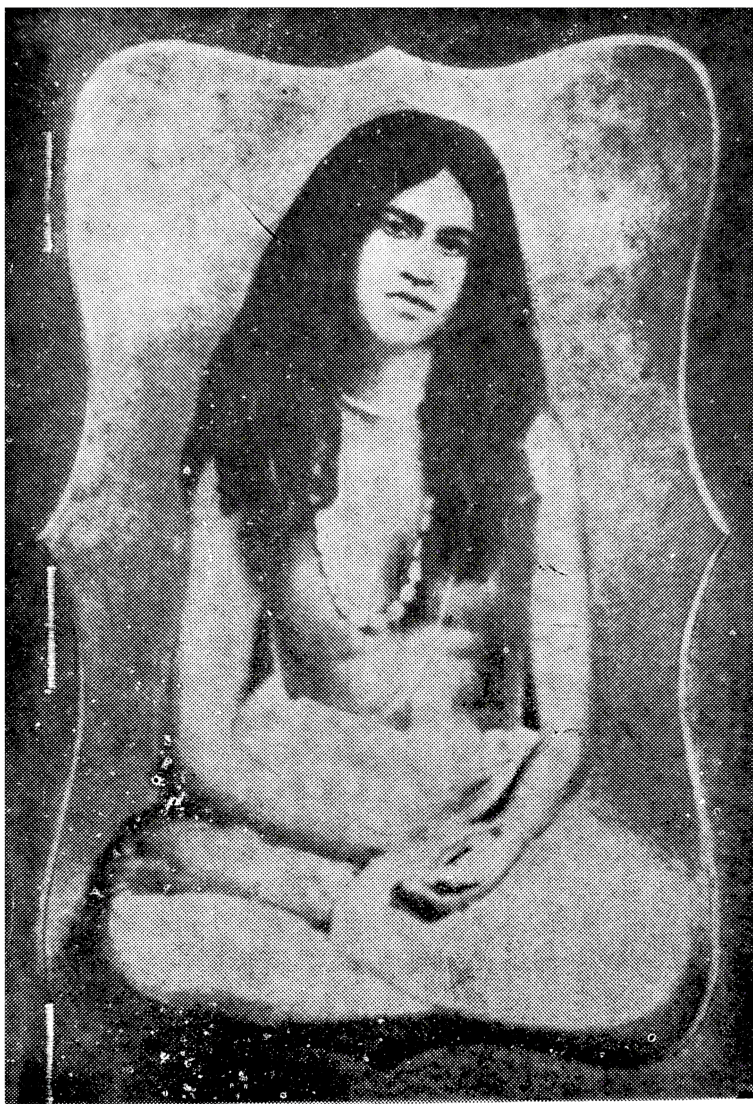
परमपूज्य श्रीजीवनकृष्ण दास जी महाराज
(लगभग २१ वर्ष की आयु में)

श्री गुरु-लीला-कथा

श्री श्री १०८ श्रीरामदास बाबाजी महाराज का जन्म-स्थान फरीदपुर (बंगला देश) है। उसके दक्षिण-पूर्व में बारह कोस दूर कुमारपुर ग्राम है जो मादारिपुर महकुमा, और थाना पालम के अन्तर्गत है। उनके पिता का नाम श्री दुर्गाचरण गुप्त एवं माता का नाम श्रीमती सत्यभामादेवी था। उनका निवास कुमार पुर गांव में था पर वे फरीदपुर शहर में रहते थे।

वे सत्यभामादेवी के अष्टमगर्भ से सन् १८७६ में उत्पन्न हुए, श्रीदुर्गाचरण गुप्त महाशय ने नवजात पुत्र का मांगलिक अनुष्ठान करवाया। पाँच मास के अन्त में पुत्र को लेकर वे शहर के घर से पहली बार गांव के निवास-स्थल में गये। यहाँ सन् १८७७ आश्विन मास में उनका अन्नप्राशन संस्कार करवाया गया।

उनके कुलदेवता श्री श्री अनन्त देव थे। श्री अनन्त देव एवं श्री नारायण का प्रसाद उनके मुख में दिया गया। नाम करण हुआ—श्रीराधिका रंजन गुप्त। कभी कभी इन्हें बीच-२ में फरीदपुर भी ले जाया जाता था। देखते देखते पाँच वर्ष बीत गये, राधिका ने स्कूल जाना शुरु किया, स्कूल की पढ़ाई उन्हें अच्छी नहीं लगती थी। शिशु अवस्था से ही उन्हें संगीत,

कीर्तन आदि से तीव्र अनुराग था। आठ वर्ष की अवस्था में ही वे श्रुतिधर के रूप में प्रसिद्ध हो गये जो कुछ भी वे सुनते वह उन्हें तुरन्त याद हो जाता। भगवत्लीला का अभिनय-दर्शन उन्हें बहुत प्रिय था। श्री राधिका बड़े हो गये। अपूर्व प्राणस्पर्शी था उनका कीर्तन;कीर्तन के कारण ही उन्होंने परिव्राजक कृष्णानन्द स्वामी जी का दर्शन और कितने ही साधु वैष्णव, भक्तों का संगलाभ किया। उनके मधुर कण्ठ का अपूर्व संगीत सुनने के लिये बहुत संख्या में लोग दूर दूर से आते थे। इसी तरह उनकी किशोर अवस्था व्यतीत हो गई। जब वे स्कूल के विद्यार्थी थे उन्हें श्रीजगद्बन्धु-सुन्दर के दर्शन प्राप्त हुए। तभी से वे संसार के प्रति विरक्त हो गये। वे श्रीजगद्बन्धु सुन्दर, जय निताइ, रमेश बाबु इत्यादि के सङ्ग रहने लगे तथा अन्त में श्रीधाम पुरी के बड़े बाबा महाराज (श्री राधारमण चरण दास) का दर्शन श्री नवद्वीप धाम में पाकर सदा के लिये उनके चरणों में आत्म-समर्पण कर दिया। तभी से सब लोग उन्हें श्रीरामदास कहकर पुकारने लगे एवं वे कीर्तन करते हुये देश-विदेश भ्रमण करने लगे।

उनकी अशेष लीला कथा मैं पूर्ण रूप से नहीं जानता उनकी पवित्र जीवनी "चरित्रमाधुरी" नामक ग्रन्थ में प्रकाशित हुई है। मुझे किशोर अवस्था से ही उनका मधुमय संग मिला। उनकी अपार करुणा एवं महिमामय लीला मुझे भली प्रकार स्मरण है। उनकी अपार करुणा तथा असीम लीला-कथा को किंचित मात्र ही मैं जानता हूँ। "चरित माधुरी" ग्रन्थ पढ़ने से ही पाठक उनकी अपार लीला के विषय में जान सकते हैं। उनकी विचित्र लीला का वर्णन कौन कैसे करे? उनकी

जिन लीलाओं के दर्शन करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। उसी के कुछ अंश इस ग्रन्थ में उपहार स्वरूप दे रहा हूँ।

मेरी जन्मभूमि मागुरा (बंगला देश) है। वह जशोहर जिले का एक सबडिवीजन है। किशोर काल में मैंने वहीं पर श्रीगुरुदेव के श्रीचरण कमल दर्शन का सौभाग्य प्राप्त किया। अत: मेरा जन्म स्थान, मेरी बाल्यावस्था की बातें और उनकी अनुपम कृपा किस रूप से मेरे जीवन में सिंचित हुई यही इस ग्रन्थ में मैं लिखूँगा। धन्य है मेरी जन्मभूमि जहाँ मुझे उनके चरण कमल का प्रथम दर्शन एवम् उनका पत्थर को भी पिघलाने वाला कीर्तन सुनने का सौभाग्य मिला। श्रीपाद बाबाजी महाराज का दर्शन और करुणा लाभ का सौभाग्य मेरी बाल्यावस्था में हुआ, इस कारण मैं अपने बाल्य काल की कुछ घटनायें लिख रहा हूँ।

१३ वर्ष की आयु में मैंने यज्ञोपवीत धारण किया—मैं तब नवीन ब्रह्मचारी था। ब्राह्मण गण ११ दिन में हविष्यान्न करके ब्रह्मचर्य का पालन समाप्त कर देते हैं। माँ से मैंने सुना था कि प्राचीन काल में ब्राह्मण गण ३० वर्ष तक गुरुगृह में रहकर ब्रह्मचर्य पालन करते थे और गुरु सेवा के पश्चात् गृहस्थ आश्रम को ग्रहण करते थे। यह सुनकर मैंने बदन में तेल लगाना छोड़ा, केश रखना शुरु किया और नियमित गायत्री जप तथा हविषान्न (घृत सिक्त चावल) का भोजन करना शुरु किया। और इसी कारण स्कूल के साथी मुझे साधु-२ कहकर कर मेरी हँसी उड़ाते थे। मैं मिडिल कक्षा में पढ़ता था तथा नाम मात्र को ही स्कूल जाता था। घर लौट कर "श्री गौरांग" नाम का एक ग्रन्थ मन लगाकर पढ़ता था,

श्रीमन् महाप्रभु की जीवनी पढ़ने की वासना एक विशेष कारण से मन में उठी थी।

एक दिन घर में एक भिखारी वैष्णव आए उनके साथ एक भिखारिन भी थी। माथे पर तिलक, कण्ठ में तुलसी की माला देख कर लोग उस पर व्यंग कसने लगे—वैष्णव होकर स्त्री को सङ्ग लिये क्यों फिर रहा है ? भगाओ इसे। मेरे साथी उनको घर से निकालने का प्रयत्न करने लगे। वे बहुत व्यथित हुए और दीर्घश्वास लेकर बोले—"हा निताइ ! तुम बिन हम लोगों का और कोई नहीं है। हे दीनबन्धु ! हे पतितपावन ! कृपा करो जिससे हम तुम्हें न भूलें।"

उनकी आर्त पुकार सुनकर मैंने साथियों को रोका और उन्हें बैठाकर कहा—"एक पद सुनाओ तो भिक्षा दूँगा।"

वैष्णव-वैष्णवी मेरी बात सुनकर प्रसन्न हो गये और यह गीत गाना शुरु किया—

"माटिते चाँदेर उदय, के देखबि आए
एमन युगल-चाँद केऊ देखिसनि देखबि नदीयाए ॥
हेरिये गौरांग चाँदेर मुख शशि।
लाजे गगन चांद पड़े खशि ॥
ए चाँद षोलो कलाय पूर्ण दिवानिशि।
हेरे पाप ताप तमोराशि दुरे पलाय ॥
यज्ञ सुत्रे किवा शोभे गला।
तुलसी माला करे हेला दोला ॥
राधा प्रेमे होये भोला।
आपनि काँदिये गोरा जगत काँदाए ॥

अनुराग कलंक हृदय पोरा,
पीत धरा त्यजे कौपीन परा,
राधा प्रेमे सदा बहिछे धारा,
आपनि भासिए गोरा जगत भासाए ॥ इत्यादि

धरती पर युगल चन्द्रमा (निताइ गौर) उदय हुए हैं, अगर तुम देखना चाहो तो नदिया धाम में आओ। गौरांग सुन्दर के षोडश कला पूर्ण मुख चन्द्रमा के दर्शन करके आकाश का चाँद लज्जित हो रहा है। इस चन्द्रमा के प्रकाश से पाप, ताप रूपी अन्धकार दूर हो रहा है। श्री अङ्ग पर यज्ञोपवीत एवं तुलसी माला दोलायमान हो रहे हैं। राधा भाव में विभोर होकर गौर सुन्दर स्वयं क्रन्दन करते हुए सबको रुला रहे हैं। उनका हृदय श्यामानुराग के कलक से परिपूरित है। पीताम्बर का त्याग करके वे कौपीन धारण किये हुए हैं। राधाभाव में विभावित होकर उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु धारा प्रवाहित हो रही है जिसमें वे स्वयं डूबकर समस्त संसार को डुबो रहे हैं।

मैंने उस वैष्णव से पूछा—आप एक स्त्री को साथ लेकर वैष्णव के वेश में क्यों भिक्षा करते हैं। वे सजल नयन, निष्कपट भाव से बोले—"मैं नीच जाति का था। और यह भी नीच जाति की थीं। हम एक ही गांव में रहते थे। दैववश इसके साथ मेरा प्रणय हो गया। ग्रामवासियों ने हमें गाँव से निकाल दिया। हम किंकर्तव्य-विमूढ़से होकर आश्रय ढूँढने लगे। हम पतितों को भला कौन से धर्म में आश्रय मिलता? हमने सुना है–निमाइ चांद एवं निताइ चांद पतितबन्धु और पतित-पावन हैं। इसलिये उन्हीं के चरणों का आश्रय लेकर

हम नवद्वीप धाम आये और कंगाल भिखारी के वेश में पतित बन्धु का गुण गान करते हुए द्वार-द्वार पर भिक्षा माँगने लगे।" उनका यह निष्कपट उत्तर सुनकर मैं मुग्ध हो गया। उन्हें भिक्षा दी और वे अन्यत्र चले गये।

मनुष्य और अपने दोषों का वर्णन ऐसी सरलता से करे बलिहारी निताइ चाँद और श्रीमन महाप्रभु जी की करुणा की। दान करते समय वे पात्रापात्र का विचार नहीं करते। उनकी करुणा की अभिव्यक्ति देखकर मैं गौरांग चाँद को जानने के लिये उनकी जीवनी का सन्धान करने लगा। स्कूल के पुस्तकालय से "श्री गौरांग" एवं "अमिय निमाइ चरित" ला कर पढ़ने लगा और क्रमशः उनके जीवन तथा लीला माधुरी की ओर आकृष्ट होने लगा।

अपने जीवन के उस महान-क्षण में मैंने उन वैष्णव-वैष्णवी के मुख से निताइ-गौर का नाम सुना। उन्हीं की करुणा से मैंने निताइ-गौर प्रेम से उन्मत्त अपने श्रीगुरुदेव श्री श्री १०८ श्रीरामदास बाबाजी महाशय का संग लाभ किया। (हाय हम लोग प्रायः इन सब भिखारी वैष्णवों से घृणा करते हैं।)

मैं नँवी कक्षा में चढ़ा। नाम मात्र को ही स्कूल जाता था। श्री गुरुपद मित्र नामके हमारे एक अध्यापक थे। वे मुझसे बहुत स्नेह करते थे। उनका सदुपदेश एवं मधुमय सङ्ग पाकर मैं अपने को सर्वदा धन्य समझता था। मेरे बड़े भाई श्री नरेशचन्द्र चट्टोपाध्याय, दूसरे भाई श्री प्रभासचन्द्र चट्टोपाध्याय एवं तीसरे भाई श्री हेमचन्द्र चट्टोपाध्याय-सभी मुझे उस समय बहुत उपदेश देते थे। श्री श्यामाकान्त सरकार

महाशय हमारे स्कूल के मुख्याध्यापक थे। वे सप्ताह में एकदिन छात्रों को लेकर हरिनाम कीर्तन करते थे। मैं चुपके से सुनने जाता था। घर लौटने पर चाचाजी डांटते थे, कभी कभी मार भी पड़ती थी। मेरा जीवन इसी तरह बीत रहा था। प्रह्लाद जी का चरित्र पढ़कर संध्या के समय खुले मैदान में जाकर "हे हरि, दर्शन दो" कहकर रोता था। रात अधिक होने पर डरते डरते घर लौट आता था। इस कारण घरवाले मुझसे रुष्ट हो गये। एकदिन सर्दी के समय रात के १० बजे जल्दी-जल्दी घर लौट कर चुपके से रजाई ओढ कर सो गया। उसी समय कोई आकर मुझे लाठी से पीटने लगा क्रोध से अभिभूत होकर कहने लगा— पढ़ाई लिखाई कुछ नहीं बस "हरि दर्शन दो" कहकर रोना! आगे से पढ़ाई छोड़कर ऐसे करेगा तो मार-मारकर हड्डी तोड़ दूंगा। माँ ने आकर उन्हें सान्त्वना दी और कहा—"वह छोटा है, उस पर इतना शासन क्यों? उसने कोई अन्याय तो नहीं किया।" मेरी माताजी हमेशा मेरी सहायक थीं। माँ की अपार करुणा ही मेरे जीवन का एकमात्र सहारा था। उनकी अपार कृपा से ही मैं श्रीगुरुपाद-पद्म-सान्निध्य लाभ कर सका।

मेरे पिताजी का नाम श्री योगेशचन्द्र चट्टोपाध्याय था हम पाँच भाई और एक बहन थे। शिशुकाल में ही पिताजी का स्वर्गवास हो गया था। हम लोग तब नाबालिग थे। पिताजी के दो भाई थे। उन्होंने हमें आश्रय दिया, पर छोटे चाचाजी ने ही हमारे पालन पोषण का भार वहन किया।

मेरे छोटे चाचाजी बहुत बड़े वकील थे। बहुत धन कमाते थे। घरमें उस समय प्रायः सत्तर लोग रहते थे। सभी को चाचाजी

अन्नदान करते थे। उन्होंने उनमें से चौदह को स्नातक बनाया। घरमें पशुपक्षी ही प्रायः ३०० थे। मछलिओं से भरे तालाब, और बड़ी-बड़ी मुलतानी गायें थीं। प्रचुर मात्रा में दूध होता था। नित्य घर पर आमिष भोजन एवम् भोग विलास का ताण्डव चलता था।

मैं मांस मत्स्यादि नहीं खाता था इसलिए सभी साधु कहकर मेरी उपेक्षा करते थे। पर मैं किसी की परवाह नहीं करता था। बहुत जिद्दी था।

मैं माँ दुर्गा, महादेव और षड़भुज गौरांग महाप्रभु के चित्र फूलों से सजाता, धूप-दीप जलाता, कभी-कभी "माँ माँ" कहकर रोता "हरि दर्शन दो" कहकर रोता। पर दर्शन नहीं मिलने के कारण हृदय में दुःख रहता। एक दिन भावना के मैदान में रोने लगा—ठाकुर जी का नाम लेते-लेते प्रार्थना करते हुये वहाँ के मुसलमान लोग मेरा आर्तनाद सुनकर रोने लगे। मेरा एक मुसलमान साथी था। वह मुझे सान्त्वना देते कहने लगा—तू रो मत, खुदा तुझे जरूर दर्शन देगें। मैंने साधू होने के लिए दो बार घर छोड़ा, परन्तु घर के लोग मुझे पकड़ कर ले आये। मैं दो बार घर से भाग गया साधु होने के लिये। लोग मुझे पकड़ कर ले आये इसी तरह मेरे चौदह वर्ष बीत गये। नँवी श्रेणी में पढ़ते हुए एक महीना ही हुआ था कि एकदिन सुना—नवद्वीप धाम से २५-३० साधु आए हैं। नलिनी बाबू के लकड़ी गोदाम के पास स्कूल से कुछ दूर किसी घर में रुके हैं। इस समय हमारे मुख्याध्यापक जी के घर पर विश्राम कर रहे हैं। स्कूल की आधी छुट्टी केवल आधे घण्टे के लिये

होती थी। इस थोड़े से समय में ही मैं मुख्याध्यापक जी के घर गया उन सबको देखने। जाकर देखा—एक वैष्णव, जिनके सुगठित अङ्ग की शोभा अपूर्व है–केवल एक बहिर्वास पहने और ओढ़ने का चादर माथे के नीचे रखे दरी के ऊपर सो रहे हैं।

मैंने दूर से दण्डवत् किया। खड़े खड़े उनकी परम सुन्दर सुगठित मूर्ति देख रहा था, तभी वे जागकर उठ बैठे। स्नेहवश मुझे बुलाकर पास बिठाया। प्रफुल्ल बदन, मृदुमंद हँसी, मधुर प्रेमभरी दृष्टि से उन्होंने कहा—"क्या तुम स्कूल में पढ़ते हो ! बाल बढे हुए, एवम् रूखे, साधु बनोगे क्या ?" मैंने उत्तर दिया—"साधु होना बहुत कठिन है। मैं दो बार साधु बनने गया था। लोग पकड़ लाये, और मार भी लगाई। वे हंसकर बोले—"क्या नाम है तुम्हारा ?" मैंने कहा—"श्री जीवन चन्द्र चट्टोपाध्याय" तभी वे बोले "तुम ब्राह्मण हो, मुझे दण्डवत् क्यों किया ? हम लोग वैरागी हैं। वैरागी लोग ब्राह्मण के प्रति बहुत श्रद्धा रखते हैं। मैं हंसकर बोला—"आप लोग साधु वैष्णव हैं। आप लोगों के प्रति ब्राह्मण ही नहीं, सभी जाति के लोग श्रद्धा-भक्ति करते हैं। मैंने अपनी माताजी से वैष्णवों की महिमा सुनी है।" उन्होंने मुझे और पास बुलाकर, मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुये पूछा—"क्या तुम्हारा संसार में मन नहीं लगता ?" मैं बोला "हां जी।"

इसी समय श्री अद्वैत-दास बाबाजी (श्री बाबाजी महाशय के गुरुभाई) पास आकर बोले—"देखो भैया, मेरा मन कह रहा है यह संसार छोड़कर जरूर चला जायेगा।" फिर

मुझसे बोले—"चलो हमारे साथ साधु बनकर।" मैंने कहा "नहीं मैं नहीं जाउंगा। मेरी माँ रोएगी। माँ से बड़ा और कोई नहीं है।" मेरी बात सुनकर श्रीमद् बाबाजी महाशय मृदुमन्द हंसने लगे। उनका वह हँसी से भरा हुआ मुखमण्डल मानो मेरे हृदय में अंकित हो गया। उन्होंने बड़े स्नेह से पूछा—"क्या खाते हो ? क्या पढ़ते हो ?" मैंने कहा "मेरी माँ हविष्यान्न बना देती हैं, वही खाता हूँ। स्कूल की पढ़ाई अच्छी नहीं लगती । मैं "निमाइ चरित" "श्रीरामकृष्ण कथामृत" इत्यादि पढ़ता हूँ। पाठ्यपुस्तक के नीचे छुपाकर पढ़ता हूँ क्योंकि अगर किसी ने देख लिया तो मारेगा"।

बातें करते मैंने यकायक निर्भयता से पूछा—"आप लोग साधु हैं, दिन में क्यों सोते हैं ? मैंने अपने बड़े भाई से सुना है कि साधु लोग दिन में नहीं सोते। वे हंसकर बोले—"कल सारी रात स्टीमर पर जागते हुये आये हैं। आज सन्ध्या के समय कीर्तन आरम्भ होगा, कीर्तन समाप्त होने में प्रायः रात के दो तीन बज जायेगें। इसी कारण थोड़ी देर सो लिया। जबतक शरीर है, आहार, निद्रा स्नान सभी चाहिये। नहीं तो शरीर अस्वस्थ हो जायेगा–भजन कीर्तन नहीं होगा।" श्री अद्वैत दास बाबाजी बोले,—"तुम स्कूल में पढ़ते हुये भी यह नहीं जानते ? मैं यह सुनकर अपनी गलती समझ गया और मुँह नीचा कर लिया—न जाने कितना बड़ा अपराध हो गया था मुझसे।

थोड़ी देर के बाद स्कूल की आधी छुट्टी की घन्टी बज गई। मैं चकित हो खड़ा हो गया। श्रील बाबाजी महाशय बोले;—"सन्ध्या के समय आना, कीर्तन होगा। तुम्हें तो गान

कीर्तन अच्छा लगता है न।" मैंने हँसते हुये कहा "जरूर आउंगा"। यह कह कर मैं चल पड़ा। थोड़ी दूर जाकर कौतुहल वश लौट आया और पूछा—"क्या आप व्यायाम करते हैं? इतनी सुन्दर पेशियाँ! यह कहते हुये उनकी माँस पेशियां हाथ से दबाकर देखीं वह मक्खन की तरह कोमल थीं और हाथ हिलाने और चलने फिरने से फूल जाती थीं।

मैं बड़े आश्चर्य में पड़ गया। कारण उस समय हम सब लोग थोड़ा-थोड़ा व्यायाम करते थे—पैरल्लल बार, डौन इत्यादि करते थे। पर ऐसी सुन्दर माँस पेशियाँ किसी की नहीं थीं। श्रील बाबाजी महाशय मेरा किशोर बालक सुलभ व्यवहार देखकर हँसने लगे। थोड़ी देर के बाद बोले—"जाओ स्कूल की घण्टी बज गई—पढ़ो जाकर, सन्ध्या के समय कीर्तन सुनने आना।

मैं स्कूल चला गया, पर उनकी मधुमय मुस्कान, और उनका भावमय स्वरूप नहीं भूला। स्कूल की छुट्टी हो गई। सोचने लगा—इतने बड़े साधु मुझसे इतना स्नेह करते हैं, चित्ताकर्षक वाणी में मुझसे हँस-हँसकर बोले—यह तो बड़े सौभाग्य की बात है। सोचते-सोचते सन्ध्या हो गई। घर में किसी को बिना बताये चुपके से साधु मण्डली के पास पहुँच गया।

आकर देखा श्रील बाबाजी महाशय कीर्तन में जाकर बैठे हैं। मैंने दण्डवत् प्रणाम किया। श्रील बाबाजी महाशय बोल उठे—"मयना" (मैना) आये हो?' मै सोचने लगा मेरा मयना नाम कैसे जान गये। मेरी माँ ने प्यार से मेरा नाम

मयना रखा था। पर इन्हें कैसे पता चला ? तभी श्रील बाबाजी महाशय बोले—"मैंने तुम्हारा मयना नाम जान लिया है। आओ बैठो कीर्तन सुनो। मैं उनकी यह बात सुनकर पास बैठ गया कीर्तन सुनने के लिये। श्रील बाबाजी महाशय कीर्तन आरम्भ करने से पूर्व हाथ जोड़कर प्रणाम करने लगे। समस्त देह मृदुमन्द कांपने लगी, मधुर मृदंग के साथ १२।१४ झाँझ करताल (बड़े करताल) बज रहे थे। मानो नुपूर ध्वनि हो रही है।

"प्रेमानन्दे निताइ गौर हरि बोल" ध्वनि के साथ कीर्तन आरम्भ किया। उदार स्वर से—नाभिमूल से नाम प्रकट हुआ—भज निताइ गौर राधे-श्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम। मधुर कोमल सुर से श्रीनाम का आविर्भाव हुआ। उसी समय हजारों लोगों की सभा नीरव निस्पन्द हो गई। मैंने सोचा—क्या ये लोग जादू जानते हैं ? इतना कोलाहल और "भज निताइ" मात्र के उच्चारण से सब चुप हो गये। मैं बिलकुल मुग्ध हो गया। बाबाजी महाशय का मुखमण्डल चमक रहा था। ऐसा लावण्य युक्त मुख था मानो अभी तेल लगाया हो।

उस समय उनकी आयु लगभग ३० वर्ष की थी। परन्तु वे कोई सत्रह वर्ष के युवक प्रतीत हो रहे थे। सर्व-चित्ताकर्षक स्वरूप ! सारे लोग उनके मुख मण्डल को देखते हुए उनके अमृतमय मधुर नाम कीर्तन को सुनने लगे। क्या मधुर तुलना-रहित कण्ठस्वर ! ऐसा मधुर कण्ठस्वर मैंने कभी नहीं सुना था।

कीर्तन करते करते अश्रु, कम्प, पुलक हास्य-यह सब दिव्यभाव उनके मधुर श्रीअङ्ग को विभूषित करने लगे, नयन जल से मुखमण्डल और वक्ष प्लावित हो रहा था। कभी बालक वत् आकुल क्रन्दन करते थे कभी हंसी का झरना फूट पड़ता था। शरीर में ऐसा कम्पन हो रहा था कि श्री अङ्ग पहचाना नहीं जाता था कभी काँपते काँपते भूमि से ऊपर उठ जाते कभी हुंकार भरते। सभी लोग स्तम्भित हो जाते, मेरे मास्टर जी, छात्रवृन्द और वकीलगण सभी को यह देखकर परम आश्चर्य हो रहा था।

मैं मनमें सोचने लगा—पिता, पुत्र और स्त्री के शोक से तो कितने ही लोगों को ऐसे रोते देखा है पर श्रीहरि का नाम लेकर ऐसे अश्रु विसर्जन करते किसी को कभी नहीं देखा। इस साधु को निश्चय ही भगवान प्राप्त हुये हैं। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो श्रीहरि अभी इन्हें दर्शन देकर अदृश्य हो गये हैं। इसी कारण इनमें विरह-वेदना के अश्रु उमड़ रहे हैं। नीरव निस्पन्द भाव से मैं बैठे बैठे उनको देख रहा था। और सबकी दृष्टि से अलक्षित सा होकर मैं भी रो पड़ा। इधर-उधर देखा तो सभी लोग रुदन कर रहे थे। मैं सोचने लगा कि यह निश्चय ही जादू जानते हैं। फिर सोचा ऐसा नहीं हो सकता। यह तो कृष्णप्रेम में रुदन कर रहे हैं। इसी कारण सभी को रुला रहे हैं। भगवान का नाम लेकर क्या कोई इस तरह रो सकता है ! यह निश्चय ही महापुरुष, भगवद्भक्त हैं।

वैष्णव की महिमा, भक्त की महिमा कितनी महान है तब मैं नहीं समझता था। मैं साधु बना हूँ, तेल नहीं लगाता,

मछली नहीं खाता, इस कारण मनमें अभिमान है। यह साधु वैष्णव तेल लगाते हैं, दिन को शयन भी करते हैं, कितना अच्छे से अच्छा प्रसाद उनके लिये आता है, यद्यपि वे कुछ खाते नहीं केवल अंगुली से प्रसाद स्पर्श करते हैं—केवल रसा और अन्न पाते हैं तब भी इनमें ऐसी भक्ति है, इतना लोकाकर्षक इनका स्वरूप है। अपने आप हरिनाम लेकर क्रन्दन कर रहे हैं और लोगों को भी रुला रहे हैं। ऐसा प्रभाव कभी किसी में न देखा, न सुना। यह निश्चय ही बड़े वैष्णव साधु हैं। वैष्णव लोग नाम लेकर भिक्षा मांगते हैं मैं केवल इतना ही जानता था। और इन वैष्णव साधु को देखने के लिये, उनका मुख-निसृत नाम कीर्तन सुनने के लिये लोग आकर स्तम्भित हो जाते हैं। निश्चय ही इनके भीतर श्री भगवान निवास करते हैं। इसी कारण इनका यह आकर्षक स्वरूप है। साधारण मनुष्य कभी ऐसा नहीं हो सकता। इस प्रकार न जाने मैं क्या-क्या सोच रहा था। वे कभी अट्टहास से चौंकाते और कभी हुंकार से चारों दिशाओं को कम्पित करते। नाम कीर्तन करते करते वाणी रुद्ध हो गई। केवल रुदन करने लगे। प्रायः एक घण्टे के बाद पुनः कीर्तन आरम्भ हुआ।

उस दिन का कीर्तन मुझे आज तक स्मरण है—"आरे आमार[1] निताइ रे, ओ पतितेर[2] बन्धु, आरे आमार निताइ रे, ओ पतितेर बन्धु आरे आमार निताइ रे।" मत्त कीर्तन आरम्भ होकर, थम नहीं रहा था। एक एक समय उनका मस्तक ऐसे घूर्णित हो रहा था कि समझाया नहीं जा सकता, नयन जल

१ आमार—मेरा २ पतितेर—पतित का

चारों ओर आस पास बैठे लोगों के ऊपर, छिड़क रहा था। कुछ देर के बाद भाव शान्त हुआ।

श्री अद्वैत दास बाबाजी महाशयने अंगोछे से उनके नयन पौंछ दिये। इसी तरह रात के १२ बजे तक बैठे बैठे कीर्तन किया। उसके बाद वे खड़े हो गये और नाम कीर्तन शुरु किया—"पागलेर प्राणाराम, निताइ गौर राधे श्याम" "यह कहते ही आप नृत्य करने लगे और साथ पारिषदवृन्द भी नृत्य करने लगे। श्रोता भी उठ कर नाचने लगे, मैं भी तब नाच रहा था। नृत्य करते करते सोचने लगा, मैं क्यों नाच रहा हूँ? मोहाविष्ट की तरह हो गया था। और इसी तरह कीर्तन में नृत्य करते करते रात के दो बज गये। "गौर हरि-बोल" के साथ कीर्तन समाप्त हुआ।

उनके मुख से वह "गौर-हरिबोल" इतना मधुर लगा था कि अभी भी वह कानों में गूंज रहा है और हृदय को व्याकुल कर रहा है। कीर्तन समाप्त कर वे नदी के किनारे जाकर बैठे, मैं भी पीछे पीछे उनके पास जाकर बैठा। उस समय श्रील बाबाजी महाराज का 'भाव' शान्त था। मेरी ओर देखकर बोले, "तुम अभी तक घर नहीं गये"? "मैं रोते हुये बोला मैं नहीं जाउंगा।" वे बोले—"अच्छी बात, यहीं प्रसाद पाना, तुम ब्राह्मण हो, हमारा ब्राह्मण-पुजारी भोग लगाता है, वही रसोई करता है, यहाँ कोई मछली नहीं खाता, मछली का नाम भी कोई नहीं लेता, कोई छूता भी नहीं। मैं हँसकर बोला तब तो निश्चय ही प्रसाद पाऊँगा।

इसी समय पुजारी जी आकर बोले "ठाकुर जी का भोग

लग गया, आप लोग प्रसाद पाने के लिये आइये ।" श्रील बाबाजी महाशय ने स्नेह वश मेरा हाथ पकड़कर अपने साथ प्रसाद पाने के लिये बैठाया। पारिषदवृन्द आनन्द से प्रसाद पा रहे थे और बीच में ध्वनि लगा रहे थे। यही प्रथम समय था जब मैंने प्रसाद पाने के समय उनके मुख से ध्वनि सुनी। हम लोग केवल भोजन करते हैं, और यह लोग प्रसाद पाने के समय भी श्री हरि श्री गौरकिशोर का गुणगान कर रहे हैं—मैं यह सब सोचकर आश्चर्य चकित हो रहा था। वह मधुर स्वरसे दी गई ध्वनि आज मेरे कानों में गूंज रही है। वे श्री गौर रूप का वर्णन कर रहे थे।

धवल पाटेर जोड़ परेछे   रांगा रांगा पाड़ दियेछे
चरण ऊपर दुले जेछे कोंचा।
वागमल सोनार नूपुर   बेने जेछे मधुर मधुर
रूप देखिते भूवन मुरछा॥

दीघल-दीघल चाँचर चूल   ताय गुँजेछे चाँपार फूल
कुंद मालतीर माला बेड़ा झोंटा।
चन्दन माखा गोरा गाय   वाहु दुलाये चले जाय
कपाल माझे भुवन-मोहन फोंटा॥

बाहुर हेलन-दोलन देखि   हाथीर शुण्ड किसे लिखि
नयान - बयान जैनो कुँदे कोंदा।
मधुर-मधुर कयगो कथा   श्रवण मनेर घुचाय व्यथा
चांदे जेन उगारये सुधा॥

एमन कऊ व्यथित थाके   कथार छले खानिक राखे
नयन भरि देखि रूपखानि।

लोचन दास बले केने नयन दिलि गौर पाने
दुकूल खेलि आपना आपनि ॥

मैं यह ध्वनि सुनकर आश्चर्य-चकित हो गया। कितना मधुर कण्ठ ! कैसी प्राणाकर्षक वाणी ! ऐसा सुस्पष्ट उच्चारण कभी नहीं सुना। कीर्तन में भी सुना, वहाँ पर भी उच्चारण स्पष्ट था। इतना रोदन, इतना भावपूर्ण देह तब भी शब्दों का उच्चारण इतना स्पष्ट ! प्रसाद पाते पाते वे कितना हास-परिहास कर रहे थे जैसे हमारे ही कोई साथी हों, प्रेम से बातें कर रहे थे,आलू और पनीर का प्रसाद देकर बोले—"खाओ"। मैं हैरान होकर उनका दिया हुआ प्रसाद पाने लगा। वे मधुर हँसी हँसकर बोले "तुम्हारी जाति गयी। वैरागी का झूठा खाया।" मैं बिलकुल अचकचा गया और उनको देखने लगा। वे हँसने लगे।

उनकी यह हँसी जैसे बाल-सुलभ हँसी हो। कितनी मधुर ! कितनी मीठी मैं समझा नहीं सकता। जिसे भी उनकी यह मधुर मृदुमन्द मुस्कान देखने का सौभाग्य मिला है वही समझ सकता है। इस मुस्कान में कितनी मादकता, कितनी सम्मोहन शक्ति थी,जब वे कीर्तन के समय व्याकुल होकर रुदन करते तब कम्पन के कारण उनका शरीर पहचाना नहीं जाता। दूसरे दिन सन्ध्या के समय कीर्तन होगा सुनकर मैं घर चला आया।

दूसरे दिन स्कूल से लौट कर ही कुछ खा-पीकर सन्ध्या के समय उनका कीर्तन सुनने गया। जाकर देखा वे कोर्तन आरम्भ कर रहे हैं। अनेक गाँवों से लोग कीर्तन सुनने आ रहे

हैं। मैं और मेरे कुछ साथी मिलकर कीर्तन सुनने बैठे, करताल और मृदंग बज उठा। वे मस्तक से करताल का स्पर्श करते हुये प्रणाम करने लगे। नाम के संग मृदंग और करताल की अपूर्व ध्वनि मिलकर मानों नुपूर ध्वनि हो गई। केवल नाम कीर्तन कर रहे थे और उसी से मानो मधु बरस रहा था विचित्र सुर और छन्द के साथ उन्होंने एक घण्टा केवल नाम कीर्तन किया। उसके पश्चात् पद गाने लगे। गौरांग-गुण गाने लगे। मैं तब बालक ही था। 'पद' कीर्तन किसे कहते हैं—नहीं जानता था। फिर भी मुझे उस दिन की बात और वह कीर्तन आज तक याद है।

बहुत दिन की बात है पर उनके श्रीमुख की वाणी मेरे हृदयपट पर अंकित हो गई है। कीर्तन था—

"अद्वय - ब्रह्म नन्द - नन्दन हलेन (हुये) श्रीकृष्णचैतन्य ॥
बलराम नित्यानन्द, सांगोपांगे (सहचर सहित) अवतीर्ण।
अभिन्न व्रज श्रीनवद्वीपे (में) सांगोपांगे अवतीर्ण॥"

कितने ही पद गाये पर यह पद मेरे मनमें सदा के लिये अंकित हो गया। प्रथम बार सुना था, इस कारण आज भी स्मरण होता है। यद्यपि यह ५० वर्ष पूर्व की बात है, मुझे उनकी श्रीमुखोदगीर्ण वाणी याद है। प्रथम बार देखा हुआ उनका अश्रुसिक्त मुखारविन्द आज भी भुलाया नहीं जा सकता।

बाद में उनको बहुतबार देखा है, उनका कीर्तन सुना है पर प्रथम दिन का मिलन, और नाम कीर्तन-श्रवण क्या मैं भूल सकता हूँ! बलराम नित्यानन्द बोलते ही उनका स्वरभंग हो

गया। वे अश्रु कम्पादि सात्विक भावों से भूषित हो गये। भाव सम्वरण की चेष्टा करने लगे, बार-बार चादर गर पड़ता, बार-बार वे स्थापन करते, अश्रु धारा मुख और हृदय को प्लावित कर रही थी। कभी-कभी हुंकार देते थे। अजस्र धाराओं से अश्रु वर्षण होने लगे। फिर देखा समस्त उपस्थित लोगों के नयन प्रेमाश्रुओं से प्लावित हो उठे। इसी तरह रात के एक बजे तक कीर्तन किया। उसके बाद किंचित विश्राम करके प्रसाद पाने बैठे। मुझे पास बुलाकर बोले—'बैठो, प्रसाद पाओ। उस दिन और कुछ बात नहीं हुई। मैं दण्डवत् करके रात के प्राय: दो बजे घर लौट आया।

चुपके से घर जाकर सो गया। माँ के बिना और कोई नहीं जान पाया। दूसरे दिन रविवार था, स्कूल में छुट्टी थी। सोचा कल जल्दी जाकर उनके साथ मिलूंगा, सुबह उठकर हाथ मुंह धोकर उनके पास गया; मुझे देखते ही वे हँस पड़े मैंने उनको जाकर दण्डवत् किया और उनके सामने जमीन पर ही बैठ गया।

स्नेहवश मुझसे कहने लगे—"आज नगर कीर्तन होगा, चलोगे?" मैंने कहा "जाऊंगा"। बाल-सुलभ सरलता से कहा—"आपको छोड़कर मैं नहीं रह सकता एवं बिना देखे भी नहीं रह सकता। वे हँसकर पीठ पर प्यार से थपकी देने लगे, उस थपकी ने मेरे मनमें एक मधुर अनुभव भर दिया। उस दिन नगर कीर्तन करना था। खोल, करताल, निशान, खुन्ति लेकर सब खड़े हो गये। मृदंग और करताल बजने लगे। श्रील बाबाजी महाशय ने पद गाना शुरु किया। श्रीमन्

महाप्रभु और श्रीनित्यानंद प्रभु आदि पारिषद वृन्दका आह्वान करने के पश्चात् कीर्तन के प्रारम्भ में उनकी कृपा भिक्षा करने के पश्चात् गाने लगे—

"प्रकट अप्रकटलीलार,
(लीला की) दुइत (दो) विधान।
प्रकट लीलाय (लीला में) करेन,
(करते हैं) हरि स्वयम् नृत्यगान" ।
अप्रकटे नाम रूपे (रूप में) साक्षात् भगवान।
कीर्तन बिहारी हये (होकर) आछेन (हैं) वर्तमान ।।
हरि नामेर (नाम का) बहु अर्थ,
ताहा नाहि जानि (नहीं जानता)।
श्याम – सुन्दर यशोदा नन्दन,
एइ मात्र मानि (मानता हूँ)।।
(वही) सेइ हरि गौर हरि,
नदिया बिहरे (बिहार करते हैं)।
हरे कृष्ण नामे जगत निस्तारे।।
चारिदिके (चारों और) पारिषद मण्डली करिया।
तार माझे (उसके बीच)नाचे गोरा हरिबोल बलिया।।
प्रभुर (प्रभुके) दक्षिणे नित्यानंद,बामे (बाँए) गदाधर।
सम्मुखेते नृत्यावेशे कुबेर कुमार।।
गदाधरेर (गदाधरके) बामे श्रीवास आर नरहरि।
चौषट्टि (६४) महान्त द्वादश गोपाल संगे करि।।

सबाकार (सबके) आगे निताइ,
दु (दो) बाहु तुलिया (उठाकर)।
हरे कृष्ण नाम प्रेम जान,
(जाते) बिलाईया (लुटाकर)॥

यही कीर्तन गा रहे थे और श्री अङ्ग थर-थर कम्पित हो रहा था, वक्षस्थल अश्रुजल से प्लावित हो रहा था। हाथ में करताल कांप रहा था। नाम करने लगे—"आबार (फिर) बल हरिनाम, आबार बल मधुर एइ हरे कृष्ण नाम आबार बल। आमार (मेरा) प्रेमदाता निताइ बले आबार बल हरि-नाम आबार बल।" नाम ध्वनि से चारों दिशाएँ मुखरित हो गईं। लग रहा था जैसे नाम ध्वनि से आकाश एवं पवन मुख-रित हो गया हो। एवं गगन मण्डल नाम रूपी मेघ द्वारा आच्छन्न हो गया हो। मानो अभी नाम-वर्षा आरम्भ होगी। चारों ओर लोग नाम सुनकर नीरव, निस्पन्द हो गये। सभी के नेत्रों से अश्रुजल बह रहा था, मैं सोचने लगा—नाम सुनकर मनुष्य रोने लगते हैं ऐसा पहले कभी नहीं देखा। मैं सोचता रहा और साथ ही स्वयं भी रो पड़ा, न जाने मुझे क्या हो गया। श्रील बाबाजी महाशय नाम लेकर नगर-कीर्तन को निकले। कमर से चादर बाँध लिया है, कितने सुन्दर लग रहे थे। जैसे प्रेम रंग रस में रंगे हुए चल रहे हों सुन्दर, बलिष्ठ श्रीअङ्ग चमचमाता हुआ मुखमण्डल। नाम शुरु किया—"प्रेम-दाता निताइ बले गौर हरि हरि बोल।" सभी पीछे पीछे गाने लगे।

चारों ओर से लोग आकर कीर्तन में साथ देने लगे। सभी "गौर हरि हरि बोल" की ध्वनि लगा रहे थे। समस्त

आकाश नाम से मुखरित हो गया, स्कूल के अनेक विद्यार्थी छात्र भी साथ २ चलने लगे। कीर्तन में सभी हाथ उठाये नाचते नाचते चल रहे थे, श्रील बाबाजी महाशय भी दोनों हाथ उठाकर अपूर्व नृत्य करते हुए चल रहे थे। कितना मधुर दृश्य, था। नाचते-नाचते झूमते-झूमते चल रहे थे और हाथों की मास पेशियां फूल रही थीं। स्कूल के लड़के परस्पर कह रहे थे साधु जी निश्चय ही व्यायाम करते हैं, नहीं तो मांसपेशियां इतना क्यों फूलतीं ?

अकस्मात् श्रील बाबाजी महाशय एक चौराहे पर खड़े हो गये। कीर्तन शुरु किया—"जाय रे निताइ हेले दुले, निताइ जारे (जिसे) देखे तारे (उसे) बले गौर हरि, हरि बोल।" उनकी सभी बातों पर निताइ चाँद की दुहाई—मानो निताइ चाँद स्वम् बोल रहे थे। कुछ देर के बाद खड़े होकर कीर्तन आरम्भ किया—

"सप्तम मासेते जबे जननी जठरे।
गर्भेर अनले पुड़े डाकिले कातरे॥

कोथाय आछ दीन नाथ, आर यातना सइते नारि
कोथाय आछ प्राणेर हरि
आर जठर ज्वाला सइते नारि

एबार आमाय जनम दाओ,
एबार भजव तोमार पदयुगले।

जनमिये भवे गिये भजबो तोमार पदयुगले
जीव मात्रेर एइ प्रतिज्ञा॥

सप्तम मास मातृ गर्भे जीवमात्रेर एइ प्रतिज्ञा॥

अर्थ—सप्तम मास में जब जननी के गर्भ में गर्भ यन्त्रणा से कातर होकर पुकारा—कहाँ हो हे दीनानाथ, यह गर्भ की ज्वाला अब मेरे से और नहीं सही जा रही है। कहाँ हो हे प्राण प्यारे श्रीहरि ! अब मुझे जन्म दो, अब मैं तुम्हारे चरण युगल का भजन करूँगा।" जीव मात्र की यही प्रतिज्ञा है।

फिर, मूल पद गाना शुरू किया—

भुमिष्ठ हइते माया ज्ञान हरि निल रे।
प्रणव जठरे स्मृति अन्तर हईल रे॥

'आखर' दे रहे थे—सकल कथाइ भूले गेले,
विष्णु माया परशने, सकल कथाइ भूले गेले॥

हरि भजबे बोले एले, सकल कथाइ भूले गेले।
"बाल्ये ते चंचल अति संगीगण सने रे।
काटाले किशोर काल पुस्तक पठने रे॥"

रइले धूला खेलार छले,
शैशवेते दिवा राते रइले धूला खेलार छले।
कई जे पढ़ा तो पद नाई॥

जे पड़ा पड़ते जनम पेले, से पड़ा तो पड़ो नाई।
सर्व विद्या जीवनी शक्ति प्राणाराम हरिनामेर पड़ा॥

अर्थ—भूमिष्ठ होते ही माया ने ज्ञान हर लिया। गर्भ की स्मृति भूल गया। संसार में जन्म लेते ही विष्णु माया के स्पर्श से सभी बातें भूल गया।

बाल्य काल सङ्गी साथियों के साथ गवाया। किशोर अवस्था पुस्तक पठन में गँवाई, जिस पाठ को पढ़ने के लिये

जन्म लिया वह पाठ तो पढ़ा नहीं। सर्व-विद्या की जीवनी शक्ति श्री हरिनाम रूपी पाठ तो पढ़ा नहीं।

"युवाकाले मोह जाले पड़िले रिपुर कौशले।
मनुष्यत्व हाराइले,
षड़रिपुर किंकर हये मनुष्यत्व हाराइले।
कैन हले मायार नफर
तुमि तो कृष्णेर नित्य किंकर, कन हले मायार नफर !
किछुइ करते भय बासना
तादेर मनतुष्टिर लागि किछुइ करते भय बासना।
अनायासे त्याग करिते पार
माता पिता गुरुजने अनायासे त्याग करिते पार।"

अर्थ—युवावस्था में (काम क्रोधादि) रिपुओं के कौशल से मोह जाल में फंस गये। षड् रिपुओं के दास बनकर मनुष्यत्व खो बैठे। तुम तो श्री कृष्ण के नित्य किंकर (दास) हो,तुम क्यों माया दास बन गये। माया की मन:तुष्टि के लिये तुम कुछ भी कर सकते हो तुम्हें कुछ भी करते भय नहीं लगता। तुम अनायास माता-पिता-गुरुजनों को त्याग कर माया से छुटकारा पा सकते हो। क्यों नहीं माया को ठुकरा देते ?

एलरे वार्धक्य ऐइ अतीव भीषण रे।
शुभ्र केश लोल चर्म, कोटरे नयन रे॥
एखन आर की करिबे ?
भजिते चाहिले भजिते नारिबे
सर्व इन्द्रिय शक्ति हीन,
भजिते चाहिले भजिते नारिबे।

बलिते चाहिले, बलिते नारिबे, 'हरि' बलबे 'हवि' बलबे।
से भिखारीर की भिक्षा मेले ?

जे भिक्षाय बेरोय सन्ध्या काले,
से भिखारीर की भिक्षा मेले ?

दारा सुत जादेर आपना बोलिछ सकलि निमेर तिता
मरण समय हाथे, गले बाँधि मुखे ज्वालि दिबे चिता
'आखर' दे रहें— मुखे देबे आगुण ज्वेले।
'आमार' 'आमार' बलछ बले ओइ मुखे देबे आगुण ज्वेले

'हरे कृष्ण बल नाइ बले,
एइ मुखे देबे आगुण ज्वेले।

अर्थ—वह देखो भीषण वृद्धावस्था आ गई। केश शुभ्र हो गये, शरीर में झूरियाँ पड़ गईं, नेत्र रूपी पक्षी घोंसले में घुस गये। अब तुम क्या करोगे ? सब इन्द्रियां शक्तिहीन हो गयीं, भजन करना चाहो तो भी नहीं कर पाओगे हरि बोलना चाहो तो बोल नहीं पाओगे, मुँह से हवि निकलेगा। जो भिखारी सन्ध्या के समय निकलता है क्या उसे भिक्षा मिलती है ? जिन्हें तुम अपना स्त्री, पुत्र समझ रहे हो वह सब नीम के समान कटु हैं। वे तुम्हारी मृत्यु होने पर हाथ-पांव बाँधकर मुँह में अग्नि लगा देंगे। मानो इसलिये कि तुमने इस मुख से 'हरि', 'हरि', न कहकर 'मेरा' 'मेरा' कहा।

इस तरह जिस अपूर्व शिक्षा के माध्यम से वे कीर्तन कर रहे थे मैं आज तक भी नहीं भुला सका हूँ। वे गा रहे थे—

"बल 'हरि' 'हरि' छन्दना
करिह विपत्ते भरल देश।
ए तत्त्व जानिया आगे
पालाओलो श्रवण दशन केश ॥
तार पिछु, पिछु लोचन,
वचन तारा दुये दिल भङ्ग।
तबु 'आमार' 'आमार' करि
रात्रि दिवा मर यमदूते देखे रंग ॥

यहाँ अपूर्व 'आखर' दे रहे हैं— तारा करतालि दिया नाचिछे।
'आमार' 'आमार' बलछ बले, तारा करतालि दिया नाचिछे ॥
ए जे महामायार नाट्यशाला
नितुइ नितुइ नव नव कत अभिनय हय अनित्य खेला ॥
कार भाग्ये कखन हबे वा पतन।
मृत्यु रूपी यवनिका, कार भाग्ये कखन हबे बा पतन ॥
ताइ हरिनाम के प्रहरि राख निशिदिशि रसनाय रट।
हरे कृष्ण नाम निशिदिशि रसनाय रट ॥
तोमार यमद्वारे पड़िबे कपाट, 'हरे कृष्ण' नाम रसनाय रट।

अर्थ—हरि हरि बोलो, देर न करो, तुम्हारे देह रूपी देश पर संकट छा गया है। यही जानकर सर्वप्रथम तुम्हारे शरीर से श्रवण, दर्शन और केश ने विदा ले ली। पीछे से लोचन और वाणी भी चले गये हैं। फिर भी मेरा मेरा कह रहे हो। यमदूत यह देखकर हँस रहे हैं। तालियाँ बजा बजा कर नाच रहे हैं तुम्हें 'मेरा' 'मेरा' कहते हुये देखकर। यह संसार

महामाया की नाट्यशाला है यहाँ नित्य नए नए अनित्य अभिनय होते रहते हैं। न जाने कब किसके सामने मृत्यु रूपी पर्दा आकर नाटक समाप्त कर दे। इसलिये हरिनाम को प्रहरी बना रखो। दिवा निशि रसना से हरेकृष्ण नाम रटो। तुम्हारे लिए यमद्वार बन्द हो जायेगा।

वहाँ खड़े होकर ऐसे अनेक पद गाने लगे।

एक पंक्ति मेरे हृदय पर अङ्कित हो गयी—"प्राणाराम हरिनामेर पढ़ा, सर्व विद्यार जीवनी शक्ति।" वाण विद्ध मृग के समान इस तीक्ष्ण वाणी ने मुझे विद्ध कर दिया। इसी दिन से मैंने स्कूल की पढ़ाई छोड़ दी, स्कूल जाना बन्द हो गया और श्रील बाबाजी महाशय के साथ मैं भी नगर कीर्तन में घूमने लगा। हमारे घर के सामने खड़े होकर श्रील बाबाजी महाशय अनेक प्रकार कीर्तन, नृत्य करने लगे। उसके बाद नगर कीर्तन से लौटकर "गौर एल (आया) घरे, आमार निताइ एल घरे" इस प्रकार कितने ही पद गाने लगे और साथ ही उनके आँखर देते हुये आर्त्ति व्याकुलता सहित कीर्तन करते रहे। श्रील बाबाजी महाशय का कीर्तन संग्रह'श्रीगुरु कृपार दान' नाम से पुस्तक आकार में छपा है जिसमें उनके कीर्तन हैं। मैं ने उनमें से कुछ को लिपिबद्ध किया है सबको लेने पर ग्रन्थ बड़ा हो जाता।

श्रील बाबाजी महाशय "नगर भ्रमिये (भ्रमण करके) गौर एलो घरे.........." समाप्त करके नाम संकीर्तन करने लगे "हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।"

यादवाय माधवाय केशवाय नमः ॥
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन।
गिरिधारी गोपीनाथ मदन मोहन॥
श्री चैतन्य नित्यानन्द अद्वैत सीता।
हरि गुरु वैष्णव भागवत गीता॥
जय रूप सनातन भट्ट रघुनाथ।
श्री जीव गोपाल भट्ट दास रघुनाथ॥

एइ छय गोंसाइ जांर (जिनका) तांर मुइ (मैं) दास।
ता सबार (उन सबके) पदरेणु मोर (मेरा) पंचग्रास॥
एइ छय गोसाँइ जबे (जब) ब्रजे (में) कैला (किया) वास।
राधा कृष्ण नित्य लीला करिला (किया) प्रकाश॥

गो कोटि दाने ग्रहणे च काशी।
माघे प्रयागे कोटि कल्प वासी॥
सुमेरु समतुल्य हिरण्य दाने।
नहि तुल्य नहि तुल्य गोविन्द नामे॥

गोविन्द कहेन (कहते हैं)
आमार (मेरा) राधा से पराण (प्राण)।
जप तप परिहरि (छोड़कर) लओ (लो) राधा नाम॥

जय जय राधानाम प्रेम तरंगिनी।
प्रेम तरंगिनी नाम सुधा तरंगिणी॥

ए नाम जपिते जपिते (जपते) उठे अमृतेर खनि।
राधा नामेर स्वाद भाल (भली भाँति)
जाने श्याम गुणमणि॥

ताईं बाँशी यन्त्रे (बाँसुरी में),
गान करे दिवस रजनी ॥

यहाँ आँखर दे रहे हैं— वंशीवटे सदा रटे।

धीर समीरे यमुना तटे, वंशी वटे सदा रट॥
अकपटे श्याम नटे जय राधे श्री राधे बले (बोलकर)।
राधा नाम गेये (गाकर),
गौर ह'ल (हुए) ब्रजेर नीलमणि॥
राधा नाम गेये (गाकर) गौर ह लो नामे वरण
धराइल (राधा रानी के रंग में रंग गये)
श्रीराधा गोबिन्द दोहाँर (दोनों की) युगल माधुरी।
सेई दुइ (वही दोनों) एक तनु प्राणेर गौर हरि॥
ए हैन गौरांग हरि पेने (पाने को) जार (जिनका) आस।
धर्म्माधर्म परिहरि होक (हो जाय) निताईर दास॥
मुखेओ (मुख से भी) जे जन बले मुइ(मैं)नित्यानन्द दास।
निश्चय देखिबे गोरार स्वरूप प्रकाश॥
गोपी गणेर जेइ (जो) प्रेम कहे भागवते (में)।
एकला नित्यानन्द हइते (से) पाइबे (पाओगे) जगते॥
नित्यानन्द प्रेमदाता, गौरांग परम धन।
रास विलासे पाबे (पाओगे) श्रीराधारमण॥

'हरे कृष्ण हरे' नाम तरी आरोहणे।
संसार सागर पार चल वृन्दावने॥
मनेर आनन्दे बल 'हरि' भज वृन्दावन।

यहाँ अपूर्व आखर देने लगे—केऊ भेद जेन कोरोना (न करो)
नवद्वीप आर वृन्दावने भेद जेनो करोना
(जो) जेइ नदिया, सेइ तो (वही तो) ब्रज।
नदियाय (में) से नामेर ध्वनि, वृन्दावने वंशीध्वनि ;
नवद्वीपे संकीर्तन, बृन्दावने रास मण्डल,
तारि तो हय रे (उसे ही तो होता है)
ठाकुर नरोत्तम बलछेन (बोले हैं)
ब्रज भूमेते वास तारइ तो हय रे।

श्रीगौड़मण्डल भूमि जेबा (जो) जाने चिन्तामणि।
श्रीगुरु वैष्णव पदे मजाइया (निमग्न होकर) मन ।।
श्रीगुरु वैष्णव पाद पद्म करि आस।
नाम संकीर्तन करे नरोत्तम दास ।।

इसी प्रकार बहुक्षण कीर्तन कर 'हरिलूट' के लिये 'लूट कीर्तन' गाने लगे—

"आय रे तोरा लूटबि के आय, आमार दयाल निताइ अमिया बिलाय रे। आमार श्रीगौरांग सुधार आधार रे आमार निताइ चाँद तार अङ्ग आधारे, आजु चाँदे चाँदे मिशे दु टि चाँद। वृषभानु कुल चाँद, नन्द कुल चाँद चाँदे चाँदे मिशे दु टि चाँद। शकति होलना तमो नाशिते एका नन्द कुल चाँदेर शकति होल ना

ऋण शुधिते श्रीराधिकार प्रेम ऋण शुधिते, ताइ होल मिशते। भानु कुल चाँदेर सने ताइ होल मिशिते, ताइ ऐसे

उदय होले नदीयाय एनेछे निताइ प्रेम अमिया, गोलोक भाण्डार लूटिया, एनेछे निताइ प्रेम अमिया।

अर्थ—आओ रे तुम आकर लूटो, हमारे दयालू निताइ चाँद प्रेम अमृत लुटा रहे हैं। हमारे श्रीगौराङ्ग अमृत का आधार हैं एवम् हमारे निताइचाँद उनका आधा अङ्ग हैं। आज वृषभानुकुल चन्द्रमा (श्री राधारानी) एवम् नन्द कुल चन्द्रमा (श्रीकृष्ण) दोनों चाँद अपूर्व रूप से मिले हैं अकेले नन्द कुल चाँद में अन्धकार दूर करने की एवम् श्री राधिका का प्रेम ऋण उतारने की शक्ति नहीं थी इसीलिए उसे वृषभानुकुल चन्द्रमा (श्री राधारानी) के साथ मिलना पड़ा। इस प्रकार ये मिलित चन्द्रमा नदिया में उदित हुए। हमारे निताइ चाँद गोलोक का भण्डार लूटकर प्रेम अमृत लाये हैं।

"किशोरी भाण्डार लूटिया, एनेछे निताइ प्रेम अमिया
दितेछे निताइ जाचिया जाचिया, आचाण्डालेर द्वारेते गिया !
दितेछे निताइ जाचिया जाचिया,
पतित पाषण्डि खुँजिया खुँजिया,
दितेछे निताइ जाचिया जाचिया,
बलिछे निताइ काँदिया काँदिया
आमि विना मूल्ये जाबो विकाइया,
तोदेर पाप तापेर बोझा निया
विना मूल्ये जाबो बिकाइया,
हरि बोले आमाय लओ किनिया,
विना मूल्ये जाबो बिकाइया ।।

जेचे बेड़ाइछे निताइ मालि,
माथाय लये नाम प्रेमेर डालि।
जेचे वेड़ाइछे निताइ मालि,
काँदिछे निताइ फुलि, फुलि,
आचण्डाले बुके तुलि, काँदिछे निताइ फुलि फुलि,
काँदिछे निताइ आकुलि बिकुलि,
बलिछे प्रेमेर डालि दिबो रे ढालि।
तोदेर जाति, कूल, अधिकार बिचार,
ना करि प्रेमेर डालि दिबो रे ढालि ॥

अर्थ—श्री किशोरी जू के भण्डार को लूटकर, निताइ चाँद प्रेम अमृत लाए हैं। चाण्डाल, पर्यन्त सबके द्वार-२ पर जाकर, पतित एवम् पाषण्डी जीवों को ढूँढ़-२ कर, निताइ चाँद प्रेम अमृत माँग-२ कर (आग्रह पूर्वक) दे रहे हैं। रोते-२ निताइ चाँद बोल रहे हैं—मैं तुम्हारे हाथों बिना दाम बिक जाऊँगा, तुम्हारे पाप तापों का बोझा अपने सिर पर ले लूँगा, तुम तो बस हरि-२ बोलो और मुझे खरीद लो। सिर पर प्रेम की डाली रखे हुए, निताइ माली घूम रहे हैं। चाण्डाल पर्यन्त सबको गोद में लेकर, निताइ चाँद अत्यन्त व्याकुल होकर फूट-२ कर रो रहे हैं और कह रहे हैं कि भैया मैं तुम्हारे जाति, कुल, अधिकार आदि का विचार न करते हुए, इस प्रेम की डाली को तुम्हें प्रदान कर दूँगा तुम तो बस हरि-२ बोलो।

आगे 'मातन' आरम्भ हुआ—"गौर हरि, हरि बोल" ध्वनि देकर नाम समाप्त किया। "दधि मंगल" हुआ—आम्रपल्लव से हलदी का पानी सबके ऊपर छिड़कने लगे। मेरे

ऊपर थोड़ा सा डाल दिया और उसके बाद कीर्तन के स्थान पर ही हलदी-पानी का बर्तन फोड़ डाला चारों ओर पानी फैल गया। उसके बाद उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया।

किंचित विश्राम के पश्चात् उन्होंने स्नान-आह्निक समाप्त किया। आज प्रसाद पाकर 'आबाइपुर' जायेंगे। भक्तलोग आयें हैं उन्हें लेने के लिये। नौका से रवाना होंगे। हम सब मिलकर नदीकिनारे उन्हें देखने के लिये गये। मुझे पास बुलाकर बोले "अभी रवाना होगें" यह कहते हुये मेरी पीठ पर हाथ फेर कर स्नेह करने लगे। फिर धीरे धीरे नौका में जाकर बैठे और नौका चलने लगी। वे निर्निमेष दृष्टि सें मुझे देखने लगे। मैं भी देखता रहा। मैं नदी किनारे बैठे-बैठे रोने लगा। मानो मेरा कुछ खो गया हो, इस दारुण वेदना से मैं अभिभूत हो गया। सन्ध्या घनीभूत हो गई थी, और कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। मैं रोते हुये घर लौट आया और बैठक में ही सो गया।

जीवन के इन कुछ दिनों में प्राप्त उनके मधुमय संग ने मेरे जीवन में श्रेष्ठ सम्पद् पाने का रास्ता खोल दिया। श्रेष्ठ सम्पद और क्या हो सकती थी उन्होंने कृपा पूर्वक अपने श्रीचरणो में आश्रय दे रखा था। स्वजन बन्धु की माया-ममता का त्याग करवाकर अपना मधुमय संग-सान्निध्य बनाए हुए थे। यही मेरे लिये श्रेष्ठ सम्पद थी। वे चले गये पर मैं घर पर न रह सका। उनके मधुमय संग लाभ के लिये, उनका सर्वदा दर्शन करने के लिये मैंने 'आबाइपुर' जाने का प्रयत्न किया। इसी समय घर में सबको पता चल गया, मैं डरसे कुछ नहीं कर सका।

मन ही मन उपाय सोचने लगा। मेरे बड़े भाई श्रीनरेश चन्द्र चटर्जी 'आबाइपुर' स्कूल के हेडमास्टर थे। उनके पास पढ़ने जाऊँगा, यह कहकर घर से निकला। मेरे बड़े भाई श्रील बाबाजी महाशय की बहुत भक्ति करते थे। वे उनका कीर्तन सुनने जाते थे, उनके साथ कीर्तन में नृत्य करते थे। मैं कुछ दिन के बाद उन्हें देखने के लिये रवाना हो गया। द्रुत गति से १२ मील चलकर जब उनके पास पहुँचा तब दोपहर के दो बजे थे। श्रील बाबाजी महाराज मुझे देखकर हँस पड़े और अपने निकट बुलाकर बोले—"आ गये तुम !" दण्डवत् प्रणाम किया। वे बोले—"कीर्तन समाप्त हो गया है, आज ही हम कलकत्ते जायेगें।" मैं रो पड़ा और बोला—"मुझे साथ ले चलिये"। वे बोले—"हम लोगों के साथ जाओगे तो लोग कहेगें यह साधु लोग लड़के पकड़ने वाले हैं। घर से लड़कों को निकालकर साधु बना देते हैं।" मैं यह सुनकर कुछ कह नहीं सका। वे सब धीरे धीरे रवाना हो गये। वहाँ आवागमन नौका से ही होता था। मैं नदी-किनारे निराश होकर खड़ा रहा। पारिषदवृन्द नौकामें जाकर बैठ गए। पर श्रील बाबाजी महाराज खड़े रहे। मैं सजल नयनों से उन्हें देखने लगा, वे भी मुझे देखने लगे। थोड़ी देर के बाद नौका दृष्टि से दूर चली गई। मैं धीरे-धीरे आखें पोंछते हुये लौट आया।

पर मेरा रोना बन्द नहीं हो रहा था। भक्तलोग समझाने लगे। बड़े भाई ने भी बहुत समझाया और डाँटा भी। पर मन नहीं माना। किस प्रकार मैं श्रील बाबाजी महाशय का दर्शन पाऊंगा, कैसे उनका सङ्ग-सौभाग्यलाभ होगा, यही

सोचते दिन बीत रहे थे। मैं अपने जन्मस्थान मागुरा लौट आया।

स्कूल और नहीं जाना है—तय करके, पढ़ाई छोड़कर "श्रीरामकृष्ण कथामृत" अमिय निमाई चरित आदि, पढ़ने लगा, पर श्रील बाबाजी महाशय को भुला नहीं सका। उन्हें पाने की लालसा मेरे हृदय में दृढ़ होती गई। घर-संसार सब कुछ छोड़ उनके पास रहकर, उनके आदेश अनुसार श्रीहरि का भजन करूंगा, यह वासना हृदय में जाग रही थी। पर घर छोड़कर कैसे निकलता ? सभी मेरे ऊपर नजर रखते थे।

मेरा छोटा भाई भो सदैव सन्देह किया करता कि मैं उसे छोड़कर वैरागी बन जाउँगा। मेरी माताजी उस समय नानीजी के पास "नलिया" में थीं। मैं और मेरा छोटा भाई उस समय मागुरा में चाचाजी के पास रहते थे। श्रील बाबाजी महाशय के दर्शन के बाद से ही मैंने स्कूल जाना छोड़ दिया था। मन ही मन रोता रहता था, श्रील बाबाजी महाशय के निकट किस प्रकार जाऊँ, यही चिन्ता करता था। एक दिन छोटा भाई स्कूल गया हुआ था। दोपहर के दो बजे थे मैंने उसकी पुस्तक के ऊपर एक पत्र लिखा "मैं तुम लोगों की माया-ममता त्यागकर आज श्रीहरि को पाने के लिये रवाना हो रहा हूँ। संसार में और नहीं आऊंगा मुझे लौटाने का प्रयत्न नहीं करना। याद रखना, हम पाँच भाई थे, उनमें से एक चला गया। तुम माँको समझाना—तुम्हारा भाई 'छोड़दा'।

यह पत्र लिखकर उन्हीं कपड़ों में मैं नदी पार होकर नाम करते करते चलने लगा। मेरे चले जाने के १० मिनट

बाद आधी छुट्टी में मेरा भाई अचानक घर लौटा और मुझे न देखकर रोने लगा। पुस्तक के ऊपर मेरा लिखा हुआ पत्र पढ़कर रोते रोते नदी के किनारे जा पहुँचा। नाविक को पूछा—"क्या मेरा भाई नदी पार होकर गया है?" वह बोला—हाँ, उन्हें देखकर लगा, वे संसार में नहीं रहेंगे कितना कुछ पूछा पर वह कुछ नहीं बोले। बहुत उदास थे। उनकी आखों में आँसू थे। यह सुनते ही केष्ट—छोटा भाई, नदी में छलांग लगाकर पार हो गया। लोगों से पूछते हुये मैं जिस रास्ते से गया, उसी रास्ते पर वह दौड़ने लगा। कुछ दूर जाने पर देखा दो रास्ते हैं। किस रास्ते पर मैं गया हूँ यह न समझ कर पास ही एक विशाल वटवृक्ष पर चढ़कर उसने मुझे देखा, दौड़कर दूसरी ओर से जाकर मेरे पहुँचने से पहले ही वह पहुँच गया। उस रास्ते में छोटा सा जंगल था, वहाँ छुप गया। मेरे निकट आते ही उसने मुझे पकड़ लिया और कहने लगा—भाई तुम मत जाओ। तुम घर छोड़कर साधू बन जाओगे तो मैं मर जाऊँगा। माँ तुम्हारे लिये रो रोकर मर जाएगी। मैं माँ को कैसे समझाउँगा? तुम लौट चलो।" मेरा हृदय उस समय पत्थर जैसा हो गया था। मैं ने उसको गले से पकड़ कर गिरा दिया, वह तत्क्षण उठकर मुझसे लिपट गया। मैंने उसे फिर गिरा दिया और गम्भीर स्वर से बोला "मैं नहीं जाऊँगा।" वह तब निरुपाय हो गया। देखकर चारों ओर लोग एकत्र हो गये।

वे मुझे समझाने लगे—आप लोग पाँच भाई हो। आप के चाचाजी इतने बड़े नामी वकील हैं, आप लोगों के घर ७०/८० लोग रहते हैं—उनमें से कितने ही बी. ए. पास हैं।

आपका भाई आपसे इतना प्यार करता है। आप इतनी छोटी अवस्था में क्यों साधु बनने जा रहे हैं ?

कौन किसकी सुने ? थोड़ी दूर जाते ही मेरा भाई बोला—"भाई यदि तुम और एक कदम भी आगे बढ़ोगे तो आज तुम्हें भाई की हत्या का दोष लगेगा। यह कहते ही पास से एक ईंट उठाकर बोला—इस ईंट से मैं अपना सिर फोड़ लूँगा। लोग कहेंगे तुम भाई की हत्या करके साधु बन गए। उसका यह निदारुण व्यवहार देख मैं भयभीत हो गया। मेरे से छोटा है, मुझे बहुत प्यार करता है। मेरे चले जाने से ऐसा ही कुछ कर बैठेगा। तब मैं निरुपाय होकर बोला "नहीं मैं नहीं जाऊंगा"। उसने हाथ से ईंट गिरा दी और मुझे पकड़ कर रोने लगा। एवं मुझे घर लौटा लाया। घर पर सबको पता चल गया था। सभी डाँटने लगे, चाचाजी और चाचीजी ने भी खूब डाँटा—"अभी से ही साधु बनने चले हो ? मार कर हड्डी तोड़ दूँगा। माँ तब मामाजी के पास 'नलिया' ग्राम में रह रही थी—'मागुरा' से दस कोस दूर। उन्हें खबर भेजी गयी। मैं बिलकुल निरुपाय हो गया। छोटा भाई सदैव मेरा ख्याल रखता था। रात को अपने कपड़े के साथ मेरा कपड़ा बाँधकर गला पकड़ कर सोता था—ताकि मैं भाग न जाऊँ।

इस प्रकार दो दिन बीत गए। रातको मैं उठता तो वह भी उठ पड़ता था। स्नान के समय, भोजन के समय सब समय वह अपनी दृष्टि से मुझे ओझल नहीं होने देता मैं किसी प्रकार भी उसका स्नेह तोड़कर नहीं जा पा रहा था। एक दिन रात के दो बजे मैंने उठकर देखा वह निश्चिन्त होकर सो रहा है।

धीरे से मैंने अपना कपड़ा छुड़ा लिया। गले से उसका हाथ हटा दिया, और चुपके से घर से निकल पड़ा। जहाँतक दृष्टि पहुँच सकती थी द्रुत गति से चलता गया।

बहुत दूर चला आया, प्रायः बीस मील होगा। सोचने लगा अब मुझे कोई बाधा नहीं देगा, न ही कोई सन्धान करेगा। प्रातः समय प्रायः आठ बजे थे "पातुरिया" पर मुझे अपने साथी हृषीकेश दादा की याद आई वे परम भक्त थे। मुझसे बहुत स्नेह करते थे। उनके साथ एकबार मैं फरीदपुर में श्री जगद्बन्धु अंगिना में गया था। तभी से उनके साथ मेरा प्रीति बन्धन बना हुआ था। मैं उनके पास गया। वहाँ श्रीजगद्बन्धु जी का 'प्रेम योग' ग्रन्थ और रमेश बाबू का 'ब्रह्मचर्य शिक्षा' यह सब पढ़ने लगा।

कुछदिन वहाँ रहकर हम दोनों ने तय किया कि घर नहीं लौटेंगे, चलो हम दोनों मिलकर श्री जगद्बन्धु सुन्दर के पास जायें। सब कहते हैं कि वे पुरुष हैं। हम 'आगिना, जा पहुँचे। वहाँ जाकर देखा मेरे बड़े भाई श्री नरेशचन्द्र चटर्जी हेड मास्टरी छोड़कर, लम्बे केश रखे साधु के वेश में रह रहे हैं। मैंने उन्हें दण्डवत् किया। वे बोले—"इतनी छोटी अवस्था में पढ़ाई छोड़कर क्यों साधु बनकर चला आया ? जाओ घर जाकर पढ़ो।" फिर भी वहां कुछ दिन मैं रह गया। घर से सब लोग आकर मेरे बड़े भाई को समझाकर मामाजी के घर ले गये, उनके साथ मैं भी आया। माँ और नानी जी का क्रन्दन देखकर बड़े भाई फिर से 'आब्राइपुर' स्कूल में हेडमास्टरी करने लगे। मेरा भी पढ़ने का बन्दोबस्त किया गया। मैं

समस्या में पड़ गया। माँ और नानीजी का स्नेह और क्रन्दन देखकर हताश हो गया—फिर वहाँ से चले जाने का कोई उपाय न रहा।

नानीजी मुझ से कहने लगीं—"मुझे छोड़कर मत जा।" शिशु अवस्था से ही मुझमें उनकी अधिक ममता थी। हम पांच भाइओं में से मेरे प्रति उनका अत्यधिक स्नेह था। नानी जी और माताजी रोती हुई कहने लगीं—"तू चला जायेगा तो हम नहीं जी सकेगें। तुझे यहाँ पर बिल-वृक्ष के नीचे एक कुटिया बनवा देगें, यहीं पर प्रभु का नाम, भजन कर। तू साधु बनकर चला जायेगा तो तुझे कौन खाने को देगा, कौन तुझे स्नेह करेगा ?" मैंने कहा "नानी जी तब तो मैं आप लोगों जैसा गृहस्थी बन जाउंगा। सम्बन्धिओं को लेकर तीव्र वैराग्य, तीव्र भजन नहीं होता। तब उन लोगों को लेकर, उनके सुख दुःख को लेकर यह जीवन व्यर्थ हो जाता है।" इस बात पर माँ ने कुछ भी नहीं कहा।

मां मेरे जीवन के विषय में सब कुछ जान गयी थीं। वे मुझसे गृहस्थी बनो या साधु बनो ऐसी कोई बात नहीं कहती थी। केवल स्नेहवश मुझे खाने को देतीं और स्नेहवश मेरा मुख निहारती रहतीं। इस प्रकार बीस दिन बीत गये। हृदय व्याकुल हो उठा—घर छोड़ने के लिये। एक दिन पोटली बाँधी। भाभीजी ने कम्बल छुपा लिया। माँ और नानीजी रोने लगीं। उन्हें देखकर न जा सका। फिर दो दिन बीते सोचा रात को छुपकर भाग जाऊंगा। मन में यही निश्चय कर लिया दूसरे दिन रात के दो बजे रवाना हो गया। सोचा

पातुरिया में हृषीकेश दादा के पास जाकर श्रीजगद्‌बन्धु जी के स्थान पर जाकर भजन-साधन करूंगा।

मामाजी के घर से प्रायः दस-बारह मील दूर चला आया—जंगल के रास्ते से आया। दोनों तरफ गहरा जंगल, बीच में से एक छोटा सा रास्ता। उस रास्ते से ही निर्भीक चित्त होकर चल रहा था। घोर अन्धकार में से थोड़ा-थोड़ा रास्ता दिखाई पड़ रहा था। इसी समय दूर रास्ते से वराह का भीषण स्वर सुनाई देने लगा। मैं ने किंकर्त्तव्य विमूढ़ होकर निकटस्थ वृक्षपर चढ़ने की चेष्टा की। परन्तु आस पास की झाड़ियों के कारण नहीं चढ़ सका। निरुपाय होकर श्रीहरि को स्मरण करने लगा। श्रीजगद्‌बन्धु जी का नाम भी लेने लगा। श्रील बाबाजी महाशय का मृदुमन्द हास्य से भरा हुआ मुखमण्डल स्मरण हुआ। निरुपाय अवस्था में आगे बढ़ते ही ठोकर खायी। हाथ लगाने पर पता चला कि सामने कमर तक एक ऊंचा स्तम्भ है जिसके नीचे से पानी बह रहा था। मैं आश्चर्य-चकित होकर उसके ऊपर जैसे ही चढ़ा ततृक्षण वराह ने आकर उस स्तम्भ पर दातों से आघात किया, स्तम्भ टूट पड़ा। स्तम्भ सहित मैं पानी में गिर गया। वराह उसी रास्ते से चला गया। मैं आनन्द से श्रीहरि की कृपा एवं श्रील बाबाजी महाशय की कृपा अनुभव करते-करते मूर्छित हो गया।

दिन को मछली पकड़ने वालों ने आकर देखा मेरा आधा शरीर पानी में और आधा ऊपर, मूर्छित होकर पड़ा हुआ है। वे उसी अवस्था में मुझे उठा लाये और पानी का छींटा दिया। मैं उठ बैठा। वे कहने लगे—"साधु तुम

बाल बाल बच गये। इस खम्बे के ऊपर खड़े हुये थे,इसी कारण बच गये बराह जंगली था। शिकारी लोगों ने उसके पेट में छेद कर दिया। इसी कारण हिंस्र होकर उसने तुम पर आक्रमण किया था। खम्बा टूट गया और आप गिर गये। प्रभु की कृपा से आप बच गये।

सूर्य निकल आया था। मैं श्रीहरि, श्रीजगद्‌बन्धु एवं श्रील बाबाजी महाशय की करुणा से बच गया, यही सोच रहा था कि इतने में बन्दूक की आवाज सुनाई दी। वहां के जमीदार बराह शिकार के लिये आये थे। कुछ दूर एक जंगल में शिकारियों ने वराह पर आघात किया था, वह इस रास्ते से निकल कर जब बाहर निकला तो यहाँ के जमींदार ने उसको गोली से मार डाला। विकट चीत्कार करते हुये बराह गिर पड़ा और मर गया। हम सब देखने को गये। मेरी बात सुनकर सब आश्चर्य-चकित हो गये। मैं उन लोगों से दो चार बातें करके धीरे-धीरे रवाना हो गया। सोचा इन जंगलों से रात को नहीं जाऊंगा। दिन को ही जाऊंगा।

चलते चलते पातुरिया में हृषिकेश दादा के पास आ पहुँचा। उन्हें सब वृत्तान्त कहा। उन्होंने मुझे हृदय से लगा लिया। अब मैं उनके पास रहकर गान-कीर्तन करने लगा। एक दिन दोनों ने मिलाकर श्री जगदबन्धुजी के आंगिना में जाने का निश्चय किया। वहाँ जा कर देखा खूब कीर्तन हो रहा है अनेक साधु महात्मा हैं। हमने सोचा उन्हें जाकर पूछने से ज्ञात हो जायेगा कि श्रील बाबाजी महाशय कहाँ पर हैं। वे निश्चय ही जानते होंगे, कारण श्रील बाबाजी महाशय

श्रीजगदबन्धु जी के भक्त हैं। वे ही उनको घर से निकाल कर लाये हैं, कीर्तन सिखाया है—लोगों से यह सब सुना था। हम दोनों फरीदपुर में श्रीजगदबन्धु के 'आंगिना' मे जा पहुंचे। मैं निश्चिन्त था, क्योंकि अब स्वजनों से दूर आ चुका था।

'आंगिना' में बादल विश्वास, मतिछन्न, महेन्द्र दा, कृष्णदास दा, प्रेमदास, कुंज दा एवं उद्धारण प्रभृति भक्तवृन्द थे। मुझे उनका मधुमय सङ्ग मिला। उनके संग मैं नाम कीर्तन करता। मेरे बड़े भाई अब यहाँ पर नहीं थे। उन्हें सब समझा कर घर ले गये थे। संसार में रहकर स्त्री, माँ, नानीजी और भाइयों का प्रतिपालन करने के लिये फिर से बालियाकन्दि स्कूल में हेड मास्टर बनकर पढ़ाने लगे थे। लड़कों को ब्रह्मचर्य की शिक्षा देते। श्रीहरि का स्मरण करके संसार धर्म का पालन करने का उपदेश देते। किन्तु वे फिर १०/१२ वर्ष के पश्चात् संसार त्याग कर संन्यासी बन गये और समधिप्रकाशारण्य नाम से परिचित हुये। वे दिनाजपुर में एक आश्रम बनवाकर वहीं पर रहते थे। कभी-कभी धर्म विषयक भाषण देने जाते थे। बहुत लोग उनके शिष्य बने। आज से दो वर्ष पहले ३० वर्ष के बाद मैं उनसे श्रीधाम नवद्वीप में मिला। वे हमारे आश्रम समाज बाड़ी में आये थे। उस समय मुझे उन्होंने बहुत उपदेश दिये। उसके पश्चात् मैं ने उन्हें एक कीर्तन सुनाया। वे भाव से अभिभूत हो गये। वह कीर्तन था—

"नाचे शचीसुत, लीला अदभुत, चलनि डगमगि भंगिया।
संगे कत कत, भकत गाओयत, हिलन गदाधर रंगिया॥
आजानु बाहु तुलि, बलये हरि हरि,
आपनि निज रसे मातिया।

बदन मण्डल, करे टलमल दशने मोतिम पातिया ॥
कषित कांचन, किरण झलमल, सतत कीर्तन रंगिया।
अरुण नयने, बरुण आलय, अझोरे झरे दिन रातिया ॥
पंगु अन्ध जत, पतित दुर्गन देओयल सबे, प्रेम जाचिया।
करुणा देखि मने भरोसा बाढ़ल, दास नरहरि छतिया ॥"

अर्थ—श्री शचीनन्दन गौर सुन्दर नाच रहे हैं उनकी अद्‌भुत लीला है, प्रेम मतवाली डगमग चलन है। संग में अनेक भक्त गायन कर रहे हैं। श्रीगदाधर जी संग में मधुर नृत्य कर रहे हैं। आजानुलम्बित भुजाएं हैं, हरि २ बोलकर स्वयं अपने रस में मत्त हो रहे हैं। श्रीमुख मण्डल टलमल कर रहा है मुख में दन्त पंक्ति मोतियों की लड़ी की तरह चमक रही है। शरीर का तपे हुए सोने जैसा रंग है, उसमें से किरणें झलमल कर रही हैं, निरन्तर कीर्तन रंग में विभोर हो रहे हैं। अरुण नयनों रूपी समुद्र से निरन्तर अश्रुधाराएँ प्रवाहित हो रही हैं। पंगु, अन्ध आदि जितने भी पतित, दुर्गत जीव हैं, सबको प्रेम लुटा रहे हैं। नरहरि दास जी कहते हैं कि महाप्रभु जी की करुणा देखकर मेरे हृदय में भरोसा बढ़ गया है (कि मुझ पतित का भी अवश्य उद्धार होगा) सखीमा के बरामदे में बैठकर जब मैं यह पद गाने लगा वे अश्रुजल से वर्षात करने लगे। गैरिक वस्त्रधारी, मुण्डित मस्तक सन्यासी भी श्री महाप्रभु की कथा सुनकर अश्रुबिसर्जन करते हैं—ऐसी है करुणामयी लीला श्रीमहाप्रभु की। विस्मित होकर मैंने उन्हें दण्डवत् किया, वे चले गये फिर उनसे कभी भेंट नहीं हुई। हृशीकेश दा और मैं प्रभु जगद्‌बन्धु के भक्तों सहित घूमने लगे। प्राय: सभी समय मेरे नेत्र अश्रुजल रिक्त रहते थे।

इसी कारण वे मुझे भावलहर कहकर पुकारते थे। कीर्तन के आनन्द में मैं उनके साथ एक से दूसरे ग्राम में घूमने लगा—राजबाड़ी, गोयालचामट, फरीदपुर शहर। घूमते-घूमते और अच्छा नहीं लगा। इसलिये मैं और हृशीकेशदा दोनों सुधन्य मित्र महाशय की दुकान पर आ पहुंचे। श्रीसुधन्य मित्र महाशय हमें स्नेह करने लगे। हम उनसे वैष्णव धर्म का सब सिद्धान्त सुनने लगे। सुना श्रील रामदास बाबाजो महाशयके यह परम बन्धु हैं। इस कारण मैंने उनसे पूछा—"वे कहाँ रहते हैं? किस प्रकार से उनका दर्शन लाभ होगा।' मैं ने कहा—दो तीन वर्ष पहले, स्कूल में पढ़ते समय उनका दर्शन पाया। वे मुझे बहुत स्नेह करते हैं—क्या मुझे फिर उनका दर्शन मिलेगा?" यह कहते कहते मैं रो पड़ा। उन्होंने कहा "अच्छा, मैं तुम्हें उनका पता दे दूंगा। तुम लोगों के पास रुपये भी नहीं है, मैं दे दूंगा। टिकट लेकर कलकत्ते में उनके पास जाना। वे कलुटोला स्ट्रीट में गोपाल लाल शील के घर में रहते हैं। वहीं रहकर नाम प्रचार करते हैं।"

मैं यह सुनकर शान्त हुआ। आशा से हृदय भर उठा। अब मैं घर छोड़कर चला आया वे निश्चय मुझे चरणाश्रय देगें। एकदिन सन्ध्या के समय हृशीकेशदा और मैं कलकत्ते लिये रवाना हो गये। मैं पहली बार कलकत्ता आया। शीलबाबू के घर उनका दर्शन नहीं मिला। एक दिन पूर्व वे सिंथि चले गये थे। यहाँ पर श्री फणिदास बाबाजी थे। उन्होंने हमें स्नेह-वश प्रसाद दिया। दो दिन पूर्व यहां नवरात्र संकीर्तन यज्ञ समाप्त हुआ था। कितने ही साधु वैष्णव गोस्वामी लोग आये थे। बहु अर्थ व्यय करके यह नामयज्ञ हुआ था। ऐसे महोत्सव

बहुत कम होते हैं। उस दिन उत्सव की मिठाइयां पड़ी हुई थीं। जो सौभाग्यवश हमें भी मिलीं।

श्री फणिदास बाबाजी मुझे समझाने लगे—"इतनी छोटी अवस्था में क्यों साधु बनने आये हो ? जाओ घर लौट जाओ।" उसी समय मेरे दूसरे भाई वहाँ आकर उपनीत हुये। सफेद चादर, मुण्डित मस्तक, गले में तुलसी माला देखकर आश्चर्य से बोले—"पढ़ाई छोड़कर साधु बनने आया है ? जा घर चला जा। विद्या अर्जन के बिना, बी. ए. पास के बिना कोई ज्ञान नहीं होता है। जो मूर्ख होते हैं वे ही साधु सजते हैं। माँ, नानीजी सब व्याकुल हो रहे हैं। तेरी कोई खबर उन्हें नहीं मिली। आज ही तू चला जा। देख मैं आई ए. की परीक्षा देकर आया हूँ। जब तक परिणाम न निकले तब तक इन लोगों के साथ रहूँगा, महोत्सव देखूंगा। श्रील बाबाजी महाशय का सङ्ग लाभ होगा, देश-विदेश में घूमुंगा, पास होने की खबर पाते ही माँके पास चला जाऊंगा। फिर बी० ए० पढ़ूंगा। बिना पढ़ाई के कुछ नहीं होता।

मैं आश्चर्य से मानो आकाश से गिर पड़ा। सोचा-हाय ! श्रील बाबाजी महाशय का दर्शन लाभ क्या नहीं होगा ? आखों में आँसू आ गये। मँझले भाई के शासन से मैं भयभीत हो गया। वे बोले—"मैं कुछ दिनों के बाद माँ के पास जाऊंगा। चलो मेरे साथ ही जाना। मैंने कातर कण्ठ से कहा—भाई मुझे एकबार श्रील बाबाजी महाशय से मिला दो, फिर आप जो कुछ कहोगे मैं मान जाऊंगा।" भाई मुझे साथ लेकर फणिदास बाबाजी महाशय के साथ 'सिंथि' ले आये। यहाँ

श्री गोपीदास जी के घर श्रील बाबाजी महाशय ठहरे थे। यहां के 'हरिसभा' में अष्टप्रहर नाम कीर्तन होगा। सुबह १० बजे हम उनके निकट आ पहुँचे। श्रील बाबाजी महाराज के दर्शन करके, उनके श्रीचरणों में मस्तक रखकर दन्डवत किया। वे हँस कर बोले—"मयना (मैना) इसबार ब्रह्मचारी सजा है! कहाँ से आया ब्रह्मचारी?" मेरे भाई के प्रति बोले। मेरे भाई कहने लगे—"देखिये तो माँ को रुला कर छः महीनों से पढ़ाई छोड़कर इधर-उधर घूम रहा है।" मैं सर्वथा निश्चल होकर खड़ा रहा। श्रील बाबाजी महाशय केवल हँसने लगे। मेरे भाई ने कहा—"मैं इसे लेकर दो एक दिन में माँ के पास नलिया जाऊँगा। मेरी परीक्षा का परिणाम निकल गया है। पास हो गया हूँ।" इसीलिये। यह कहकर वे कीर्तन में चले गये। कीर्तन सुनकर और प्रसाद पाकर हमने विश्राम किया। प्रातः काल नींद खुल गई। उठकर सुना प्रभात कालीन सुर में श्रील बाबाजी महाशय कीर्तन कर रहे हैं—

"श्रीगुरु वैष्णव, तुहाँरि चरण, शरण ना कोइनु आमि।
विषय विषम विष भाल जानि, खाइछु हइया कामी॥
सेइ विषे मोरे जारिया मारिले, बड़इ विपाक हइले।
जनमे जनमे एमनि, कतेक आत्मघाती पाप कैल॥
सेइ अपराधे, ए भवसागरे, बाँधिल ए माया जाले।
तोमा ना भजिया, आपना खाइया, आपनि डुबिनु हेले॥
आर कत काल, ए दुःख भुंजिब भोग देह नाहि जाय;
सहिते नारिया, कातर हइया निवेदिछि तुआ पाय॥
ओ रांगा चरण, शरण केवल, बिचारिया एइ दाय।
उद्धार करिया, लह दीनबन्धु आपन चरण-नाय॥

तोमारि सेबन, अमृत भोजन, कराइया मोरे राख।
ए 'राधामोहन' खते बिकाइलो, दास गणनाते लिख ।।

अर्थ—हे गुरु वैष्णव गण मैंने आपके चरणों की शरण नहीं ली, मैं विषम विषय रूपी जहर को सुख रूप जान कर सदा खाता रहता हूँ। उस जहर ने मुझे जला डाला है तथा मेरा तन मन निरन्तर दग्ध हो रहा है जन्म जन्मान्तरों से मैं आत्मघाती अनेकानेक पाप करता आ रहा हूँ। उसी अपराध के कारण, मैं माया जाल में बँधा हुआ, आपको न भज कर स्वयं को खाकर, भवसागर में डूब रहा हूँ। और कितने समय मैं यह दुःख भोगता रहूँगा ? मुझसे अब और सहा नहीं जा रहा है अतएव मैं कातर होकर आपके चरणों में यही निवेदन करता हूँ कि आप मेरी दशा पर विचार करके केवल अपने अरुण चरणकमलों की शरण प्रदान करो। मेरा उद्धार करके हे दीन-बन्धु मुझे अपने चरणों में ही रखो। अपने चरणों की सेवा रूपी अमृत का ही मुझे भोजन कराओ, 'श्रीराधामोहन' जी कहते हैं कि कृपा करके मुझे अपने दासोंकी गिनती में लिख लो। कीर्तन सुनते सुनते मैं मुग्ध हो गया। छुपकर रो रहा था ताकि भाई को दिखाई न दे। सारा समय भय-भीत अवस्था में बीत गया। प्रातः कालीन स्नान न कर पाया।

पास ही एक तालाब था। जाकर स्नान किया और गीले कपड़े निचोड़ कर पहने। हृशीकेशदा के साथ गीले बालों में श्रील बाबाजी महाशय के पास आया। श्रील बाबाजी महाशय हँसकर बोले "क्या प्रातः स्नान सात बजे भी होता है ? क्यों रे ब्रह्मचारी आज ४ बजे उठकर स्नान नहीं हुआ ?"

मैं बोला "कहाँ हुआ ! आपका कीर्तन सुन रहा था।" तभी श्री फणिदास जी बोले तुम्हारा कीर्तन सुन रहा था ! तब तो तुमने निश्चय ही उसका सिर फिरा दिया है। तुम्हारा तो "लड़के पकड़ने वाला" नाम ही फैल गया है। इसी तरह दोनों सख्य प्रेम से हास परिहास करने लगे। श्री अद्वैतदास बाबाजी आकर परिहास में सम्मिलित हो गये। मैं बिलकुल मुसीबत में पड़ गया। भाई के डर से मैं बिना कुछ कहे चुप-चाप खड़ा रहा। दो बजे प्रसाद पाने के लिये बुलाया गया। श्रील बाबाजी महाशय पूर्ववत् भाई को और मुझे साथ बिठा-कर प्रसाद पाने लगे। कभी-कभी श्रील बाबाजी महाशय अपने प्रसाद से प्रसाद उठाकर मुझे देने लगे। मैं उनका अधरामृत आनन्द सहित पाने लगा। प्रसाद पाकर श्रील बाबाजी महाशय विश्राम करने लगे। मैं उनके पारिषद श्रीअद्वैतदास प्रभृति के साथ बातें करने लगा। सन्ध्या हो गई। श्रील बाबाजी महाशय अब कीर्तन में जायेंगे। इसलिये मैं और भाई उन्हें दण्डवत करके 'शियालदा' स्टेशन रवाना हो गये। ऋषिकेशदा उनके पास रह गये।

मैं भाई के साथ गाड़ी में चढ़ा। गाड़ी बिलकुल खाली थी। चादर बिछाकर भाई सो गये। मैं बैठे-बैठे मन में कितना कुछ सोचने लगा—श्रील बाबाजी महाशयके सङ्ग-लाभ से वंचित हुआ। भाई मुझे पकड़ लाये, पर मैं कभी भी घर में नहीं रहूँगा। माँ के साथ अन्तिम बार मिलकर फिर चला आऊंगा। यही निश्चय करता रहा। संध्या के समय मामाजी के घर आ पहुँचा। माँ और नानीजी दूर से मेरे आने का संवाद पाकर दौड़ आई मुझे देखते ही नानीजी मूर्छित हो गईं ! माँ

मुझे गोदमें लेकर अश्रुकण्ठ से कितना स्नेह करने लगीं। थोड़ी देर के बाद ही नानीजी उठ बैठीं। उठकर मुझ से लिपट गई। रोते-रोते कहने लगीं—"मयना मैं तेरे लिये पागल हो गई थी। यह देख मैं रो-रो कर अन्धी हो गई हूँ। क्या तू पत्थर है? मैंने तुझे पाला-पोसा। सब भाईयों में तू मुझे सबसे प्यारा है। तुझे छोड़कर मैं नहीं बचूँगी"। इस प्रकार वे अपने हृदय की वेदना प्रकट करने लगीं।

मैं माँ और नानी जी को सान्त्वना देने के लिये बोला—"मैं तुम लोगों को कभी छोड़कर नहीं जाऊंगा। मैं नानी जी को 'आजिमा' पुकारता था। माँ और नानी जी को दण्डवत् किया। वे मेरा हाथ पकड़कर घर ले गये। माँ और नानी जी का स्नेह-वात्सल्य सब कुछ भुला देता है। आजिमा कभी भी मुझे अपनी दृष्टि से बाहर नहीं करती थीं—क्या पता कहीं मैं फिर न भाग जाऊँ! मैं ने भी उनके साथ कुछ दिन ग्राम के बालकों को लेकर कीर्तन आनन्द करके बिता दिए। यहाँ के जमीदार बदीबाबु ने मुझे 'खोल' लेकर दिया। उनकी पत्नी भी मुझे खूब स्नेह करती थीं। इस प्रकार १०/१५ दिन कीर्तन आनन्द में बीत गये। पर साथ ही मैं अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था कि किस प्रकार से इस माया-जाल को तोड़कर निकलूं। सुयोग नहीं मिल रहा था। एकदिन सुबह कम्बल लोटा लेकर निकलने लगा, तभी नानीजी और माँ मुझे पकड़ कर रोने लगीं। मैं नहीं जा पाया। बड़े भाई और दूसरे भाई मुझे डाँटने लगे, समझाने लगे। परन्तु मेरे निकट यह सब व्यर्थ हो गया।

श्रील बाबाजी महाराज की वह मधुर मुस्कान, उनके वह स्नेह सिंचित नयन सदैव हृदयपट पर घूम जाते थे। तब सब स्नेह प्यार दूर चला जाता था। उनके उस प्रेम सिंचित नयन-युगल के सम्मुख पृथ्वी के सभी प्रेम-सम्बन्ध मिट जाते थे। मैं ने तब दीक्षा नहीं ली थी। अथवा दीक्षा लेने की कोई इच्छा भी नहीं की थी, पर उन्हें भुला नहीं सकता था। मेरे मन-प्राण को बस में करके वे मेरे हृदय में विराज रहे थे। मैं ने यह बात किसी को नहीं बताई। भाईयों ने मुझे फिर पढ़ाने का निश्चय किया; दो चार दिन स्कूल भी गया। बड़े भाई हेड-मास्टर साहब—मुझपर खूब शासन करते हुये बोले—"मन लगाकर पढ़ो"।

मुझे श्रील बाबाजी महाशय का कीर्तन स्मरण हो आया—"प्राणाराम हरिनामेर (का) पढ़ा, सर्व-विद्या जीवनी शक्ति, से पढ़ा तो पढ़नाई! 'बालियाकान्दा' स्कूल के हेडमास्टर बड़े भाई ने किसी ब्राह्मण के घर मेरा रहने और खाने का बन्दोबस्त कर दिया। नलिया से बालियाकान्दा सात मील दूर है। शनि-रविवार को माँ और नानी जी से मिल आता। इसी तरह प्राय: एक महिना बीत गया। घर पर और रह नहीं पा रहा था। न जाने कौन मुझे अविरत व्याकुल प्राण से बुला रहा था। सारी माया-ममता तोड़कर एकदिन रात को माँ का एक सफेद कपड़ा लेकर निकल पड़ा। कपड़े के दो टुकड़े किए—एक पहना, दूसरा ऊपर ओढ़ लिया।

सदा के लिये संसार की माया ममता छिन्न करके श्रीहरि का भजन करुंगा, निर्जन स्थान पर जाकर—मैंने यही

जीवन का उद्देश्य समझा। दो तीन वार तो मुझे पकड़कर ला चुके हैं। इसलिये सोचा किसी अनजान देश में घूँमूगा—काशी, वृन्दावन चला जाऊंगा— किसी को मेरा पता नहीं मिलेगा। जिस तरफ दृष्टि ले जाने लगी, उसी तरफ चलने लगा। रात के दो बजे निकला था—अविराम चलता रहा ठाकुर जी का नाम लेते लेते। दोपहर के तीन बजे एक अनजान गांव में जा पहुँचा।

वहाँ मुझे कोई नहीं जानता था। वहाँ एक तालाब देखा। मैं श्रान्त-क्लान्त हो चुका था। प्यास से गला सूख गया था। मैं तालाब के घाट पर बैठ गया। रास्ता चलकर पैर दुखने लगे थे। प्राय: ३१ मील चलकर आया था। भूख और प्यास से प्राण निकल रहे थे। तालाब में जाकर अंजलि भर के खूब पानी पिया, प्यास से निवृत्त होने पर भूख भी कुछ कम हो गयी। ऊपर उठकर विश्राम करने लगा। माँ का कपड़ा फाड़ कर दो टुकड़े किए थे। एक पहना, दूसरा वहाँ बिछाकर सो गया। तभी नींद आ गई। संध्या हो गई, प्राय: छ: बजे होंगे। इस समय कुछ लोगों की बातों से जाग उठा। देखा सात-आठ बड़े कुल की बहुएं मटकी उठाये पानी लेने आई हैं। उन्होंने सरल भाव से पूछा—"तुम साधु बने हो ?" एक बोली—"तुम्हारा मुँह सूख गया है। कुछ खाया नहीं ? तुम्हारे तो बड़े अच्छे बाल हैं। इतनी छोटी अवस्था में क्यों साधु बने हो ?" मैं बोला—"माँ मुझे बहुत दूर जाना है। इसी कारण बचपन से ही श्रीहरि के सन्धान में निकल पड़ा हूँ।" वे बोली "नहीं बेटा, तुम्हें देखकर हमें बहुत ममता हो रही है। कुछ खाया नहीं ?" मैं ने कहा "ना माँ कुछ भी नहीं।

इस तालाब का पानी पीकर सो गया था।" उनमें से एक मटकी रखकर घर चली गई और थोड़ी देर बाद अपने पति और श्वसुर को साथ लेकर मेरे पास आयी। उसके पति बोले—"मेरी पत्नी ने आपको देखकर मुझे खबर दी कि आज आपका भोजन नहीं हुआ, इसलिये मैं आपको लेने आया हूँ। मैं बोला—"मुझे आप 'आप' 'आप' कहकर न पुकारिये, कारण मैं तो बालक हूँ। मेरी आयु केवल १५ वर्ष है। आप कितने बड़े हैं। आप मुझे 'तू' या 'तुम' कहकर सम्बोधन करिये।" वे हँसकर आनन्द पूर्वक मुझे थोड़ी दूर पर अपने घर ले आये। घर में एक कमरे में मुझे रहने के लिये कहा। मैं बोला—"मैं श्रीहरि को पाने के उद्देश्य से निकला हूँ। इसलिये इस वृक्ष के नीचे ही रहूँगा।

उनके घर के निकट एक सुन्दर आम का वृक्ष था। मैं उसके नीचे कपड़ा बिछाकर बैठ गया। वे कायस्थ जाति के थे। उन्होंने चूल्हा लाकर रख दिया। चावल, केला, थोड़ (केले का डण्डा) परमल और कितना कुछ लाकर रख दिया और पकाने को कहा। भूख तेज लगी थी। चावल और सब्जी उबाल कर पंचदेवताओं को निवेदन करके प्रसाद पाया। वे भी खुश हो गये। वे समझ गये कि मैं बहुत भूखा था। जूठा स्थान साफ करने गया तो महिलाएं कहने लगीं—"आप ब्राह्मण, साधु हैं। बड़े भाग से आपका जूठा साफ करने को मिला है। और निःसंकोच भाव से पूछने लगीं तुम्हारा नाम क्या है, घर कहाँ है, माता पिता हैं या नहीं। मैं उनके प्रश्नों का उत्तर देने से कतराता गया। यदि ये मुझे पहचान लें या मेरा परिचय निकल जाय तो मुझे फिर घर पकड़ कर ले जायेंगे।

परिचय न देकर बोला—माँ मैं फकीर हूँ। हम लोगों का परिचय नहीं पूछते। मुझे जो आप देख रहे हो। यही मेरा परिचय है; लम्बे बाल, गले में यज्ञोपवीत, फकीर साधु का वेश, यही मेरा परिचय है। वे मृदुमन्द हँसने लगे और फिर परिचय सम्बन्धी जिज्ञासा नहीं की।

रात के नौ बज गये मैं गाने लगा—"कि छाड़ आर केन माया, कांचन काया तो रबे ना। दिन जाबे दिन रबे नात, दिन पाबि तुइ कबे। आज पोहाले काल, कि हबे,कि हबे तोर तबे। साब कधखनो मेटे ना भाई,साधे पड़ुक बाज। बेला-बेलि चल रे चलि, साधि आपन काज। भवे केउ कारो नय, देखना चेये, कबे फुटबे आँखि। आपन रतन बेछे ने चल हरि बोले डाकि।"

भावार्थ—तेरी यह कंचन-काया तो रहेगी नहीं, तो क्यों न तू इसकी ममता छोड़ दे। दिन तो बीत जाते हैं, वह ठहरा नहीं करता, तेरा दिन (हरि भजन के) कब आएगा ? आज के बाद कल, और कल के बाद तेरा क्या होगा। साध तो कभी मिटती हो नहीं, उस पर बिजली टूट पड़े, समय रहते रहते तू अपना कर्तव्य-कर्म कर ले। तेरी आखें कब खुलेगीं, जरा चारों ओर देख तो—इस भवसागर में तेरा अपना कोई नहीं है। हरिनाम लेते हुये तू अपने अमूल्य रत्न की पहचान कर ले।

यह गान मुझे बहुत प्रिय था। इसे प्रायः गाया करता था। कण्ठस्वर तब मीठा था। पड़ोस के बाबू लोग आश्चर्य-चकित हो गाना सुनने लगे। गाने के निबिड़ आवेश से

कोई-कोई ऐसे विवश-विह्वल हो गये कि उन्हें रोना आ गया। इस प्रकार दो चार गाने गाए। गाते - गाते साढ़े दस बज गये। बहुओं ने दूध केला लाकर दिया। मैं खाकर सो गया। चार बज गये। शौचादि समाप्त करके गाने लगा—"जागो जागो नगर वासी निशि अवसान रे, गुरु गौरांग बले (बोलकर) उठो रे कुतुहले, शीतल हवे मन प्राण रे।" गाना सुनकर बाबू लोग और बहुएँ सब दौड़ आये। छः बज गये, स्नान करके संध्या गायत्री जपने लगा। बहुएँ कभी-कभी अपना काम काज छोड़कर मुझे देखने आतीं, कितनी प्रीति पूर्वक बातें करतीं। कोई संकोच नहीं करतीं, वे कहने लगीं—"आज आपको दाल सब्जी सब कुछ बनाना पड़ेगा।" मैं बोला "माँ मुझे बनाना नहीं आता। मुझे ऐसा ही अभ्यास हो गया है। कोई कष्ट नहीं होता।" वे बोली "तब दूध घी ज्यादा देंगे, वही खाना।" मैं आखिर राजी हो गया। पड़ोस की स्त्रियाँ दूध, घी, चावल ले आयीं। मैं बोला "माँ! मैं इतनी सामग्री का क्या करूँगा?" वे बोली "नहीं बेटा तुम्हें रसोई करनी पड़ेगी, ऐसे हम नहीं छोड़ेंगे।" मैं ने सभी की सामग्री से थोड़ा-थोड़ा लेकर बनाकर खाया। बाकी सामग्री पड़ी रही, कोई वापस नहीं ले गया।

दूसरे दिन और कितनी सामग्री आ गई। सबने मिलकर ठीक किया, हम सब मिलकर बनायेगें और साधु-ब्राह्मण के पास भोग लगाकर पायेंगे। मैं बोला ठीक है। मैं ने अपने लिए हविष्यान्न बना लिया, उन सबने खिचड़ी बनायी। करीब २५ व्यक्तियों ने वहाँ प्रसाद पाया। मेरे प्रति उनके हृदय में स्नेह

व ममता जग उठी। तीन दिन बीत गये। वे कहने लगीं आपके लिये यहाँ एक आश्रम बनवा देते हैं, आप यहीं रहिये।

मैं उनके स्नेह, ममता और प्रेम के बन्धन में फँस जाँऊ—यह कैसे सम्भव था ? एक माया को छोड़कर दूसरी माया में फसूँ ! मैं बोला "मैं यहाँ नहीं रहूँगा। तीन दिन हो गये, आज ही रवाना हो जाऊँगा।" यह कहकर रवाना हो गया। बाबू लोग और महिलाएं अश्रु विसर्जन करने लगीं। मुझसे पूछने लगे—'फिर यहाँ कब आयेंगे ?" मैं बोला "ठाकुर जी लायेंगे तो आऊंगा।" यह कहकर मैं वह ग्राम छोड़कर चला गया । पथ चलते-चलते सोचता रहा—कहाँ जाऊं। अकस्मात् स्मरण आया 'पावना' जिले में हिमाइतपुर में श्री अनुकुल ठाकुर नाम के एक साधु हैं। उनको मिलकर श्रीजगद्-बन्धु के आंगिना में जाऊंगा। श्री अनुकुल ठाकुर जी की तब बहुत प्रसिद्धि थी। खूब प्रतिष्ठावान बड़े-बड़े लोग उनके शिष्य बने हैं। यह सब सुना था। उनको देखने के लिए कुष्ठिया आ पहुँचा। वहाँ किसी बकील के बरामदे में रहा। वे दूध बरफो लाये थे, मैं खाकर सो गया। प्रातःकाल उठकर श्री अनुकूल ठाकुर को देखने के लिये खाना हो गया। स्टीमर से जाकर जब वहाँ पहुँचा तब प्रायः दिन के साढ़े दस बजे थे।

नदी के किनारे मुन्दर आश्रम था। १०।१२ भक्तों के साथ वे बैठे थे। मुझे देखकर दौड़ आये और पकड़ कर बोले—"देव बालक आया है।"मैंने सोचा—मैं तो देव बालक नहीं हूँ। गरीब ब्राह्मण का लड़का हूँ। उन्होंने मुझे अपने पास बिठाया, उनका सुन्दर चेहरा,उनके सुन्दर वस्त्र सुन्दर मूछें देखकर और

अस्फुट वाणी सुनकर मैं मुग्ध हो गया। अकस्मात् वे उठकर मुझे साथ लेकर नदी के किनारे घूमने लगे। कितनी प्रीति व्यक्त करने लगे फिर कुर्सी पर बैठे। मैं सामने एक बेंच पर बैठा। वे मुझे अपलक दृष्टि से देखने लगे। मैं भी उन्हें देखने लगा। इस प्रकार ५।६ मिनट बीत गये। फिर मेरे गलबांही डालकर प्रीति पूर्वक बातें करने लगे। उनके भक्त वृन्द यह सब देखकर आनन्दित हो रहे थे।

संध्या आ गई। गान कीर्तन होगा। एक सुन्दर आसन बिछाया गया। वे उस पर जाकर बैठे। नयन मुदित किये। कीर्तन आरम्भ हुआ। कई प्रकार के गान होने लगे। माँ का संगीत रबि बाबू का (रबीन्द्रनाथ ठाकुर) ब्रह्म संगीत, कीर्तन— मैं मुग्ध होकर सुनने लगा। कीर्तन समाप्त होने के बाद 'हरिर लूट' हुई। वहाँ पाँच-सात दिन रहा। श्री अनुकुल ठाकुर महाशय प्रीतिपूर्ण व्यवहार करने लगे। उनके व्यवहार से बहुत आनन्दित हुआ। उनके साथ 'कुष्ठिया' में किसी वकील बाबू के घर रहा। खूब उत्सव हुआ, कीर्तन हुआ। वे फिर पावना में 'हिमाइतपुर' चले गये। मैं भी ट्रेन से फरीदपुर श्री जगदबन्धु जी के श्री आंगिना को रवाना हो गया।

गाड़ी में बैठे सोच रहा था—कितने भक्तों के दर्शन कर रहा हूँ परन्तु श्रील बाबाजी महाशय जैसा 'निताइ-गौर' कहकर रोदनरत स्वरूप तो किसी का नहीं देखा। सदा मृदुमन्द हंसी, मानो मुख मण्डल पर सर्वदा उत्सव लगा हुआ है। इतना रुदन करते हैं फिर भी इतनी बालवत् हँसी। कोई भी तो ऐसा नहीं दीख रहा है। उनका वह अश्रुजल युक्त स्वरूप मेरे

हृदयपट पर अंकित हो चुका था। वह करुण नयन सर्वदा मेरे मानसपट के सामने रहते थे। चेष्टा करने पर भी उन्हें भूल नहीं सकता था। कितने साधुओं के साथ घूमता-फिरता कीर्तन करता पर उनको नहीं भूलता। स्कूल में पढ़ते समय दो दिन और सिंथि में एकदिन मात्र उन्हें देखा था। उनका वह स्नेह किसी प्रकार भी भूल नहीं सका। सोचता था कि एक वैष्णव साधु ने इस प्रकार मेरे मन पर कैसे अधिकार जमा लिया है, वे कुछ जादू तो जानते नहीं, न ही 'हिपनोटाईज' करते हैं। उन्होंने केवल बालकवत् मेरे संग सख्य व्यवहार किया था। तब मैंने सोचा निश्चय ही श्रील बाबाजी महाशय के श्रीमुख पर नाम-मादिका शक्ति है, फिर मैंने सोचा वे ज्यादा गोरे भी नहीं है। फिर इतने सुन्दर क्यों लगते हैं ! मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। तो क्या वे जादूमन्त्र जानते हैं ? नहीं तो। उनका इतना सुन्दर सहज, सरल व्यवहार ! इतने बड़े साधु, महापुरुष। तनिक अभिमान भी तो उनमें नहीं। वे कितने महान, कितने बड़े साधु हैं। कितने लोग उन्हें मानते हैं, कितने बड़े जमींदार, प्रिंसिपल, प्रोफेसर, कितने शिक्षित लोग उनके चरणोंपर लुण्ठित होते हैं—फिर भी उनका इतना सहज सरल सख्यभाव का व्यवहार; आश्चर्य की बात है कि वे ज्यादा पढ़े हुये भी नहीं हैं, मैट्रिक तक ही पढ़े हैं। फिर भी कितने मर्म-स्पर्शी, सांकेतिक और अर्थपूर्ण 'आँखर' देते हैं। यह निगूढ़ 'आँखर' कीर्तन करते-करते अपने आप रचना करते हैं जिनके माध्यम से समस्त शास्त्रों के सिद्धान्त समूह उनके श्रीमुख से स्फूर्ति लाभ करते हैं। उनके कीर्तन में षड़दर्शनवेत्ता बड़े-बड़े ज्ञानी भी विस्मित और मुग्ध हो जाते हैं। बड़े-बड़े ज्ञानी लोग

कहते हैं उनके कीर्तन के 'आँखर' की यदि कोई व्याख्या करे तो एक 'आँखर' पर बड़े-बड़े ग्रन्थ की रचना की जा सकती है। पर वे इतने बड़े होकर भी अभिमान पूर्ण व्यवहार नहीं करते। यह सब सोचते-सोचते फ़रीदपुर पहुँचा।

बिना टिकट के चढ़ा था। टिकट मास्टर आकर बोले "टिकट कहाँ है ?" मैं बोला "मेरे पास पैसे नहीं हैं, टिकट नहीं खरीदा।" वे क्रोध में आ गये। कहने लगे—"जेल में बन्द करूंगा। अभी से साधु बने हो ? बाल भी रख छोड़े हैं। साधु सज कर क्यों फिरते हो ?" मैं बोला "मैं अपने आप ही ऐसा बन गया हूँ। जो सजा देना है दीजिये। पैसा नहीं है, टिकट नहीं खरीदा। फकीर को कौन पैसा देगा ?" वे मेरी बात सुनकर थोड़ा आश्चर्य चकित हो गये। बोले "कितने दिन से साधु बने हो ?" मैं बोला साधु नहीं बना। साधु बनना बहुत कठिन है। केवल साधु का वेश धारण किया है। नहीं तो कोई भिक्षा नहीं देगा, खाने को नहीं देगा।" "कितने दिन से यह वेश बनाया है ?" "कोई साल भरसे।" "कहाँ रहते हो ?" "जहाँ तहाँ घूमता-फिरता हूँ।"

"क्या खाते हो ?" जो जब बुलाकर खाने को देता है, जो कुछ मिलता है खा लेता हूँ। "मांस मछली भी खाते हो ?" "नहीं, मैं वह सब छूता भी नहीं।" "क्यों तान्त्रिक साधु लोग तो खाते हैं।" मैं नहीं खाता, कौन खाते हैं, क्यों खाते हैं क्या जानूं ?" इस प्रकार अनेक प्रश्न पूछकर मुझे लेकर रेलवे स्टेशन पर एक तरफ खड़ा किया। मन में सोच रहा था कि मुझे अब रेल की जेल में ले जाने की तैयारी हो रही है। उन्होंने एक चपरासी को बुलाया, दो तीन सिपाही भी आये।

मैं कुछ डर गया, अब मेरे हाथों में कड़े डालकर जेल में ले जायेंगे। टिकट न लेकर मैंने अन्याय किया है तब सजा भी भोगनी पड़ेगी यह सोच ही रहा था कि टिकट मास्टर बोले—"इस बेंच पर बैठो।" पुलिस अफसर और स्टेशन मास्टर आपस में चुपके से बातें कर रहे थे। मैं ने सोचा निश्चय ही मेरे बारे में बातें कर रहे होंगे। अब तो जेल में ही जाना पड़ेगा। अकस्मात् श्रील बाबाजी महाशय की याद आई। यदि आज उनके पास रहता तो यह आफत न होती। उन्होंने कितना स्नेह किया था मुझे कभी हाथों में कड़े डालकर जेल जाने न देते। यह सब सोच ही रहा था कि टिकट मास्टर और उनकी पत्नी ने आकर मुझे प्रणाम किया। मैं आश्चर्य-चकित हो गया—यह क्या हुआ ? टिकट मास्टर और उनकी पत्नी बोले—"आप हमारे क्वाटर पर चलिये, वहाँ विश्राम करिये। स्नान भोजन आदि करिए। रात को गाड़ी में आए हैं, भोजन आदि कुछ नहीं हुआ ? मैं बोला "नहीं।" उनकी पत्नी मेरी ओर सजल नयन से देखने लगीं। न जाने उनमें कितना स्नेह बरस रहा था।

मैं तब बैठे-बैठे सोचता रहा—यह क्या हुआ, सारा कुछ उलट गया श्रील बाबाजी महाशय के स्मरण मात्र से ही। क्या उन्होंने इस प्रकार सारा उलट दिया अथवा मेरे भाग्य से ही ऐसा हुआ—कुछ समझ में नहीं आ रहा था। अन्त में समझा यह निश्चय ही श्रील बाबाजी महाशय की कृपा है। एक कमरे में उन्होंने एक कम्बल बिछाकर तुलसी का एक गमला लाकर रख दिया। तेल लाकर बोले—"तेल लगाकर स्नान करिये। मैं बोला—मैं बहुत दिनों से तेल नहीं लगाता।

वे कुछ नहीं बोले। बालटी में पानी ला दिया, स्नान करके गायत्री जाप करने बैठा। वे जात के ग्वाला थे। चूल्हा ला दिया। मैंने खिचड़ी बनाई और तुलसी देकर प्रसाद पाया। उस समय भोग कैसे लगाते हैं मैं नहीं जानता था। तुलसी देकर सब प्रसाद पाते हैं यह देखा था। मैंने भी वही किया। मन में सोच रहा था—मैं ब्राह्मण होकर भी इन लोगों जैसा भक्तिमान तो नहीं हूँ। यह लोग मुझे कितनी भक्ति पूर्वक अपने घर ले आये। कितनी सेवा कर रहे हैं। मैं तो केवल साधु का वेष धारण किये हूँ। इन लोगों जैसी विनम्रता तो मुझमें नहीं है। इन लोगों ने मुझे भक्ति से दण्डवत् किया पर मैंने तो नहीं किया।

ब्राह्मण होनेपर बहुत अभिमान होता है—यह मेरे मनमें आया। उस दिन उन्होंने मुझे अपने ही घर में रहने का बहुत आग्रह किया और बोले दूसरे दिन आपको टाँगे द्वारा आँगिना पहुँचा देंगे। अन्त में मैं राजी हो गया उस दिन उनके घर में ही रह गया। सन्ध्या हो गई, माँ और उनकी कन्या आकर धूप इत्यादि जलाकर रख गये। मैं उनके इस प्रीतिपूर्ण व्यवहार को देखकर मुग्ध हो गया। टिकट मास्टर बाबू बार-बार क्षमा प्रार्थना कर रहे थे—"मैंने आपके साथ दुर्व्यवहार किया है। आप बुरा न मानिये। मैंने आपको गलत समझा था। मुझे क्षमा कर दीजिये। इस प्रकार वह क्षमा याचना करने लगे।

कुछ देर बाद मैं ने घर में वैष्णव, वैष्णवी से जो गाना सुना था वही गाने लगा—

"माटिते चाँदेर उदय के देखबि आय।
एमोन युगल चाँद केउ देखिसनि, देखबि नदीयाय ॥
हेरिये गौरांग चाँदेर मुखशशि,
लाजे गगन चाँद पड़े खसि।
ए चाँद षोल कलाय पूर्ण दिवनिशि।
हेरे पाप ताप तमोराशि दूरे पालाय ॥
यज्ञ सूत्रे किवा शोभे गला,
तुलसीर माला करे हेला-दोला।
राधा प्रेमे होये भोला,
आपनि काँदिये गोरा जगत काँदाय ॥
अनुराग कलंक हृदे पोरा,
पीत धरा त्येजे कोपोन परा।
राधा प्रेमे बुझि आँखि झरा,
ताइ आपनि काँदिये गोरा जगत भासाय ॥

गान सुनकर वे बहुत मुग्ध हुए। बोले—"आप कुछ दिन यहाँपर रहिये।" मैं बोला—"ना मैं यहाँ अधिक नहीं रह सकता, कल सुबह श्रीबन्धु सुन्दर के आश्रम में मुझे जाना है।

रात के दस बज गये। टिकट मास्टर बाबू पास आकर बैठे और प्रीति पूर्वक पूछने लगे—"आप आंगिना' में कितने दिन रहेंगे?" मैं बोला—"थोड़े दिन रहकर एकबार श्रीनवद्वीप धाम देखने को जाऊंगा।" नवद्वीप धाम सुनकर वे बहुत आनन्दित हुए और बोले "मैं भी नवद्वीप का रहनेवाला हूँ। आप जब वहाँ जाएगें तब मेरे यहाँ एकदिन विश्राम करके

फिर कहीं जाइयेगा। मैं आपको टिकट दिलाकर गाड़ीपर चढ़ा दूंगा। बिना टिकट लिये जाने से अन्य रेल कर्मचारी लोग आपको कष्ट देंगे और दुर्वचन बोलेंगे।" मैं बोला—अच्छा ऐसा ही करूंगा। तब उनकी पत्नी और कन्या एक कटोरे में दूध, केला और बर्फी मुझे दे गये। करीब आधा सेर बर्फी थी जिसमें से थोड़ी सी खाकर शेष रहने दी। वे बचे हुये को उठाकर ले गये और खाकर बोले—"ब्राह्मण-साधु का जूठा बड़े भाग से मिलता है। यह सुनकर मुझे अपने प्रति ग्लानि आयी। कारण मैं कभी किसी का जूठा नहीं खाता था। मैं ब्राह्मण हूँ इसका तीव्र अभिमान मेरे हृदय में था। मन ही मन सोचा अब से अपने ब्राह्मणत्व का परिचय न देना ही अच्छा है। यह बात मन में आई और उसी समय विलुप्त हो गई। थोड़ी देर के बाद मैं कम्बल पर लेट गया और शीघ्र ही गंभीर निद्रा से अभिभूत हो गया। प्रातः काल होते ही जग गया। शौच आदि से निवृत होकर जय जगद्बन्धु, हरि बोल, हरि बोल नाम रटने लगा। मास्टर बाबू कुछ देर के बाद आ मिले। उनकी पत्नी बोली—"आप अन्न प्रसाद पाकर संध्या को जाना।" मैं उनका अनुरोध टाल नहीं सका, इस कारण वहीं रह गया।

माँ ने आकर चूल्हा जला दिया और बहुत अनुरोध करने लगी भोजन तैयार करने के लिये। मैं बोला "मैं केवल उबला हुआ चावल भोजन करता हूँ।" माँ बोली—"नहीं ऐसा नहीं होगा, हम लोग कितना कुछ बनाकर खाँएगें और आप केवल उबाले हुये चावल खायेंगे, ऐसा नहीं होगा।" अन्त में उनका कहना मानना पड़ा। दाल के साथ आलू व बैंगन पका

लिया। माँ मुझे भोजन तैयार करने का कौशल बताने लगीं—किस प्रकार से सम्बरा देते हैं, तेल देते हैं इत्यादि। इसके पश्चात् अन्न प्रसाद तैयार किया। उसके भीतर से आलू बैंगन निकाल लिया और नमक दे दिया। तुलसी देकर प्रसाद पाने लगा। मुझे भोजन करते हुये देखकर वे तृप्त हो गये।

उनका आनन्द देखकर मैं सोचने लगा—निर्मल प्रेम से युक्त कितना सुन्दर है इन लोगों का हृदय। मेरा हृदय तो ऐसा नहीं है। मुझे माँ का चेहरा स्मरण हुआ। नानी जी का स्नेह याद हो आया, आंखों में आँसू आ गये, दो एक अश्रु टपके भी, मैं सम्भलने लगा। कहीं वे देख न लें। पर उन्होंने देख ही लिया। वे बोले—"साधुजी रोते क्यों हो?" मैं बोला आपको देखकर मुझे अपनी माँ की याद आ रही है।" "ओ हो! आपकी माँ हैं? कितने दिन हुये आप उनके पास नहीं गये?" "प्राय: एक साल हो गया। "नहीं बेटा ऐसा न करना, माँ से निश्चय ही मिलना।" मैं बोला "नवद्वीप धाम देखकर तब उनके पास जाऊंगा।" "ओ हो! आप जैसा बेटा जिनका है, वह माँ न जाने किस प्रकार रह रहीं हैं! बेटा आपको देखकर मुझे ही ममता हो रही है।" माँ पास बैठी पूछने लगीं—"तुम कितने भाई बहन हो? और कौन-कौन है?" मैं सब कुछ बताने लगा। पर घर कहाँ है यह नहीं बताया जिससे पुनः वही घटना न घट जाए। कारण फरीदपुर में मेरे स्वजन रहते थे—पता चलने से मुझे पकड़कर ले जायेंगे, यह डर लगा रहता था।

प्रसाद पाकर बैठे,बातें करते-करते ४ बज गये। मास्टर जी ने एक घोड़ागाड़ी लाकर उसे भाड़ा दिया और कह दिया आंगिना पहुँचाने को। मुझसे बार-बार अनुरोध करने लगे—"लौटने के समय यहां आने को भूल न जायें। मैं बोला—"अच्छा ऐसा ही होगा।' रास्ता बहुत ऊँचा था गाड़ी तेज चलने लगी। थोड़े समय में ही श्री बन्धु सुन्दर के आंगिना में जा पहुँची। गाड़ी से उतर कर बन्धु सुन्दर को स्मरण करके साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। दण्डवत् करने के पश्चात् आश्रमवासी सब मेरे निकट पहुँचे। यथायोग्य सबको प्रणाम किया। मतिच्छन्न, महेन्द्र दा, बादल विश्वास, कृष्णदास, उद्धारण दास, निकुंज दा, प्रेमदास सभी के साथ मिला। बहुत दिनों की बात है, सबका नाम याद नहीं है। प्रभु के वे भक्त वृन्द अब नहीं हैं। उनमें से एक भक्त सुन्दर कीर्तन करते थे। ये वहाँ के महान्त के नाम से परिचित हैं। वे भी आये। इन सब भक्तोंके सङ्ग कुछ दिन बिताए। वहाँ खूब कीर्तन होता था इस नाम का—"हरि पुरुष जगद बन्धु महा उद्धारण चारि हस्त चन्द्र पुत्र हा कोट पतन।" सब कीर्तन करते थे मैं भी करता था। इसी प्रकार दिन बीतते रहे।

बन्धु सुन्दर को कभी नहीं देखा था, इसी कारण देखने की इच्छा हुई! वे कमरे के अन्दर रहते थे। चारों ओर बाड़ा और खुंटि लगी हुई थी। केवल बादल विश्वास महाशय को छोड़कर और कोई उस कमरे में जा नहीं सकता था। वे उनकी सेवा करते थे। भक्तवृन्द आते दर्शन के लिये पर दर्शन नहीं मिलता। बादल विश्वास महाशय किसी को भी कमरे में जाने नहीं देते थे। ढाका से कालेज के आठ-दस जवान लड़के आये

थे। उनके साथ मेरी खूब मित्रता हो गई। वे भी प्रभु को देखने के लिये आये थे—पर किसी को दर्शन नहीं मिला न तो कमरे के अन्दर उन्हें जाने दिया। सबने मिलकर निश्चय किया—संध्या के पश्चात् कमरे के दरवाजे पे पीठ लगाकर दरवाजा तोड़कर अन्दर जाकर प्रभु का दर्शन करेंगे। वे सब खूब बलवान थे। मैंने भी उनका साथ दिया। विश्वास महाशय, प्रेमदा आदि निषेध करने लगे, पर कौन किस की सुने ?

प्रभु को देखने की भीषण इच्छा थी। प्राय: बारह वर्ष से प्रभु इसी कमरे में थे। संध्या हो गई, अन्धेरा छा गया। प्राय: आठ नौ बज गये। आश्रम प्राय: जनशून्य होने लगा। आश्रम में बहुत कम लोग रह गए। इसी समय उन्होंने दरवाजा तोड़कर कमरे में प्रवेश किया। मैं ने भी उनके साथ प्रवेश किया। बादल विश्वास चीत्कार करने लगे, पर कौन सुने ?

देखा प्रभु पलंग पर लेटे हुये हैं। सारा बदन चादर से ढका हुआ था। मस्तक के निकट दीपक जल रहा था। वे हम लोगों की तरफ देखकर थोड़ा हँसे, और दूसरे क्षण ही मस्तक पर्यन्त चादर ओढ़ ली। हम लोग कमरे से निकल आए। ढाका के भक्त लोग खूब बलवान होते हैं, इस कारण किसी ने उनसे ज्यादा कहने का साहस नहीं किया। इस प्रकार दो तीन दिन बीत गए। एकदिन सुबह हठात् बादल विश्वास महाशय द्रुतगति से कमरे से निकल कर शीघ्र ही सीढ़ियों से उतरने लगे। हम कुछ लोग दौड़कर सीढ़ियों के निकट गये। श्री बन्धुसुन्दर बालक भाव में हाथ में हुड़कों (दरवाजा बन्द करने के लिये लकड़ी का टुकड़ा) लिये बाहर सीढ़ियों पर आकर खड़े हो

गये। पैर में रबड़ के जूते थे। हम सबने उनका आपादमस्तक दर्शन किया।

हठात् एक भक्त ने प्रभु-प्रभु बोलकर दण्डवत् किया और प्रभु उसके पीठ पर उसी हुड़कों से आघात् करके कमरे में चले गये और दरवाजा बन्द कर लिया। उस भक्त की पीठ पर एक फोड़ा हुआ था। आघात के कारण फोड़ा फटकर रक्त और पस निकल गया। वह कृतार्थ हो गया। कुछ दिनों के बाद उसका फोड़ा ठीक हो गया। मेरी बहुत दिनों की आकांक्षा थी श्रीबन्धु सुन्दर का दर्शन लाभ करने की वह पूर्ण हो गई, मैं निश्चिन्त हो गया। घर छोड़कर जब मैं पहले बन्धुसुन्दर के आंगिना में आया था तब उन्हीं के उपदेश आदि का पालन करने की चेष्टा की थी। उनकी कृपा ही मेरे जीवन के लिये बहुत महत्वपूर्ण थी। उनका दर्शन पाकर मन शान्त हो गया। सोचा यहाँ और नहीं रहूँगा। यहाँ से नवद्वीपधाम चला जाऊंगा। यह निश्चय करके श्री सुधन्य मित्र महाशय की दुकान पर जा पहुंचा। उन्होंने मुझे प्रीति पूर्वक गले से लगा लिया। बोले—"कहाँ जाओगे ?" मैं बोला "श्री नवद्वीप धाम जाऊंगा, श्रील बाबाजी महाशय से मिलूंगा। वे कहां रहते हैं, मुझे बता दीजिये।"यह कहते हुये मैं रो पड़ा। वे मुझे सान्त्वना देते हुये बोले "ठीक है उनके पास जाना, परन्तु कुछ दिन यहाँ रहो, फिर जाना। मैं उनकी बातों से आश्वस्त हुआ।

दो दिन रहा, उन्होंने नवद्वीप धाम में श्रील बाबाजी महाशय जहाँ पर रहते थे उस आश्रम का नाम बता दिया—आश्रम का नाम समाज-बाड़ी था। श्री वास आङ्गन घाट पर

आश्रम था। मैं सारी जानकारी करके स्टेशन जाने को तैयार होने लगा। पास ही घोड़ा गाड़ी वाले आवाज लगा रहे थे— "दो आना सवारी स्टेशन तक,स्टेशन पर पहुँचा। टिकट मास्टर बाबू गाड़ी का किराया देकर मुझे अपने क्वाटर पर ले गये। उस रात उनके पास ठहरा। मैंने उनसे कहा कि "मैं एकदिन राजबाड़ी में श्री योगेन कविराज महाशय के घर जाऊंगा। उनसे मिलकर फिर नवद्वीप जाऊंगा। वे मुझे बहुत स्नेह करते हैं। मैं एकबार उनके घर ४।५ दिन ठहरा था। उन्होंने कहा था "इधर कभी आना हो तो मेरे पास एकबार आना। मैंने तब उनको वचन दिया था। इस कारण मैं वहाँ अवश्य जाऊंगा।" दूसरे दिन मास्टर बाबू ने राजबाड़ी का एक टिकट मुझे ला दिया और श्री नवद्वीप धाम तक का किराया भी दे दिया। मैंने किराया रख लिया और टिकट लेकर गाड़ी पर चढ़ा। ३/४ स्टेशन के बाद ही राजबाड़ी पहुँच गया।

रेल लाइन के पास ही उनका घर था। थोड़ी दूर चलकर उनके घर पहुँचा। योगेन कविराज महाशय ने मुझे आलिंगन किया। मैंने उनको दण्डवत् प्रणाम किया तो उन्होंने भी मुझे दण्डवत् किया। दो तीन दिन उनके पास श्री बन्धु सुन्दर जी के बारे में सुनता रहा। वे श्री बन्धु सुन्दर के एकान्त भक्त थे। बन्धु को छोड़कर और कुछ नहीं जानते थे। उनकी निष्ठा देखकर खूब आनन्द आया। यहाँ पर कुछ दिन रहकर नवद्वीप जाने के लिये स्टेशन पहुँचा और कृष्णनगर का एक टिकट ले लिया। कृष्णनगर से पैदल नवद्वीप जाऊंगा, यही निश्चय किया। संध्या के समय गाड़ी छूटी। दूसरे दिन छः बजे गाड़ी

कृष्ण नगर पहुँची। मैं गाड़ी से उतर कर स्वरूप गंज घाट के लिये रवाना हो गया।

कृष्णनगर से स्वरूप गंज मात्र ५ मील है। चारों ओर के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखते-देखते मैं आत्मविस्मृत हो गया। रास्ते में दोनों ओर सुन्दर वृक्षराजि और प्रशस्त मैदान थे। प्रात: के सात बजे थे। पक्षी कलरव कर रहे थे। दोयल, शालिक आदि पक्षियों की कूक और कोयल की कुहु-कुहु मेरे मन को विकल कर रही थी।

बहुत दिनों की संचित आकांक्षा थी—श्री गौरांग महाप्रभु का जन्म स्थान, उनकी विहार भूमि एवं माँ गंगा का दर्शन लाभ करने की। अहो ! अब सभी के दर्शन मिलेंगे। यह सोचते हुये मैं आनन्द में डगमग होकर खूब तेजी से चलने लगा, थोड़े समय में ही स्वरूप गंज घाट पर जा पहुंचा, देखा वहीं माँ सुरधुनी बह रही हैं। नदी की दूसरी ओर अपरूप श्री नवद्वीप धाम है ! मैं आनन्द से विह्वल हो गया। सुरधुनी के तट पर आकर मां गंगाजी और श्री नवद्वीप धाम के प्रति रज पर लुण्ठित होकर दण्डवत् प्रणाम किया। उठ कर बैठा—सोचने लगा—दूर—वह दूर दिखाई दे रहा है वही है चिर अनुपम मेरा कितने दिनों का आकांक्षित श्री नवद्वीप धाम।

दो बड़े-बड़े झाऊ वृक्ष भी देखे। मैं ने एक व्यक्ति से पूछा—"नवद्वीप धाम कितनी दूर है ?" वे बोले, वह दिखाई दे रहा है श्रीवास अङ्गन घाट। वह देखो कितने ठाकुर, विग्रह, मन्दिर, महाप्रभु जी का मन्दिर, जगाइ-माधाइ घाट, निदया घाट" मैंने पूछा "निदया (निष्ठुर) घाट क्यों ?" वे

बोले,—"उस घाट पर महाप्रभु जी काटोआ में सन्यास लेने के लिये शची माँ और विष्णुप्रिया देवी को रुलाकर पार हो गये थे। इसी कारण वह 'निदया घाट' के नाम से प्रसिद्ध है।" यह कहकर वे चले गये। मैं वहाँ माँ गंगा जी के तट पर चुपचाप दो घण्टे तक बैठा रहा। श्री गौरांग, श्री नित्यानन्द जी की लीला मन में जग रही थी और उसके सङ्ग श्रील बाबाजी महाशय की स्मृति जिनको मैंने १३ वर्ष की आयु में देखा था—स्कूल में पढ़ते समय उनका वही मधुर मृदुमन्द हास्ययुक्त मुखमण्डल और कीर्तन में अश्रुप्लावित बदन मन में जाग उठा। सोचा—क्या यहाँ पर मुझे उनका दर्शन मिलेगा? क्या मेरे सौभाग्य से ऐसे शुभदिन आयेंगे! क्या मुझे वे फिर मयना कहकर पुकारेंगे? मेरे सङ्ग क्या वे हास-परिहास करगे? जब मैं १३ वर्ष का था उन दिनों की बात है; आज मैं सतरह वर्ष का हो गया हूँ। चार वर्ष बीत गये हैं। तीन साल पहले, मात्र एक दिन सिंथि में दर्शन मिला था। इतने दिनों के बाद क्या उन्हें मेरी याद होगी? उनके अगणित भक्त हैं, वे निश्चय ही मुझे भूल गये होंगे। इस प्रकार न जाने कितनी बातें मेरे मन में जग रही थीं।

उसी समय माझी पुकारने लगा "आओ किसे नदी पार होना है? मैं यह सुनकर नौका पर जा बैठा। गंगा जी के बीच से नौका धीरे-धीरे श्रीवास आङ्गन घाट की ओर बढ़ने लगी। नौका पर बैठे-बैठे गंगा जी का स्वच्छ जल पान करने लगा। भूख लगी थी। रात से खाने को कुछ नहीं मिला था। अब ग्यारह बज गये थे। जल पान करने पर भूख कुछ निवृत्त हो गई। किन्तु हृदय में केवल यही जग रहा था—क्या

उनका दर्शन मुझे मिलेगा। क्या वे मेरे साथ हँसकर बोलेंगे ! सोचते-सोचते नौका तट पर पहुँच गई। माझी को पार होने का पैसा दिया, उसने मुझे श्रीवास अङ्गन के घाट पर उतार दिया। देखा कितने नर-नारी गंगा जी में स्नान कर रहे हैं। "हा गौरांग" "गंगा माँ" बोलकर जल में छलांग लगा रहे हैं। इसी सुरधुनी के तट पर महाप्रभुजी की लीला मन में जाग रही थी। मन विकल हो रहा था किन्तु सोच रहा था— कहाँ हैं गौर सुन्दर। मैं आहिस्ता-आहिस्ता गुनगुनाने लगा—

"एइ सेइ नवद्वीप, सेइ सुरधुनी, सेइ से गंगा घाट।
केबल देखिना सुन्दर गोरा नाइ से प्रेमेर हाट॥
आर तो सुनिते पाइ ना कभु हरि, हरि बोल
नदीयार सेइ, प्रेमेर ठाकुर, पातिया धरेना कोल॥

नदीयार इ पथे पथे, चाँचर चूलेर दोल।
पाइना देखिते, से चाँद बयान पतिते धोरल कोल॥
नदीयार पथे कीर्तन रोल, सुनिते पाइना आर।
देखिते पाइना से गौर, निताइ संगे तार॥

श्रीवास अङ्गन मुखरित सदा, नाम ध्वनि कलरोल।
सुनिते पाइ ना से प्रेम नाद—गोपी-गोपी-गोपी बोल॥
आर तो पाइना देखिते सेइ जगा माधा पथे।
पलके मारिलो कलसीर काना, झलके रक्त माथे॥

श्री गौरांग अभिन्न निताइ, करुणाय गैल भासि।
मुछालो तादेर कालिमा दिल प्रेम पीयूष राशि॥
अंकित सेइ प्रेम माधुरी, निताइ गौर साथे।
पाइना देखिते से चाँद बयान नदीयार पथे पथे॥

सेइ नदीया, सेइ भागीरथी, पूरबेर मत भासे।
केबल देखिना नदेर निमाइ, निताइ देखिना पासे॥
नटन लीला देखिना आर, मधुर मधुर हासि।
कमल नयन, फोटे ना आर, प्रेम सायरे आसि॥

प्रेम सायरे आर तो देखिना स्वर्ण कमल हेला।
नदीया बधूर प्राण आन-चान, देखिते पाइना दोला॥
बिम्ब अधरे हासिटि मधुर, अमिया झरिछे खसि।
मालती फूलेर गाँथा माला हृदयोपरि भासि॥

मकर - कुण्डल हेलन - दोलन, पीन्धन पीत बास।
कोंचार बलनि दोलनि देखि लागिल प्रेमेर फाँस॥
के आनिल एइ धरनी माझे, मधुर हरिबोल।
नाम कीर्तने मातालो पराण, पतिते दिल से कोल॥

पतित अधमे के भरसा दिल, तुमि ना प्रेमेर हरि।
सेइ हरि, तुमि पतितोद्धारी, रसमय वंशीधारी॥
प्रेम पियासा मेटे ना देखि, राधा भावे हरि।
(राधा) कान्ति धरिल वंशीधारी नवद्वीपे अवतारी॥

अर्थ—यह वही नवद्वीप है, वही सुरधुनी है, और वही गंगा तट है, केवल गौर सुन्दर नहीं दीखते और न ही वह प्रेम की हाट (बाजार) दीखती है। न ही वह हरि हरि हरि बोल कभी सुनाई पड़ता है, नदिया के वे प्रेम देवता (प्यारे गौरहरि) दीन हीन जनों को हृदय से लगाते हुए नहीं दीखते। इसी नदिया की गली २ में वे घुँघराले केश लहराया करते थे, परन्तु उनका वह मुख चाँद दिखाई नहीं देता। वे पतितों को गले लगाया करते थे। नदिया के पथ पर कीर्तन ध्वनि सुनाई

नहीं पड़ती, उन गौरचन्द्र को निताइ चाँद के साथ देख नहीं पा रहे। श्रीवास अङ्गन जो की मधुर नाम ध्वनि द्वारा सदा गूँजता रहता था, अब वह प्रेम भरी ध्वनि एवं गोपी गोपी गोपी बोल सुनाई नहीं देते। पथ में (निताइ दयाल के माथे में) कलसी का टुकड़ा मारते एवम् रक्त बहाते हुए जगाइ माधाई भी दिखाई नहीं देते। अभिन्न गौरांग तनु निताइ चाँद ने करुणा की बाढ़ में उन्हें सराबोर करके इसी नदिया में उनकी कालिमा दूर कर दी थी एवम् उन्हें प्रेम अमृत का पान कराया था। वह प्रेम माधुरी निताइ गौर सहित यहाँ अंकत है, परन्तु वह चाँद वदन नदिया के पथ में दीख नही पा रहे। यह वही नदीया है वही भागीरथी पहले की तरह बह रही है केवल नदिया के निमाई, निताई के सहित दिखाई नहीं दे रहे हैं। वह नटन लीला, वह प्रेममयी हँसी, वह कमल नेत्रों से प्रेम की वर्षा, कुछ भी तो नहीं दीख रहा है। प्रेम सरोवर में खिला हुआ वह स्वर्ण कमल जो कि नदिया नागरी गण के प्राणों को उद्वेलित करता रहता है, दिखाई नहीं पड़ रहा है। उन विम्ब फल सदृश लाल २ होठों पर मधुर हँसी, जिनसे अमृत झर रहा है मालती के फूलों से गुँथी हुई माला हृदय पर दोलायमान हो रही है, कानों में मकराकृति कुण्डल सुशोभित हैं, श्री अङ्ग में पीला वस्त्र पहने हुए हैं।

उस पीताम्बर का दोलन देखकर प्रेम पाश में सब आबद्ध हो रहे हैं। इस पृथ्वी पर मधुर हरि ध्वनि को कौन लाया है नाम कीर्तन से प्राण मत्त हो गए हैं, पतितों को गले लगा रहे हैं। पतित अधमों को 'हे प्रेममय' 'हरि तुम्हीं ने तो भरोसा दिया है, तुम्हीं तो हो पतितों का उद्धार करने वाले वंशीधारी

हरि। प्रेम की प्यास मिटाने के लिये हे श्यामसुन्दर आप ही तो राधा रानी का भाव व अङ्ग कान्ति धारण करके नवद्वीप में अवतीर्ण हुए हो।

इस प्रकार महाप्रभुजी की कितनी बातें हृदय में जगने लगीं। सोच रहा था श्रीमन्महाप्रभु की लीला तो नित्य है किन्तु मुझे दिखाई नहीं दे रही— इसी भावना से मैं हताश हो गया।

स्नान करके गंगा तटके बालू के ऊपर बैठकर गायत्री जाप करने लगा। डेढ़ बज गये। उठ खड़ा हुआ। धीरे-धीरे श्रीवास आँगन के घाट पर पहुँचा वहाँ एक सज्जन से मैंने पूछा— "क्या यहाँ किसी मठ में रहने व प्रसाद की व्यवस्था हो सकती है ? मैं यहाँ नया आया हूँ, यहाँ के बारे में मैं कुछ भी नहीं जानता।"

श्रीमद् बाबाजो महाशय की बात मैंने किसी को नहीं बताई पर मन ही मन उनको स्मरण करता रहा। उनसे फिर पूछा 'क्यासाधु लोगोंके लिये यहाँ कोई आश्रम है ?' उसने उत्तर दिया "हाँ, हाँ, वह देखो समाज बाड़ी आश्रम। श्री राधारमण चरण दास बाबाजी महाशय का समाधि-स्थान। वहाँ कल से नव-रात्रि का कीर्तन-उत्सव आरम्भ होगा। एक महापुरुष और उनकी दीदी ललिता सखी उत्सव—का आयोजन करेंगे। अनेक भक्त लोग आयेंगे।" मैंने पूछा— "उनका नाम क्या है ?" वे हँस कर बोले—"क्या तुम नहीं जानते ? भारत के सभी लोग उनको जानते हैं। उनका नाम श्री रामदास बाबाजी महाशय है। उनके आश्रम में जाओगे तो वे रहने को जगह और प्रसाद भी देंगे। वे शैव, शाक्त प्रभृति जितने भी साधु वैष्णव हैं सभी

से स्नेह करते हैं। उनका कीर्तन सुनकर पाषाण हृदय भी द्रवीभूत हो जाता है। यद्यपि मैं उनका शिष्य नहीं हूँ, तथापि उनके प्रति श्रद्धा रखता हूँ। आप उनके पास जाइये।"

श्री बाबाजी महाशय का नाम सुनकर मैं चमत्कृत हो गया, हृदय काँपने लगा। उन्हीं के दर्शन की आशा लेकर आया था और सर्वप्रथम उन्हीं का सन्देश मिला। अतिशय आनन्द से मेरा शरीर कांपने लगा। मैं आनन्द-विभोर हो गया।

श्रीवास-आंगन घाट को पीछे छोड़कर मैं धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। प्रायः दो बजे थे। समाज बाड़ी के गेट पर पहुँच कर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर धीरे-धीरे एक दो सीढ़ियाँ चढ़ने लगा, उसी समय कुछ दूरी पर एक नीमका पेड़ दिखाई दिया जिसके सामने वाले कमरे के बराम्दे में श्रील बाबाजी महाशय भजन से निवृत्त होकर खड़े हुये थे। वे मात्र एक बहिर्वास पहने हुये थे। मस्तक और भुजाओं पर तिलक चमक रहा था। उन्होंने मुझे हाथ के इशारे से बुलाया। मैं इस प्रकार उनके अप्रत्याशित दर्शन पाकर कृत-कृत्य हो गया। आनन्द विभोर हो उठा। उनके अप्रत्याशित दर्शन से विस्मयाविष्ट होकर, और बिना किसी ओर देखे सीधे उनके अरुण चरणों में जाकर मैंने दण्डवत प्रणाम किया।

वे मुझे हाथों से उठाकर बोले—"कहो ब्रह्मचारी कहाँ से आ रहे हो—दो बज रहे हैं। भोजन इत्यादि नहीं हुआ? मठ में सभी ने प्रसाद पा लिया है, मैं ही केवल बाकी हूँ। भजन समाप्त कर बराम्दे में आकर खड़े होते ही तुम्हें देखा। मेरे

लिये प्रसाद ढक कर रखा है। आओ, दोनों मिलकर पायें। स्नान किया है?" मैंने कहा आते समय गंगा जी में स्नान करके आपको ढूंढते हुए आप के पास पहुँचा हूँ।" "यह सब बाद में सुनूंगा, आओ, बैठो मेरे पास। दोनों मिलकर प्रसाद पायें।" श्री नन्द काका और मेघलाल दादा को वहाँ देखा। श्रील बाबाजी महाशय के पारश से (प्रसाद) मेघलाल दादा ने एक दूसरे पत्ते में प्रसाद डालकर मुझे दिया। दो आसन बिछाये गये। एक पर श्रील बाबाजी महाशय बैठे, साथ का आसन हटाकर मैं बैठा। श्रील बाबाजी महाशय बोले— "ब्राह्मण हो। आसन क्यों हटाया?" मैं बोला "मेरे लिये यही ठीक है।" उन्होंने पहले स्वयं ही थोड़ा सुक्तो मेरे पत्ते पर डाला और बोले—"लो प्रसाद पाओ।" परमानन्द पूर्वक मैंने प्रसाद पाना आरम्भ किया। वे भी प्रसाद पाने लगे। मेघलाल दादा से बोले—"दाल दो" उन्होंने दाल दी।

'कुमड़ो-डांटा-चच्चरी' उनके पत्ते पर ही था। उस पर दृष्टि पड़ी। वे आधा उठाकर मेरे पत्ते पर देकर हँसते-हँसते बोले—"क्या किया, तुम्हारी जाति नष्ट कर दी।" मैं हँस पड़ा। बोला—"स्कूल में पढ़ते समय (प्रथम मिलन काल में) ही तो आपने मेरी जाति नष्ट कर दी थी।" इस प्रकार कितने हास परिहास करने लगे। मैं भी कर रहा था। उनका यह सहज सरल गाम्भीर्य हीन एवं प्रीति पूर्ण भाव देखकर मैं अपने को उनका निज-जन समझने लगा। वे मुझे कितने ही फल व मिठाई का प्रसाद देने लगे। एक 'राजभोग' था। आपने थोड़ा सा खाकर मेरे हाथ पर दे दिया। मैंने बिना दुविधा के किये झूठे हाथों से ले लिया तभी हंस कर बोले—"झूठे हाथ से ले

लिया—मेरी जाति को भी नष्ट कर दिया।" इस प्रकार खूब आनन्दमय हास परिहास होने लगा।

ऐसे हास-परिहास से वे प्रसाद पाकर एक कुर्सी पर बैठे; मैं साथ ही एक स्टूल पर बैठ गया श्रील बाबाजी महाशय पान-प्रसाद पाने लगे। मुझसे बोले—"कल सारी रात जाग कर ट्रेन पर आए हो, सोये नहीं ?" मैं बोला, "नहीं, बैठे-बैठे आया हूँ !" "तब जाओ, मेरे पलंग पर सो जाओ।" मैं बिना किसी हिचक के उनके पलंग पर सो गया।

चार बजे नींद खुल गई। मैं उठा तभी श्रील बाबाजी महाशय भी जाग गये। मैं पलंग पर बैठा रहा, नींद पूरी नहीं खुली थी। श्रील बाबाजी महाशय लोम वस्त्र (ऊनी वस्त्र) लेकर शौच को चले गये। तभी दो चार साधु जन मेरे प्रति नाराज होकर बोलने लगे। "इस लड़के की स्पर्धा तो देखो ! श्रील बाबाजी महाशय के पलंग पर सो रहा है, तनिक लज्जा भी नहीं है। बड़ा आया ब्राह्मण ब्रह्मचारी, कितने ब्राह्मण उनके चरणों में लोटपोट होते हैं। तुम कैसे लड़के हो, कैसे ब्रह्मचारी हो जो तुम उनके सङ्ग सो रहे हो, तुम्हें लज्जा भी नहीं आयी ?" वे सब मुझे इस प्रकार धमका रहे थे कि बाबाजी महाशय शौच समापन करके लौट आये। उन लोगों के प्रति देखकर बोले—"तुम लोगों को किस बात पर इतनी गरमाई आ रही है ?

वे सब बोले—"देखिये तो इस लड़के की स्पर्धा, आपके पलंग पर आपके साथ ही सोया। इतना डाँट रहे हैं, तब भी पलंग पर बैठा हुआ है। आप आये तो उठकर खड़ा तक नहीं

हुआ।" उन सबकी बातें सुनकर मेरी आखों में अश्रु आ गये। मैं अपनी इच्छा से तो पलंग पर नहीं सोया था। उनके कहने पर ही तो सोया था—यह सब सोच रहा था तभी श्रील बाबाजी महाशय की दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी।

कितने स्नेह और करुणा से भरी हुई अभिराम दृष्टि थी। उनकी! उसे देखकर मैं अपने आप को सम्भाल न सका—आखों से आंसू बहने लगे। श्रील बाबाजी महाशय किंचित रुष्ट स्वर से बोले—"अगर यह, मेरे पलंग पर सो भी गया है तो तुम लोगों को क्या, तुम्हारा कोई नुकसान तो नहीं किया। मेरे कहने पर ही सोया था। उसके पास आसन, कम्बल, लोटा, गमछा कुछ नहीं है, तभी तो मैंने उसे अपने पलंग पर सोने के लिये कहा था।" चुप हो गये सब यह सुनकर, जैसे सपेरा हाथ पर औषधि लेकर सांप के आगे हाथ फेरे तो साँप बिलकुल सर नीचे कर ले। कुछ न कर सके। वे सब भी इसी प्रकार मूक हो गये। मैं जीत गया, यह सोचकर आंसू पौंछ लिए। थोड़ी सी हँसी भी आई। चलो मुझे अब और कोई कुछ नहीं कहेगा। मैं पलंग से उतर कर नीचे आ बैठा।

श्रील बाबाजी महाशय माला जपने लगे—और कभी-कभी मेरे साथ बातें करने लगे। अब अनगिनत भक्त आकर उनको दण्डवत् कर रहे थे। इसलिये कमरे से निकल कर बाहर कुर्सी पर बैठ गये। मैं वहीं स्टूल पर उनके पास बैठ गया। न जाने कितने भक्त आ रहे थे। श्रील बाबाजी महाशय बीच-बीच में। उनके प्रति दृष्टि घुमाते हुये मेरे साथ बातें करते रहे। पूछा 'कहां से आये हो?' मैं बोला "प्रभु जगद्बन्धु सुन्दर के

आंगिना में बहुत दिन से था। वहाँ मन नहीं लगा, इसलिये सुधन्य मित्र महाशय के पास कुछ दिन रहा। उन्हीं से आपका पता मिला। तीन साल से घूम रहा हूँ। सिंथि में दर्शन हुए थे वहाँ से भैया पकड़ कर ले गये थे। कुछ दिन बाद मैं फिर निकल पड़ा ? प्रभु के आंगिना, गोआल-चामट, राजबाड़ी, कुष्ठिया आदि स्थानों में घूमता रहा, पर आपको नहीं भूल सका।" इसी समय कोई-साड़ी पहने हुये, आयीं जिनके हाथों में तुलसी-माला की चूड़ियाँ और मस्तक पर थोड़ा घूँघट सा था। अति सुन्दर नूपुर-रंजित चरण थे। लाल गुलाब के फूल जैसा, मुख मण्डल। नाक में अति सुन्दर नथ और बेसर लटक रही थी। मैंने उन्हें देखकर सोचा यह कौन है ? ज्यों ही वे श्रील बाबाजी महाशय के निकट आईं। श्रील बाबाजी महाशय ने उठकर उन्हें दण्डवत् किया।

इस कारण मैं भी उन्हें दण्डवत् करने लगा, तो उन्होंने मुझे अपनी गोद में ले लिया। बोलीं—"ब्राह्मण हो।" उन्होंने श्रील बाबाजी महाशय से पूछा "यह कौन है ?" वे बोले "ब्रह्मचारी लड़का है। 'जगद्बन्धु की आंगिना' से आया है, सुधन्य दादा ने पता दिया था। अनेक दिनों से मुझे ढूँढ रहा था। नाम मयना है। तीन वर्ष पहले उसके गांव में गया था।" वे प्रीति पूर्वक मेरे मस्तक पर हाथ फेरते हुये बोलीं "तुम्हारे तो बहुत अच्छे बाल हैं। तेल नहीं लगाते ?" मैं बोला 'नहीं।' बाद में पता लगा कि यह श्रीपाद बाबाजी महाशय के गुरु भ्राता हैं, एवम् सखी वेश में रहते हैं।

सखी माँ ठाकुर जी की सेवा के लिये चली गईं, श्रील

बाबाजी महाशय फिर कुर्सी पर बैठ गये। मैं भी पास बैठ गया। अनेकों भक्त कलकत्ते से आ रहे थे। मैंने पूछा "इतने लोग क्यों आ रहे हैं ?" बोले "नहीं जानते, श्री बड़े बाबाजी महाशय का तिरोभाव उत्सव होगा, कल अधिवास है।

मैं बोला "कहाँ हैं श्री बड़े बाबाजी-महाशय ? वे बोले— "देखोगे ? चलो मेरे संग। दे रे, मेरी चादर दे" एक भक्त ने चादर दी। बाबाजी महाशय ने चादर को पीठ की तरफ से गले के ऊपर सुन्दर तरीके से बाँध लिया।

वे बड़े ही सुन्दर दीखने लगे। वे सीढ़ियों से उतरे और बोले "चलो देखने चलें" वे श्री बड़े बाबाजी महाशय के मंदिर की सीढ़ियों पर चढ़ने लगे। मैं पीछे-पीछे था। श्री बड़ेबाबाजी महाशय की समाधि के ऊपर एक सुन्दर बड़े चित्रपट की सेवा हो रही थी। बोले—"वह है श्री बड़े बाबाजी महाशय की समाधि।" उन्होंने दण्डवत् किया। मैं ने भी किया। उसके बाद उन्होंने पीछे से आकर एक अन्य समाधि स्थान पर दण्ड-वत् किया; मैंने भी उनका अनुसरण किया। मैंने पूछा "यह किसकी समाधि है ?" बोले—श्री बड़े बाबाजी महाशय के श्रीगुरुदेव का समाधि स्थान है। दोनों की समाधि साथ-साथ है। एक दिन आगे-पीछे दोनों अन्तर्धान हुए थे। इन के बारे में सम्यक जानकारी के लिये मेरा कौतुहल जागृत हुआ। किन्तु उस समय जिज्ञासा प्रकट नहीं की। सोचा फिर किसी समय पूछूंगा परन्तु रह नहीं सका। श्रील बाबाजी महाशय बोले—"श्री बड़े बाबाजी महाशय ने गंगा जी में खड़े होकर किसी की व्याधि (रोग) अपने शरीर पर ले ली थी

दो-चार-दिन के बाद उसी व्याधि में बैठे-बैठे वे अन्तर्धान हो गये। उनके श्री गुरुदेव बोले—"चरण चला गया, मैं भी नहीं रहूँगा।" तभी वे भी समाधिस्थ हो गये और दूसरे दिन ही शरीर छोड़ दिया। इस कारण दोनों की समाधि साथ-साथ है।

इसके पश्चात् श्रील बाबाजी महाशय सखी माँ के बराम्दे में गये। बैठक में जाकर उन्होंने दण्डवत् प्रणाम किया। उन्हें देखकर मैं ने भी दण्डवत् किया। वे बोले "यह कमरा आश्रम का आदि-कमरा है। बाद में सब कुछ बताऊंगा।" उसके बाद युगलकिशोर का दर्शन करके बोले,–"चलो महाप्रभु–'हरि-सभा के गौर—का दर्शन कर आयें।" उस समय उनके साथ आठ दस भक्त पीछे-पीछे आ रहे थे। मैं श्रील बाबाजी महाशय के साथ-साथ हंसते, और बातें करते हुए जा रहा था और वह दोनों साधु सबसे पीछे विमर्षमनः आ रहे थे। मुझे बहुत मजा आ रहा था। मैंने एकबार श्रील बाबाजी महाशय के पीछे जाकर उन लोगों को अंगूठा दिखाया और बोला—"क्यों साधु जी कैसे हो?" यह कहकर श्रील बाबाजी महाशय के दाहिने तरफ आकर उन्हें देखते-देखते चलने लगा। श्रील बाबाजी महाशय ने मेरा पक्ष लेकर उन लोगों को डाँटा था—इस कारण मन में किंचित अहंकार भी था। इसी लिये उन्हें अंगूठा दिखा दिया। मेरी सतरह वर्ष की आयु थी, पर बचपने की कमी बिलकुल नहीं थी। उन दोनों ने गुस्से से लाल हुए नेत्र दिखाए पर कुछ नहीं बोले। कारण, श्रील बाबाजी महाशय ने मुझे अपने स्नेह से मानो आसमान पर चढ़ा दिया था। इसी कारण वे चुप रहे।

धीरे-धीरे हम लोग सर्व प्रथम 'श्री पोड़ा माँ तला' गये, माँ को दण्डवत् कर श्री हरि सभा के गौर देखने गये। बाबाजी महाशय ने भूमिष्ठ होकर दण्डवत् किया, मैंने भी दण्डवत् किया। उसके पश्चात् सात बार परिक्रमा की। हम लोग भी सब उनके सङ्ग वैसा ही करने लगे।

गौर सुन्दर के सेवक श्री स्मृति कण्ठ गोस्वामी जी थे। बाबाजी महाशय उनके चरणों में दण्डवत् कर श्री महाप्रभु जी का चरणामृत पाकर श्री विष्णुप्रिया देवी द्वारा स्थापित विग्रह—श्री गौरसुन्दर मन्दिर की ओर रवाना हुये। हम सब परम आनन्द से उनके साथ जा रहे थे।

उन्होंने आकर पहले मन्दिर के दरवाजे पर दण्डवत् किया—धीरे-धीरे आकर श्रीमन् महाप्रभु के सामने दण्डवत् किया। उनके नयन अश्रुओं से प्लावित हो गये और श्री अङ्ग थर-थर कम्पित होने लगा।

मैं साथ खड़े होकर उनके इन सात्विक भावों का दर्शन कर रहा था! और अपने को कृत-कृत्य मान रहा था। वे श्री महाप्रभु की परिक्रमा और साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर रज में लोट-पोट होने लगे। मैं उनकी यह अभिनव प्रणाम-प्रणाली देखकर मुग्ध हो गया। वे मेरे प्रति दृष्टि करके बोले—"दंडवत् करो।" मैंने उनके आदेश अनुसार उनके जैसे भूलुण्ठित होकर साष्टांग प्रणाम किया एव उनके अनुरूप लोटपोट हुआ। श्रील बाबाजी महाशय मुझे देखकर मृदु हँसी हँसने लगे और बोले—"क्या यह प्रथम दण्डवत् है? "पहिलहि राग" यह कहकर

मृदुमन्द हँसते-हँसते सिद्ध श्री चैतन्य दास बाबाजी महाशय के समाधि आश्रम पर पहुँचे।

श्री महाप्रभु जी के मन्दिर के निकट ही उनकी समाधि है। दर्शन मात्र से ही जड़ से कटे हुए वृक्ष के समान साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करने लगे। प्राय: ५ मिनट पर्यन्त पड़े रहने के बाद उठ खड़े हुये। आंखों से अविराम अश्रु धारा बह रही थी। 'गोरा-गोरा-गोरा' नाम का धीरे-धीरे उच्चारण कर रहे थे। और सर्व अङ्ग पुलकित और थर-थर कम्पित हो रहा था। ओष्ठाधर द्रुत कम्पित हो रहे थे। श्री अङ्ग ऐसे कम्पित हो रहे थे मानो अभी गिर जायेंगे।

श्री निताइ दास बाबाजी एवं श्री बसन्त दास बाबाजी महाशय उनके अति निकट आकर खड़े हो गये—गिर न जायें इसी डर से उन्हें सम्भालने लगे। वे बार-बार हुँकार कर रहे थे। और गोरा-गोरा बोलकर क्रन्दन कर रहे थे। मैं यह सब देखकर आश्चर्य-चकित हो गया। प्राय: बीस मिनट बीत गये, तब भाव सम्वरण किया। प्रकृतिस्थ होने पर उन्हें वहाँ के सेवक ने चरणामृत दिया। जिसका पान करके वे वहीं श्री सिद्ध चैतन्य दास बाबाजी महाशय के समाधि आश्रम के सामने एक कुटिया में आये। वहाँ एक अति वृद्ध बाबाजी महाशय थे। श्री बाबाजी महाशय उन्हें दण्डवत् करके उनके पास बैठ गये। वृद्ध बाबाजी महाशय उनसे बहुत स्नेह पूर्वक बातें करने लगे।

हम सब उन्हें ऐसा करते देखकर, उनके अनुरूप दण्डवत् प्रणाम करके पास बैठ गये। जब स्नेहाप्लुत नयनों से श्रील

बाबाजी महाशय ने मुझ पर दृष्टि डाली तो मैंने साहस पूर्वक जिज्ञासा की—"अभी जिस समाधि पर आपने दण्डवत् किया वह किसकी है ? क्या नाम है इनका ? वे मन्द २ मुसकराते हुए। कहने लगे,—"इनको इस नवद्वीप धाम में सब सिद्ध पुरुष कहते हैं। यह एक-निष्ठ श्री गौर भक्त थे। श्री गौरांग ही उनके जीवन में सर्वस्व थे। श्री गौरांग के नाम-रूप-गुण-लीला भजन को छोड़ कर इनके लिये और दूसरा कुछ भी काम नहीं था। इनके जैसा एकनिष्ठ और गौर-भक्त जगत् में दुर्लभ है। इनका नाम श्री सिद्ध चैतन्य दास था। इनके जैसे और एक जन को श्री वृन्दावन में देखा था जिनका नाम था—श्रीराम रि दास बाबाजी महाशय। सिद्ध चैतन्य दास बाबाजी महाशय एक खाते में रोज गोरा-गोरा नाम लिखते थे।

आज भी वह खाता बराह नगर पाठबाड़ी में है। उनके श्री अङ्ग पर गोरा-गोरा नाम सर्वदा लिखा रहता था। वे सर्वदा नदिया-नागरो के भाव में विभावित रहते थे। पुरुष अभिमान उनमें बिन्दु मात्र भी नहीं था। कभी-कभी साड़ी पहन कर घूंघट निकाले श्रीमन् महाप्रभुके वाम पार्श्व पर खड़े होकर उनके मुख पर दृष्टि डाले हुये न जाने कितनी प्रीतियुक्त बातें किया करते थे ! उनका चरित्र अतुलनीय था, दुर्ज्ञेय था। मैंने उनका दर्शन किया है। उनके जीवन की एक अपूर्व घटना तुम्हें बताता हूँ।"

"कितना उन्नत भाव था उनका किन्तु उस भाव को कुछ लोग ही समझते थे। इस भाव के लिये उनको मार भी खानी पड़ी। वे सदा महाप्रभु के ध्यान में निमग्न रहते थे। एक दिन

श्री महाप्रभु की चिन्ता करते-करते नदिया नागरी भाव में विभाबित हो गये। पुरुष अभिमान चला गया। स्वयं जैसे नदिया नागरी बन गये। गौर-दासी अभिमान में झूमते-झूमते जा रहे थे। वाम चरण आगे रखकर चल रहे थे। (वाम चरण आगे रखकर चलने का भाव यह है कि श्री किशोरी जी अथवा व्रज गोपीगण जब प्रियतम से मिलन हेतु अभिसार करती हैं, तब वे सर्व प्रथम बाँया चरण ही आगे बढ़ाती हैं जिसको वे शुभ गमन का लक्षण मानती हैं) थोड़ा सा घूंघट निकाल कर गंगा जी की ओर जा रहे थे। अकस्मात्, सामने एक बहू गंगा स्नान कर लौट रही थी, उसे सखी भाव में आलिंगन करके वे बोले—"तुम इतने आनन्द पूर्वक जा रही हो, क्या तुमने गंगा जी के किनारे गौर सुन्दर को देखा है?"

वह किसी संभ्रान्त घराने की बहू थी। वह बाबाजी के इस व्यवहार से आश्चर्य चकित एवं लज्जि त हो गई। साथ ही सब नदिया वासी पुरुष भी आ गये। उन्होंने बाबाजी के इस व्यवहार को देखकर उनको प ड़ लिया और उनपर प्रहार करने लगे। चाँटे, घूँसे सावन की तरह बरसने लगे।

उन लोगों के प्रहार से वे प्रकृतिस्थ हुये और अपने व्यवहार से लज्जित होकर धीरे-धीरे गंगा जी में स्नान करने चले गये। उस बहू ने अपने घर पर जाकर सारी बातें बताईं। उनके पिता यह सब सुनते ही गंगा जी के तट पर गये। और श्री चैतन्य दास बाबाजी महाशय के चरण पकड़ कर क्षमा भिक्षा करने लगे। वे बोले—"वह लड़की आपको नहीं पह-चानती थी; उन सब पाषण्डी लोगों ने आप के ऊपर प्रहार

किया है। यह सुनकर श्री चैतन्य दास बाबाजी महाशय ने निज भाव सम्बन्धी सारी बातें उनको बतायीं। नदिया वासियों को तब असल बात का पता चला।

हाय रे कलिकाल ! इतने बड़े एक महत् भाव का आदर किसी ने नहीं किया। इसके कारण उनको मार खानी पड़ी। ऐसी ही एक अन्य मधुर लीला श्री वृन्दावन में हुई थी—मुझे स्मरण हो रही है, सुनो।"

श्रील बाबाजी महाशय बोले—श्री वृन्दावन में एक बहुत निष्ठावान और प्रेमी वैष्णव थे। प्राय: उनपर श्री बलराम जी का आवेश हुआ करता था। वे श्री गोविन्द जी के मन्दिर में रोज आते थे। कभी-कभी दण्डवत् प्रणति किये बिना ही श्री गोविन्द जी के आगे अपलक दृष्टि से देखते रहते थे। एकदिन प्रात: वे श्री गोविन्द जी का दर्शन करने आये—खड़े, खड़े दर्शन कर रहे थे। तभी उनमें बलराम का आवेश आ गया। वे सोचने लगे मेरा छोटा भाई कृष्ण गोष्ठ को जायेगा। कंस कोई गुप्तचर उसे विपद या नुकसान न पहुंचाय, मैं बलराम—उसका बड़ा भाई—उसके मस्तक पर अपना पदरज लगा दूँ। यह आवेश उनके हृदय को विह्वल कर रहा था। वे और रह नहीं सके। भाग कर मन्दिर के भीतर प्रवेश करके एक चरण उठाकर बोले—"ले ले, कनइया, मेरा चरण रज ले ले।" पुजारी लोगों ने यह अभिनव घटना देखकर उनको पकड़ कर बाँध लिया और मन्दिर के आंगन में लाकर उन पर खूब प्रहार किया। बोले—स्पर्धा तो देखो। गोविन्द जी के आगे पैर उठाना ?

हम लोग इतने दिनों से सेवा कर रहे हैं, हमें यह भाव नहीं आया और इस वैरागी को भाव आ गया ! मार पड़ेगी तो कुछ दिन इसे याद रहेगा। यह कहकर सब हँसने लगे। बाद में जब बाबाजी का भावावेश शान्त हुआ वे—बिना किसी के कुछ कहे अपनी कुटिया पर चले गये। सर्व अङ्ग प्रहार के कारण व्यथित थे। दूसरे दिन मुझे देखकर सब बातें बताईं। मैं रो पड़ा। हाय, इतनी उन्नत अवस्था। उनके इतने बड़े भाव का आदर नहीं हुआ। श्रीमद् बाबाजी महाशय ने यह कहते हुये बातें समाप्त करके दण्डवत् प्रणाम किया और उठ कर बोले—चलो श्री निताइ बाड़ी। निताइ को जानते हो तुम ? पतित पावन निताइ—जो मार खाकर भी प्रेम देते हैं; चलो उनको देखने चलें।

मैं उनके साथ चला। निताइ चाँद को देखने की मेरे मन में भी तीव्र आकांक्षा जग रही थी। हम सब श्री बाबाजी महाशय के सङ्ग दर्शन करने को चले। वे अधिकतर मेरे सङ्ग ही बातें कर रहे थे, इस कारण मुझे बहुत आनन्द आ रहा था। इतने अल्प समय में श्रीमद् बाबाजी महाशय के संग हम लोग प्रायः ३०/४० जन हो गये। अनेक त्यागी वैष्णव भी आए थे। और गृही बाबू भक्त भी थे। हम सब श्री निताइ चाँद के दरवाजे पर पहुँचे। श्रील बाबाजी महाशय दरवाजे पर दंडवत करके धीरे-धीरे निताइ चाँद के दर्शन करने जा रहे थे। अभी दर्शन भी नहीं हुए थे कि उनका श्री अङ्ग थर-थर कम्पित होने लगा, जैसे अभी गिर जायेंगे। इसलिये श्री बसन्त दास बाबाजी एवं निताइ दास बाबाजी महाशय उनको सम्भाल कर अति सावधानी से ले जा रहे थे। जैसे ही निताइ चाँद का

दर्शन हुआ उन्होंने एक हुँकार दी, समस्त शरीर पुलकित हो गया। खड़े होकर हाथ जोड़ कर थर-थर काँपने लगे। निताइ चाँद का दर्शन करके इस बार बहुत ज्यादा विह्वल हो पड़े। इस प्रकार खड़े होकर अश्रु, कम्प पुलक से विभूषित हुये प्राय: आधा घण्टा बीत गया। उसके बाद स्थिर होकर दण्डवत् की। पुजारी ने चरणामृत दिया।

उनके साथ हम सबने भी चरणामृत पाया। प्रभु की सेवा के लिये पुजारी को एक रुपया देने के लिये पारिषद को आदेश किया। श्री बाबाजी महाशय जहाँ २ भी दर्शनों को गए। उन्होंने श्री महाप्रभु के मन्दिर में, हरि सभा के गौर और षौड़ामाँ के पास एक-एक रुपया प्रणामी देने के लिये कहा था। किसी ने भेंट नहीं मांगी परन्तु फिर भी उन्होंने दिया। खाली हाथ वे कभी श्री विग्रह दर्शन करने नहीं जाते थे। यह उनका स्वाभाविक नियम था। गृहस्थ-भक्त भेंट देकर दर्शन करने लगे। इस प्रकार दर्शन करते-करते हम लोग जब लौटे तब प्राय: सात आठ बजे थे।

आरती हो रही थी। ठाकुर की बैठक में आरती हुई, तत्-पश्चात् वे गौर हरिदास महन्त जी की समाधि स्थान पर आरती दर्शन करके नाम के साथ धीरे-धीरे आए। महन्त महाराज के आगे आरती एवं नाम प्राय: आधे घण्टे तक हुआ। उसके बाद श्री बड़े बाबाजी महाशय की आरती होने लगी। श्री बाबाजी महाशय उनके आगे आते ही बहुत विह्वल होने लगे। आरती देखते-देखते व्याकुल प्राणों से नाम शुरु किया—"भज निताइ गौर राधे श्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम। ऐसा मधुर तथा तेज पूर्ण कण्ठ, मानो गगन मण्डल फट जाने का

उपक्रम होने लगा। श्री बड़े बाबाजी महाशय बराम्दे में खड़े होकर नाम कर रहे हैं और चारों ओर से नाम की प्रतिध्वनि हो रही है। वे थर-थर कम्पित हो रहे हैं और व्याकुल हृदय से नाम कर रहे हैं। अकस्मात् कीर्तन करने लगे "पागलेर प्राणाराम, निताइ गौर राधे श्याम।" आप दोनों हाथ उठाकर नृत्य करने लगे, पारिषद वृन्द भी नाचने लगे। मैं भी नृत्य करते मूर्छित हो गया। इसके बाद कब तक कीर्तन हुआ, क्या हुआ, मुझे कुछ नहीं पता। सुना था पारस के स्पर्श से लोहा भी स्वर्णमय हो जाता है। मैं भी श्रील बाबाजी महाशय का सान्निध्य पाकर न जाने किस प्रकार हो गया।

जब मूर्छा भंग हुई तब देखा श्री बाबाजी महाशय मेरे निकट बैठे मस्तक पर धीरे-धीरे हाथ फेर रहे थे। और हँस रहे थे। और एक व्यक्ति माथे पर पंखा कर रहा था। उठ बैठा। श्रील बाबाजी महाशय मेरे प्रति दृष्टि किये थे, मैंने भी उन्हें देखा, बोले १ बज गये, तुम्हें लेकर मुसीबत में पड़ गया, "छटाके माताल कोथाकार।" चलो प्रसाद पाने। मैं और विलम्ब न करके श्रील बाबाजी महाशय के सङ्ग कमरे में गया। अपने पास ही पत्ते पर प्रसाद देकर बोले, "देखो तो कितनी रात हो गई। खूब कीर्तन हो रहा था, खूब नाच रहे थे, कपड़े भी तुम्हारे ठीक नहीं थे। मैंने तुम्हें पकड़ लिया था, नहीं तो बरामदे से गिर कर तुम्हारा सिर फूट जाता। मैं अवनत मस्तक होकर अपराधी जैसे प्रसाद पाने लगा। श्रील बाबाजी महाशय ने प्रसाद पाया, मैं प्रसाद पाकर हाथ धोकर उनके पास जाने में लज्जित हो रहा था। दीर्घ समय तक क्या हुआ था, मुझे कुछ भी स्मरण नहीं था। आंखों में आँसू आ रहे

थे, सिर झुकाये खड़ा था। तब उन्होंने मुझे पुकारा, "मयना, नींद आ रही है ?" उनकी स्नेहभरी पुकार सुनकर, मैं हँस पड़ा। वे हँस कर बोले, 'जाओ मेरे पलंग पर सो जाओ।" मैं तभी श्री बाबाजी महाशय के आदेशानुरूप उनके पलंग पर जाकर सो गया और तत्क्षण निद्रित हो गया। अब से श्री बाबाजी महाशय मुझे कभी ब्रह्मचारी, कभी प्यार से मयना पुकारते थे। इस प्रकार एक अपूर्व स्नेह की वर्षा वे मेरे ऊपर करने लगे।

प्रात: काल नींद टूटी देखा श्री बाबाजी महाशय मेरे साथ सोये हुये हैं। जैसे ही यह बात मेरे मन में आई वे "जय निताइ जय निताइ" बोलते हुए उठ बैठे। मेघलाल दादा सोये हुये थे, वे जल्दी-जल्दी उठकर लोम वस्त्र लेकर श्री बाबाजी महाशय के संग शौचगृह को चले गये। उस समय मेघलाल दादा श्रीबाबाजी महाशय की सेवा करते थे। वे जमींदारी, व्यापार, स्त्री एवं पुत्र सब छोड़कर श्रील बाबाजी महाशय के मधुमय संग में और उनकी सेवा से अपना जीवन धन्य कर रहे थे। वे 'टांगाइल सबडिविजन' के रहने वाले थे। उनकी गुरुनिष्ठा अपूर्व थी।

श्री बाबाजी महाशय शौचादि कर लौट आये। मैं भी जल्दी २ गंगा जी के तट पर अन्धेरे में शौचादि समाप्त कर, स्नान कर चला आया। श्री बाबाजी महाशय ने पूछा, "शौचादि कहाँ किया ?" मैं बोला, "गंगा जी के तट पर।" पानी किसमें लिया ? "मैं बोला कुयें के पास एक कुल्हड़ पड़ा था, वही लिया।" श्री बाबाजी महाशय हँसते - हँसते बोले

"सर्वस्व प्रभुरे दिया भाण्ड हाते लौय (सर्वस्व प्रभु को देकर हाथ में पात्र लिया) ।" सब लोग हँसने लगे । मैं अप्रतिभ हो गया। कारण तब केवल सतरह वर्ष की आयु थी मेरी, इन सब बातों का अर्थ कुछ भी नहीं समझता था। बाद में समझा। मेघलाल दादा, उपेन दादा पास ही थे; उनके प्रति बोले, "उसे एक कम्बल, एक लोटा और एक गमछा ले देना।" वे बोले, 'अच्छा थोड़ी देर में ही खरीद कर लादेंगे। मेरे पास लोटा कम्बल कुछ भी नहीं था । जहाँ तहाँ जमीन पर सो जाता था। कोई बुलाकर खाने को देता तो खाता था। इसी प्रकार मेरा जीवन बीत रहा था। श्री बाबाजी महाशय के पास आकर सब कुछ उलट गया। पिता, माता, भाई, बन्धु एक साथ वे मेरे सब कुछ बन गये। इसलिये मैं आनन्द से फूला न समा रहा था। आनन्द से दिशाहारा हो गया—सोचा इतना प्रेम, क्या मैं सह पाऊँगा ?

थोड़ी देर बाद श्रील बाबाजी महाशय ने पुकारा—"ब्रह्मचारी आओ।" मैं तत्क्षण उनके निकट जा पहुंचा। "चलो श्रीवास आंगन को" यह कहकर श्री समाज बाड़ी की परिक्रमा करने लगे, तत् पश्चात् श्री विग्रह को दण्डवत् प्रणाम किया। तत्पश्चात्, श्री गौर हरि दास महन्त एवं श्री बड़े बाबाजी महाशय को दण्डवत् करके निकट ही एक बहुत बड़े आम के पेड़ के नीचे छाया में सखी माँ खड़ी थीं। उन्हें दण्डवत् करके गेट की ओर रवाना हो गये। श्रीवास आंगन घाट पर अनेक ठाकुर हैं। श्री जगन्नाथ, निताइ-गौर और न जाने कितने ठाकुर। सबको दण्डवत् करने लगे। तत्पश्चात् माँ गंगाजी को दण्डवत् की और पीछे तरफ से रवाना हो गये। मैं उनके

पीछे-पीछे और उनके सब भक्तजन भी सभी उनके सङ्ग जा रहे थे।

श्रीवास आँगन के दरवाजे पर आकर दण्डवत् करके उन्होंने अन्दर प्रवेश किया—दो गोस्वामी सन्तान, अति सुन्दर—श्रील बाबाजी महाशय ने उनके चरणों में दण्डवत् किया। देखकर मैंने भी दंडवत् किया। गोस्वामी जी का नाम श्री चैतन्य चरण गोस्वामी था। वे श्रील बाबाजी महाशय को दादा कहकर सम्बोधन करते थे। बोले—"राम दादा, क्या आज अधिवास कीर्तन होगा ? जाकर देखा आश्रम को सजाया जा रहा है।" वे बोले—"हाँ। गुसाँई जी।" मुझे देखकर बोले "यह लड़का कौन है ?" ब्राह्मण है।" "कब आया ?" "दो तीन दिन हुए" यह बोलते-बोलते उन्होंने भीतर प्रवेश किया। श्री गौर विग्रह के अपूर्व अभिराम सौंदर्य को देखने लगे। कितने ही देव देवियों की मूर्तियाँ उस मन्दिर में थीं। मैं ने पूछा—"इतने देव देवियाँ श्री महाप्रभु के मन्दिर में क्यों ?" वे बोले "भगवान श्री गौर सुन्दर इस नवद्वीप धाम में अवतीर्ण हुये हैं। इसी कारण सब देवदेवी हाथ जोड़कर उनकी स्तुति कर रहे हैं। इसी श्री वास आँगन में श्रीमहाप्रभुजी नृत्य किया करते थे। यहाँ उनकी कितनी ही लीलाएँ हुई हैं।" यह कहकर उन्होंने भूमिष्ठ हो साष्टांग दण्डवत् किया और उठकर चरणामृत पाया, हम सबने भी पाया।

उसके बाद श्री नवद्वीप चाँद गोस्वामी जी की समाधि पर जाकर कृतांजलि हो उनकी श्री मूर्तिका दर्शन करने लगे—आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। और शरीर मृदुमन्द कंपित

हो रहा था, धीरे-धीरे बोल रहे थे—"श्रीकृष्णचैतन्य, प्रभु नित्यानन्द । श्री अद्वैत गदाधर श्री वास आदि गौरभक्त वृन्द ।" अनेक बार यह मधुर नाम करने लगे। साष्टांग दण्डवत करके धीरे-धीरे आँखें पौंछते-पौंछते निकट आये । मैं भक्ति पूर्वक दंडवत् करके उनके सङ्ग चला। सोचा 'एक व्यक्ति की मूर्ति का दर्शन करके इतनी भक्ति कैसे उमड़ पड़ी। यह तो एक गृहस्थी व्यक्ति थे । श्रील बाबाजी महाशय इतने बड़े साधु हैं फिर भी उन्हें देखकर क्रन्दन करने लगे, गोस्वामियों को दंडवत् भी किया। यह सब जानने के लिये मन में कौतुहल उत्पन्न हुआ।

मैं कुलीन ब्राह्मण-पुत्र हूँ, गोस्वामियों की इतनी भक्ति करनी चाहिये उस समय नहीं जानता था। मन में कौतुहल जगा, और श्री बाबाजी महाशय मेरे मन के भाव को समझ कर बोलने लगे "यह सब श्री नित्यानन्द-सन्तान हैं। इन्हीं लोगों के पास निताइ चाँद ने भक्ति का भंडार रखा हुआ है। श्री अद्वैत प्रभु की सन्तानों को भी गोस्वामी-सन्तान कहा जाता है। ये लोग सब वैष्णवों के मुकुट-मणि स्वरूप हैं। इन लोगों को दंडवत करने से भक्ति लाभ होता है।"

"और वहाँ जिन श्री नवद्वीप चाँद गोस्वामी की समाधि देखी थी वे भी परम भागवत् थे, भक्ति शास्त्र में उनका जैसा ज्ञान उस समय बहुत कम लोगों को था। इन लोगों में श्री विग्रह की सेवा की बहुत परिपाटी है। ये लोग महाप्रभु की सेवा के सिवा और कुछ नहीं जानते। श्रीमहाप्रभु के प्रसाद के बिना और कुछ नहीं खाते, तुम्हारे देश के रहने वालों जैसे, ये

लोग माँस, मछली नहीं खाते। श्री नवद्वीप चाँद गोस्वामी मुझ से बहुत स्नेह करते थे। वैष्णव सेवा इन लोगों के लिए प्राण स्वरूप हैं। जाति-वर्ण-भेद बिना ये समस्त वैष्णवों को घर बुलाकर प्रसाद देते हैं। श्री नवद्वीप चाँद गोस्वामी जी की श्री महाप्रभु तथा उनके पारिषदों के प्रति अपार भक्ति एवं निष्ठा थी। इन लोगों के अनगिनत् शिष्य एवं भक्त हैं—ये भी सब निताइ चाँद जैसे पतित पावन हैं। इनका दर्शन पाने के लिये या दर्शन करने से पहले, दर्शनार्थी को "श्री कृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द। श्री अद्वैत गदाधर श्री वास आदि गौर भक्तवृन्द" यह नाम उच्चारण करना होता था—नाम उच्चा-रण न करने से वे किसी से भी नहीं मिलते थे - ऐसी इनकी निष्ठा थी। मैंने उनका दुर्लभ संग प्राप्त किया था।"

यह सब कहते-कहते श्रील बाबाजी महाशय "सोनार गौरांग" मन्दिर में पहुँचे। बड़ा सुन्दर नाट्य मन्दिर (हाल) था। सफेद संगमर्मर के पत्थरों का आँगन बना था। सीढ़ियों से ऊपर जाकर उन्होंने दण्डवत् किया, उठकर खड़े होकर मुझ से बोले—"वह देखो सोनार गौर।" बड़ी सुन्दर मूर्ति, चमक रही है। मैंने पूछा—"क्या यह सारी मूर्ति सोने की बनी हुई है।" वे बोले—"जानते हो, महाप्रभु का रूप पिघले हुए सोने के समान चमकता है। शोन पुष्प जैसा उनका वर्ण है, उनके ऐसे रूप की कोई तुलना नहीं है। उनके रूप का वर्णन कोई नहीं कर सकता। पूर्णिमा का चाँद भी उनके सामने लज्जित होता है। ऐसा है उनका रूप!" यह सब बोलते-बोलते दण्डवत् करके वे सीढ़ियों से उतर आये, रास्ते में आकर बोले चलो भजन कुटीर दर्शन कर आएं।

यहाँ से बहुत दूर है। हम सब उनके साथ जा रहे हैं। रास्ते में जो कोई श्रील बाबाजी महाशय को देख रहा है, वही दण्डवत् प्रणति कर रहा है—सभी को प्रीति भक्ति युक्त देख रहा हूँ। मैं सोचने लगा—इस साधु में इतने लोग भक्ति रखते हैं परन्तु यह स्वयम् एक सहज, सरल व्यक्ति हैं। कोई रामदा पुकार कर भाग कर आ रहा है—दण्डवत् कर रहा है, कोई उन्हें श्री गुरु तुल्य श्रद्धा करके रास्ते में ही साष्टांग दण्डवत् कर रहा है। महिलायें कलश लेकर गंगा स्नान को जा रही हैं, श्रील बाबाजी महाशय को देखते ही हँसते हुए कह रही हैं— "वह देखो, बाबाजी महाशय जा रहे हैं।

मैं सोचने लगा,—'एक मनुष्य का इतना आकर्षक स्वरूप कहीं नहीं देखा—रास्ते मे जा रहे हैं, मृदुमन्द हास्य सदा मुख मण्डल पर विराजता है। क्या यह कोई सम्मोहन जानते हैं ? नहीं ऐसा तो नहीं देख रहा हूँ। वे अत्यन्त सीधे-सादे हैं। ये साक्षात्, अहैतुकी भक्ति और प्रेम के मूर्तिमान लावण्यमय विग्रह ही हैं।

बड़े साधु हैं पर ऐसा कोई अहंकार नहीं है, नहीं तो मेरे जैसे एक लड़के को इतना स्नेह प्रीति कैसे कर रहे हैं ? इस प्रकार न जाने कितनी बातें सोचते-सोचते उनके साथ चल रहा हूँ। अन्त में मेरी सारी बातें एक बात पर आकर शान्त हो गयीं। वह बात यह है कि उनका अन्तःकरण आपामर जनमात्र के प्रति प्रेम से सदा उद्वेलित रहता है, और प्रीति की साक्षात् मूर्ति हैं वे—इसके सिवा उस समय उनके विषय में और कुछ न सोच सका। मनमें दृढ़ संकल्प किया ये मेरे परम प्रिय बन्धु हैं,

इनको कभी नहीं छोड़ूँगा। श्रील बाबाजी महाशय नदिया के पथ पर झूमते-झामते जा रहे हैं! मस्तक पर गमछा है, मस्तक ढका हुआ है, चादर को लपेट कर पहने हुये हैं—पीछे से देखने मे लग रहा है कोई नृत्य भंगिमा में जा रहा है। वे कभी-कभी पीछे की ओर मुड़ कर देखते हैं और फिर हँसते हैं। चले जा रहे हैं मानो खंजन पक्षी जा रहा है। कितनी मधुर है वह चाल! वह चलन भंगिमा देखने की फिर इच्छा होती है। परन्तु हाय! हम लोगों का दुर्भाग्य है कि उस मधुर नृत्य भंगिमा का फिर कभी और दर्शन नहीं होगा। मानो विधाता ने हमारे हृदय पर कुठाराघात किया हो।

उनके सङ्ग हम सब भजन कुटीर पर उपस्थित हुये। सर्व प्रथम उन्होंने भजन कुटीर पर साष्टांग दण्डवत् किया। भजन कुटीर-वासी श्री वैष्णववृन्द दौड़े आये। सभी यथायोग्य दण्डवत करने लगे। श्रील बाबाजी महाशय ने तत्पश्चात् सिद्ध जगन्नाथदास बाबाजी महाशय की समाधि का दर्शन, परिक्रमा एवं दण्डवत् किया। हम सबने भी उनका अनुसरण किया। समाधि के सामने बैठ कर कहने लगे—"यह हम लोगों की गुरुपरम्परा की गद्दी है। आश्रम की बैठक में जिस महापुरुष का चित्रपट देखा, उन्हीं की समाधि यहाँ पर है।" मैं उस समय यह सब नहीं समझता था—जो भी कुछ स्मरण हो रहा है, वही लिख रहा हूँ। इसके बाद श्री चरणामृत पाकर धीरे-धीरे उनके साथ रवाना हुये। वे हम लोगों के प्रति बोले—"वह देखो प्राचीन मायापुर, रामचन्द्र पुर का नदी तट! वहाँ पर श्रीमन्महाप्रभु का जन्मस्थान है, जो गंगागर्भ में लीन हो गया है। श्री व्रजमोहन दास बाबाजी महाशय ने यह स्थान

निर्दिष्ट किया है। उनका प्रमाण कोई टाल नहीं सकता किन्तु महाप्रभु जी का मन्दिर बहुत नीचे मिट्टी के तले चला गया है। मन्दिर की चोटी का कुछ अंश अनेकों ने देखा है, ऐसे व्यक्ति अब तक जीवित हैं।"

श्रीपाद बोले—"मन्दिर का श्री विग्रह अब महाप्रभुजी के मन्दिर में है जिसका दर्शन तुम अभी कर के आये हो। उस मन्दिर के पास एक पुराना मन्दिर है, उसमें ही महाप्रभु जी रहते थे, अभी नया मन्दिर बना है, वहाँ पर श्रीमूर्ति की स्थापना की गई है।" श्रील बाबाजी बोले–वह श्रीमूर्ति श्रीमती विष्णुप्रिया देवी द्वारा स्थापित है। सन्यास के बाद श्रीमन् महाप्रभु श्री नवद्वीप धाम को एकबार आये थे। उस समय अपनी पादुका श्रीविष्णुप्रिया जी को दे गये थे। श्री विष्णुप्रिया देवी उसी पादुका की पूजा किया करती थीं, अब भी उस पादुका की सेवा मन्दिर में होती है। मैं बोला—"मुझे वह पादुका आपने दिखाई नहीं।" श्री बाबाजी महाशय बोले—"वह पादुका हमेशा सबको नहीं दिखाई जाती है। बाद में देखना।"

इस प्रकार वे श्री नवद्वीप धाम की कितनी ही बातें बोलते-बोलते गंगा जी के किनारे २ चलने लगे। श्री नवद्वीप धाम गंगा जी के तट पर है। एक सिद्ध बाबाजी महाशय नौका में रहते है। श्रील बाबाजी महाशय उन्हें दूर से दण्डवत् करके बोले—"श्री वंशीदास बाबाजी उसमें रहते हैं। श्रीमन महाप्रभु एवं निताइ चाँद के संग उनका बहुत प्रेम है। उन दोनों से वे प्रत्यक्ष बातें करते हैं।" मैंने पूछा—"विग्रह के संग बातें करते हैं?" श्री बाबाजी महाशय बोले—"हाँ करते हैं, उनके आगे

वे तम्बाकू रखते हैं, पीने को कहते हैं। एक दिन वे गौर सुन्दर के लिये फूल लाने गये तो वृक्ष से गिर कर उनका पैर टूट गया। लडखड़ाते हुये आकर महाप्रभु और निताइ चाँद के प्रति खूब क्रोध करने लगे। बोलने लगे—"तुम लोगों के लिये फूल लाने गया और तुम ने मेरी टांग तोड़ दी ! तुम दोनों को मैं गले में रस्सी बाँध कर कुयें में गिरा दूंगा।" उन्होंने जो कहा, वैसा ही किया। उन्होंने उन दोनों के गले में रस्सी बाँध-कर कुयें के अन्दर डाल दिया। थोड़ी देर बाद उन दोनों को उठा लाये और हृदय से लगाकर रोने लगे। ऐसा इनका भाव है। चावल, दाल, आलू बैंगन सब मिलाकर रसोई बनाते हैं। उनके सामने रखते हैं. आप भी खाते हैं बोलते हैं "खा जल्दी खा नहीं तो मैं सब खा लूंगा।" हुक्के में तम्बाकू डालकर बोले, "तम्बाकू पीने की इच्छा है—ले पी, पी सकेगा ?" ऐसा इनका भाव है। महत् व्यक्ति की क्रिया-मुद्रा कोई नहीं समझ सकता। इस कारण मैं साधु देखने नहीं जाता। दूर से दण्डवत् करता हूँ। इस प्रकार कितनी बातें करते-करते श्रीपाद बाबाजी महाशय श्रीवास अँगन घाट पर पहुँचे। समाज बाड़ी के बांए से श्रीनृसिंह देव के मन्दिर में प्रवेश किया।

हम सब साथ-साथ गये। वे श्री नृसिंह देव को साष्टांग दण्डवत् करके वहाँ जितनी समाधियाँ थीं सब का दर्शन करके बोले—"यह स्थान श्री भागवत दास महन्त का है। वे प्रभु के सेवाइत हैं। वह देखो बैठे तम्बाकू सेवन कर रहे हैं। खूब वृद्ध जरातुर अवस्था। अच्छी तरह दिखाई भी नहीं देता। सबको पहचान भी नहीं सकते। यह कहकर श्रील बाबाजी महाशय ने उनको भूमिष्ठ हो दण्डवत् किया और प्रायः ग्यारह बजे

समाज-बाड़ी लौट आये। आकर तेल लगाने बैठे। उपेनदा, मेघलाल दा, फणी काका, नन्द काका और जानकी भी थे— जानकी मेरे जैसा एक लड़का था। श्री बिहारी दास बाबाजी महाशय भी आये।

इस प्रकार और कई मूर्ति वैष्णव आये। मेघलाल दा, उपेन दा श्रील बाबाजी महाशय को तेल लगा रहे थे। हम लोगों के प्रति श्रीपाद देखते हुये बोले—"वैष्णव का बाह्य वेश, व्यवहार नहीं देखना चाहिये। देखो, श्रीभागवत दास महन्त गृहस्थ वैष्णव थे, किन्तु श्रील बड़े बाबाजी महाशय उनकी गुरु की तरह भक्ति करते थे। उन्हीं के पास वे प्रथम आये थे एवं उन्हीं के उपदेश और कृपा से श्री गौर हरि दास महन्त बाबाजी महाशय का संग पाया एवं गौर हरि दास जी के निकट वैष्णव-संन्यास ग्रहण किया। श्री राजेनबाबू (श्री बड़े बाबाजी का पहले का नाम) एकदिन खूब व्याकुल होकर श्री भागवत् दास महन्त जी से बोले,—"मैं श्री गुरु चरणाश्रय करूँगा, मेरा माया बन्धन कट जायेगा, किनके पास जाऊँ आप बता दीजिये।" वे बोले—"सेवाश्रम में श्री गौर हरि दास महन्त हैं, उनका संग लाभ कीजिये, उन्हीं के पास वेश आश्रय करिये।"

"श्रील बड़े बाबाजी महाशय उस समय राजेन बाबू के नाम से परिचित थे, तब उनका सन्यास नहीं हुआ था, संसार त्याग कर चले आये थे। धाम दर्शन करते थे और श्री भागवत् दास महन्त जी के पास रहते थे। उन्होंने उन्हीं के आदेश-अनुसार श्री गौरहरि दास महन्त जी का चरण आश्रय किया।

प्रथम दर्शन करते समय, उनके अस्वाभाविक कार्य देखकर राजेन बाबू ने परिहास किया था। वे उनका दर्शन करने के लिये आये तो देखा श्री गौरहरि दास बाबाजी महाशय साग के खेतपर काम कर रहे हैं। श्री राजेन बाबू उनको यह काम करते देख उपहास मिश्रित स्वर से बोले—"बाबाजी महाशय! क्या बाबाजी होकर भी साग सब्जी के खेत में काम करने की वासना नहीं छूटी ?" उन्होंने यह सुनकर एकबार दृष्टिपात किया और फिर काम में लग गये। श्री राजेन बाबू बोले—"बाबाजी महाशय जवाब नहीं देते ?" वे उनको देखते हुये बोले—बाबा, तुम सब बाबू लोग हो, मैं क्या बोलूँ ! तुम एकबार सोचकर देखो, मैं किसके लिये कर रहा हूँ, यह सब मैं अपने लिये नहीं ठाकुर जी के लिये कर रहा हूँ।

श्री राजेन बाबू व्यंग करते हुये बोले—"सब लोग ऐसे ही बोलते हैं।" यह कहकर श्री राजेनबाबू रवाना हो गये। रास्ते में आकर सोचा—"मैंने तो भीषण अपराध किया, एक प्राचीन वैष्णव को देखकर कटाक्ष एवं कटु वचन बोलकर अपराधी बन गया हूँ। सत्य है, वे साग अपने लिये नहीं बल्कि ठाकुरजी के लिए है। साग बढ़ने पर ठाकुर जी का भोग लगायेंगे एवं साधु वैष्णव अतिथियों को खिलायेंगे। उनका तो स्त्री-पुत्र कोई भी नहीं है, वे बिलकुल अकेले, अनन्य हैं। हाय ! ऐसे वैष्णव महापुरुष के प्रति मैंने कड़वे वचन बोले परिहास किया। चलो मिट्टी पर गिरने से मिट्टी को पकड़ कर ही उठना पड़ता है। मैं कटु उक्ति करके उनके निकट अपराधी बना, तब उनको ही मैं गुरु के रूप में ग्रहण करूंगा एवं उन्हीं से भागवत् परम-हंस वेश धारण करूँगा।

मैं आज ही उनके श्री चरणों मे अपने सब अपराधों की क्षमा प्रार्थना करके उनके श्रीचरणों में आत्म-समर्पण करूँगा। वे वैष्णव हैं निश्चय ही मुझे क्षमा करके आश्रय देंगे—इसी भाव से उनका हृदय व्याकुल हो उठा। उनसे और रहा न गया, हृदय पश्चात्ताप से दग्ध होने लगा। श्री राजेन बाबू भागे-भागे उनके चरणों में साष्टांग होकर गिर पड़े। रोते-रोते बोले "मैं महा अपराधी हूँ, आपके निकट अपराध किया है, मेरा समस्त अपराध क्षमा करिये। मेरे सांसारिक बन्धन काट दीजिये और मुझे अपने श्री चरणों में आश्रय दीजिये।" श्री गौरहरि दास बाबाजी महाशय ने उनकी यह आर्त्ति देखकर उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया और सजल नयनों से उनको पकड़कर आप भी रो पड़े।

"दूसरे दिन उन्होंने श्री राजेन बाबू को डोर-कौपीन पहनाकर वैष्णव परमहंस वेश प्रदान किया और उनका नाम रखा—"श्री राधारमण चरण दास। राजेन बाबू तब से श्री श्री राधारमण चरण दास नाम से परिचित होने लगे। दीन कंगाल होकर वे नाम संकीर्तन करते, भिक्षा करके श्रीगुरुचरणों में चावल दाल आदि लाकर देते। उनका भिक्षा करने का नियम था—नाम करते-करते रास्ते से चले जाना, किसी से कुछ नहीं माँगना। अपने मन से जो कुछ भी दान करे, वही झोली में लेकर चले आना। उस समय वे सर्वदा कीर्तन आनंद में श्रीधाम के सब विग्रह दर्शन करते एवं नित्य सेवाश्रम में महोत्सव एवं कीर्तन करते। आनन्द से उनके दिन बीतने लगे।"

"श्रीगौरहरि दास बाबाजी महाशय उनकी अपूर्व गुरु-निष्ठा और भजन देखकर मुग्ध हो गये एवं शिष्य के प्रति अशेष वात्सल्य युक्त प्रेम करने लगे। इसके पश्चात् श्रीराधा-रमण दास बाबाजी महाराज कलकत्ता, पुरी, कटक इत्यादि देशों का परिभ्रमण करते रहे। इस समय से उनको सब लोग श्री बड़े बाबाजी महाशय के नाम से पुकारते थे। बहुत दिनों के बाद श्री बड़े बाबाजी महाशय 'पुरी' एवं 'कटक' से कलकत्ता होकर श्री नवद्वीप धाम में श्री गुरुदेव श्री गौरहरि दास बाबाजी महाशय का दर्शन करने आये, तब उन्होंने पहले श्री भागवत दास महन्त जी को साष्टांग दण्डवत् किया, तब श्री गुरु गौरहरि दास महन्त जी का दर्शन करने गये।

सब लोग कहने लगे—यह क्या? श्री गुरुदेव को पहले दण्डवत् न करके पहले उनके निकट न जाकर श्रीभागवत दास महन्त जी का दर्शन करने क्यों गये? वे तो एक गृहस्थ वैष्णव हैं, उनके प्रति इतनी श्रद्धा! और श्री गौरहरि दास बाबाजी महाशय एक विरक्त वैष्णव हैं, श्री नवद्वीप धाम उनकी महिमा से मुखरित है, उनको छोड़कर पहले श्री भागवत दास महन्त जी को दण्डवत् करने क्यों गये?

इस पर श्रील बड़े बाबाजी महाशय बोले—"श्री धाम आकर श्री भागवत दास बाबाजी महाशय के चरण का मैंने प्रथम दर्शन किया, क्योंकि उन्होंने ही मुझे सर्वप्रथम रहने के लिये आश्रय दिया था, एवं उन्होंने ही मुझे श्री गौरहरि दास बाबाजी महाशय के चरणों में आश्रय पाने को कहा था और इसी कारण मैंने उनको पहले दण्डवत् किया। कितनी कृतज्ञता

थी श्री बड़े बाबाजी महाशय की। कितने गुणग्राही थे वे। गुरु में कितनी श्रद्धा रखते थे।" इस प्रकार कितनी ही बातें करते-करते श्री बाबाजी महाशय गंगाजी में स्नान करने गये। हम भी दो चार लोग उनके सङ्ग गए। गमछा हाथ में लेकर वे चलने लगे। एक व्यक्ति ने हाथ में छाता लिया हुआ था। धीरे-धीरे उन्होंने श्रीवास आँगन के घाट पर पहुँच कर गमछा मस्तक पर रखा। मृदुमन्द गति से वे गंगा-स्नान को जा रहे हैं। घाट से काफी दूरी पर माँ गंगा जी हैं। वे झूमते-झामते जा रहे हैं, मुख पर हँसी छाई हुई है। इस समय मैंने देखा ४/५ महिलायें गंगास्नान करके कलश में गंगा जल ला रहीं हैं। श्रील बाबाजी महाशय को देखकर वे आनन्द से उद्वेलित हो उठीं और बोली—"वह देखो बाबाजी महाशय।" श्रील बाबाजी महाशय एक तरफ देखकर मृदमन्द मुस्कुराये।

हम सब गंगा जी के तट पर जा पहुँचे। श्रील बाबाजी महाशय ने माँ गंगा जी को दण्डवत् कर मस्तक पर जल लिया। मैं केवल सोच रहा था कि श्रीपाद बाबाजी महाशय का जैसा आकषक स्वरूप और कहीं नहीं देखा! वे गगा जी के तट पर आये हैं, असंख्य नारी-पुरुष स्नान कर रहे हैं। सभी कह रहे हैं—"वह देखो बाबाजी महाशय।" सब लोग निर्निमेष दृष्टि से उन्हें देख रहे हैं। मैं भी चारों ओर देख रहा हूँ—सभी की दृष्टि श्रीपाद बाबाजी महाशय के मुखमण्डल पर है, मैंने यह सब सोचते-सोचते गंगा जी में डुबकी लगाई। श्रीपाद बाबाजी महाशय गमछे से मस्तक पर जल देने लगे, फिर एक डुबकी लगाकर उठे। जल में खड़े होकर वे 'गौरहरि बोल' की ध्वनि देने लगे।

कितना मधुर कोकिल-कण्ठस्वर—सुरधुनी दोनों तट से मनोरंजक प्रतिध्वनि हो रही थी। हम सब आत्मविस्मृत हो गये। कारण इस प्रकार स्नान करते-करते ऐसी मधुर हरिनाम-ध्वनि कभी किसी से नहीं सुनी थी। इस प्रकार गंगा-स्नान करके तट पर आये, बहिर्वास बदल कर नया डोर कौपीन धारण किया। मेघलाल दादा उनका बहिर्वास, डोर-कौपीन धोकर लाये। श्रीपाद बाबाजी महाशय वहाँ से रवाना हो गये। हम सब महानन्द से उनके साथ चलने लगे। धीर मन्थर गति से उनके सङ्ग हम लोग जा रहे हैं।

आश्रम में पहुँच कर ठाकुर जी का चरणामृत पा अपनी भजन कुटीर में आन्हिक करने बैठे।

अनेक ठाकुरों के प्रसादी वस्त्र! अनेक शीशियों और डिब्बियों में चरणामृत, चरण तुलसी! सामने एक मखमल (Velvet) के कपड़े के ऊपर वे ये सब रखने लगे। कितनी सावधानी से, कितनी श्रद्धा से वे अपने मस्तक पर वह सब स्पर्श कर रहे हैं और बार-बार कम्पित हो रहे हैं। मैं सोचने लगा—सर्वदा ही ये भाव मग्न रहते हैं किसी भी ठाकुर देवता के दर्शन मात्र से वे कम्प, अश्रु और पुलक से विभूषित हो जाते हैं फिर बालक जैसा उनका सरल स्वभाव एवं उनकी हँसी और बातें! यह सब सोच ही रहा था कि वे मुझे देखकर बोले—"यह देखो! श्री जगन्नाथ देव का प्रसादी वस्त्र, यह देखो—श्रीहरिदास ठाकुर जी का कौपीन।" मैंने पूछा—"यह मखमल के टुकड़े में लिपटा हुआ क्या है? यह तो रस्सी या कपड़ा मालूम पड़ता है?" यह कहते ही वे बोले—"यह कर्ता

(बड़े बाबाजी महाशय) का डोर कौपीन है ।" मैं बोला "आपको छोड़क 'कर्ता' और कौन है ?" श्रीपाद बाबाजी महाशय बोले—"मेरे श्रीगुरुदेव ही हम लोगों के कर्ता। हैं यह मेरे श्री गुरुदेव का कौपीन है, इसे मैं गले में डालकर आन्हिक करता हूँ।" उनकी यह बात सुनकर मैं चुप हो गया।

इस प्रकार मैं उनके निकट बैठा हूँ। उन्होंने हाथ पर तिलक घोलकर मस्तक, हृदय बांह आदि पर सुन्दर तिलक धारण किया। तिलक के साथ-साथ "गोरा" छाप देने लगे और "गोरा" छाप के गले पर, बाहु और हृदय पर अलंकार पहने। मैंने पूछा—"यह वेश-भूषा-तिलक-छाप मन ही मन क्या नहीं किया जा सकता ? सब बाहर ही क्यों करते हैं ? वे किंचित मात्र भी रुष्ट न होकर हँसकर बोले—"वाह बलि-हारि ! तब खाना, पहनना, स्नान इत्यादि तुमलोग मन ही मन क्यों नहीं करते ?" मैं लज्जित हो गया, पता नहीं क्या जवाब दूँ ?

तब वे हँसकर बोले—"यह शरीर एक मंदिर है,इसमें ठाकुर जी आयेंगे, इसी कारण इसे पहले से सजाते हैं। मंदिर सुन्दर न होने से वे क्यों आयेंगे ? बाहर एवं अन्दर सुन्दर रूप से सजाने ही तो वे आयेंगे। सुन्दर वेश न होने से कोई किसी को बाबू-साहब नहीं समझता। वेश से ही सब के देश का पता चलता है। देखो मारवाड़ी-वेश में—मारवाड़ी का पता चलता है। महिलाओं के माथे पर सिन्दूर देखने से विबाहित, पतिभक्ति-परायणा समझी जाती है। सफेद कपड़ों से विधवा समझते हैं। हैट, कोट, पैन्ट देखने से साहब का पता लगता है, बड़े-बड़े अफसर भी पहनते हैं। चोगा-चपकान न पहनने से 'हाई कोर्ट'

के जजसाहब वकील, बैरिष्टर को अदालत में आने ही नहीं देते। इसी प्रकार यह वेश प्रभु का दास्य-वेश है। जो लोग भगवत् प्रेम से भोजन-निद्रा भूल जाते हैं, अपने शरीर को भी भूल जाते हैं, उन लोगों को वेश की कोई अपेक्षा नहीं होती। जैसे श्रीपाद शुकदेव गोस्वामी नंगे रहते थे। उनका कोई वेश नहीं था।

श्रील बाबाजी महाशय बोले—"दो मार्ग हैं—एक राग मार्ग और दूसरा विधि मार्ग। जैसे समझो एक लौकी है। उसके आगे फूल है। समझो फूल विधि है और राग है लौकी। यदि पहले ही फूल को काट दो तब लौकी और नहीं बढ़ेगी, सूख जायेगी, उसका कोई चिन्ह तक नहीं रहेगा। अगर फूल को नहीं काटेंगे तो लौकी धीरे-धीरे बढ़ेगी और कुछ दिन के बाद फूल अपने आप झड़ जायेगा। इसी प्रकार विधि मार्ग पर चलते-चलते 'राग' मार्ग पर आ जाओगे। पहले से ही विधि लंघन करने से भक्ति लौकी की तरह सूख जायेगी—'राग भक्ति' नहीं होगी।

इसी कारण पहले 'वैधी भक्ति' का याजन (अभ्यास) करना चाहिये। विधि मार्ग पर चलते-चलते ही भक्त को 'राग भक्ति' प्राप्त हो सकती है। प्रेम दुर्लभ है, राग-भक्ति सुदुर्लभ—वह तो केवल श्री गुरुकृपा से ही सम्भव है। राग-भक्ति ब्रजवासियों की है, यह सभी को प्राप्त नहीं होती। यदि किसी को उसकी लालसा हो और श्री गुरु वैष्णव उस पर अहैतुकी करुणा करें तब होती है, समझे ?" इस प्रकार बातें करते-करते वे नीरव हो गये। सब चरणामृत शीशियों में था,

उन्होंने सब पाया, गले में प्रसादी वस्त्र धारण किया और जाप करते-करते आंखें बन्द कर लीं।

मैं सोचने लगा—अब मैं क्या करूँ बैठे-बैठे उन्हें देखूँ या चला जाऊँ—उन्होंने तो कुछ भी नहीं कहा। तभी एक व्यक्ति बोले—"ब्रह्मचारी ! तुरन्त बाहर आ जाओ, श्रील बाबाजी महाशय आन्हिक करेंगे।" श्रील बाबाजी महाशय उनकी यह बात सुनकर बोले—"नहीं वह नहीं जायेगा, यहीं रहेगा।"

वे चुप हो गये उनकी यह बात सुनकर। मैं भी चुपचाप श्रील बाबाजी महाशय के मुखारविन्द को देखता रहा। वे जप कर रहे हैं और कम्पित हो रहे हैं। आँखों से अश्रुधारा बह रही है। बीच-बीच में ऐसे हुँकार करते हैं कि मैं भयभीत होने लगता हूँ इस प्रकार प्राय: दो घण्टे बीत गये। तत्पश्चात् वे आंखें पोंछकर प्रसादी माला, पट्टडोरी आदि को मस्तक पर स्पर्श कराकर झोले में डालने लगे। और तभी मध्यान्ह आरति का—घण्टा बज उठा। वे दर्शन के लिये उठ खड़े हुये। सेवक ने आकर हाथ में चादर लाकर दी। धीरे-धीरे मध्यान्ह युगल-आरति दर्शन करने गये, साथ - साथ हम लोग भी जाने लगे।

दर्शन कर रहे हैं और कम्पित हो रहे हैं। सात्विक भाव सदैव ही उनके श्री अङ्ग पर दिखता था। श्रीपाद बाबाजी महाशय के मधुमय सङ्ग को पाकर एवं उनकी स्नेहधारा से सिक्त होकर मैं तो जैसे अपने को खो बैठा। माँ भाई तथा अन्य सम्बंधियों को भूल बैठा। प्रसाद पाने का समय हो गया, सब प्रसाद पाने बैठ गये।

श्री बाबाजी महाशय घूम-घूम कर सबका प्रसाद पाना देखकर अपनी कुटिया में आए और मुझे बुलाया– "आओ ! प्रसाद पा लो।" मैं बोला—सब पंगत पर बैठे हैं, मैं उनलोगों के संग जाकर बैठूं ?" वे बोले—"नहीं मेरे पास बैठो, कोई तुम्हें कुछ कह बैठेगा।" उस समय मेरे गले में एक छोटी रुद्राक्ष की माला और एक तुलसी माला थी। लम्बे बाल, गले में यज्ञोपवीत, छोटा सा एक कपड़ा लपेटे हुए—अपने आप ही मैंने यह वेश धारण किया था। इसी कारण सम्भवतः श्री बाबाजी महाशय ने मुझे वैष्णवों के संग बैठने नहीं दिया। फिर मैंने सोचा—मैं ब्राह्मण हूँ, सब के साथ क्यों बैठूँ ? तथा श्रील बाबाजी महाशय की तरह स्नेह पूर्वक प्रसाद तो निश्चय ही कोई भी नहीं देगा, तो मैं क्यों जाऊँ, यह सब सोचते-सोचते श्रील बाबाजी महाशय के साथ ही मैं प्रसाद पाने बैठ गया। प्रसाद पाकर श्रील बाबाजी महाशय विश्राम करने के लिये पलंग पर लेट गये।

मैं उनके बराम्दे में जाकर बैठा। इस समय श्रीबिहारीदास बाबाजी महाशय मेरे निकट आकर स्नेह से बातें करने लगे। यह देखकर मठ के अनेक साधु वैष्णव आकर मेरे पास बैठ गये। श्रीवसन्तदास बाबाजी महाशय, श्री निताइ दास बाबाजी महाशय, बिजय चाटुज्ये महाशय, प्रियनाथ दास, नरोत्तम दास, किंकर दास, बड़े रमण दास, छोटे रमण दास, उपेन दास, मदन दास, भगवान दास आदि वैष्णव वृन्द उस समय बाबाजी महाशय के निकट रहते थे। श्री बिहारी दास बाबाजी महाशय ने मेरे सङ्ग सबका परिचय करा दिया। सब मेरे सङ्ग बातें करने लगे, "कहाँ से आये हो ? क्या नाम है। इत्यादि

पूछने लगे, मैं यथोचित उत्तर देने लगा। श्रील बाबाजी महाशय मुझसे स्नेह करते थे, इसी कारण उन्होंने मेरे साथ प्रीति पूर्ण व्यवहार किया।

श्री यदुनन्दनदास, श्री कृष्णदास एवं श्री शान्तिराम दास नाम के तीन वैष्णव मेरे हाथ पकड़कर बहुत प्रीति पूर्ण व्यवहार करने लगे। ये तीनों लोग श्रील बाबाजी महाशय के शिष्य थे। मेरी जन्मभूमि मागुरा के निकट, मदनपुर नाम की एक जगह है, यह वहीं के रहने वाले थे। अब वे वैष्णव हो गये हैं। इन्होंने भेक ग्रहण किया हुआ है। मेरी जन्मभूमि ही उनका जन्मस्थान है। उन्होंने मुझे पहचान लिया। मेरे चाचा जी पूर्णचन्द्र चट्टोपाध्याय बहुत ख्याति सम्पन्न वकील थे। मागुरा में तब उनका खूब प्रभाव था। उनको वे पहचानते थे। मैं उनके बड़े भाई का लड़का हूँ। मेरे बड़े भाईयों को भी वे जानते थे। इसलिये वे मुझसे प्रीति करने लगे।

मैं अपने स्वजनों को छोड़कर साधु बना हूँ, यह उन्हें अच्छा नहीं लग रहा था, वे बोले—"मात्र १७ वर्ष की आयु में क्यों संसार छोड़ आये?" मैं बोला, "मैं अपने आप ही ऐसे बन गया हूँ। घर पर रहने को बिलकुल मन नहीं करता था। एकबार १२ वर्ष को अवस्था में साधु बनकर घर से मैं भाग गया। ठाकुरजी का नाम लेकर फिरता रहा। कोई बुलाकर खाने को दे, तो खा लेता, कभी-कभी कुछ भी नहीं मिलता। भूख के मारे खेतों से मटर सेम इत्यादि खाता था, कभी जंगली बेर खाकर दिन बिताता था। इस प्रकार प्रायः एक महीना बीत जाने पर घर वाले मुझे पकड़ कर ले गये। खूब मार खाई फिर पढ़ाई शुरु हो गई।

बचपन से मैं ऐसे ही था। छः महिनों बाद मैं फिर भाग गया। सब लोग मिलकर मुझे फिर पकड़ लाये और फिर से पढ़ाई शुरु करनी पड़ी। इसबार मैं अन्तिम बार घर से निकल पड़ा। किसी से भी नहीं मिला। स्कूल में पढ़ते समय जब मैं १३ वर्ष का था तब श्री बाबाजी महाशय को देखा था। तब से उनको भुला नहीं सका। इतने दिनों के बाद ढूढ़ते - ढूढ़ते आज मैंने उन्हें पाया है और अब कभी नहीं छोड़ूँगा। यह कहते-कहते मैं फूट-फूटकर रोने लगा। आवाज सुनकर श्रीबाबा जी महाशय बाहर आकर मेरी यह अवस्था देखकर सब समझ गये। उनको देखकर मैं लज्जित हो गया और तभी श्री बाबाजी महाशय—'मयना पाखी' बोलकर हँस पड़े, मैं भी हँस पड़ा। श्री बाबाजी महाशय अन्दर चले गये।

दोपहर के बाद शाम हो गई। गेट पर अनेक घोड़ागाड़ियाँ आने लगीं। कलकत्ते से बहुत लोग आये हैं। आज नवरात्र नाम यज्ञ का अधिवास होगा, इसी कारण सब आ रहे हैं— सबसे यह पता चला। श्रील बाबाजी महाशय माला जपते-जपते बाहर कुर्सीपर बैठे-बैठे मुझे देखकर हँसने लगे, तभी बहुत से लोग आकर श्रीलबाबाजी महाशयको दंडवत् प्रणाम करने लगे। कितने लोग आये हैं। प्रायः दस-बारह घोड़ागाड़ियाँ आईं हैं। मैं मन में सोचने लगा—इनमें एक व्यक्ति को देखने की इतनी इच्छा है ! कितना आकर्षण है।"

पोटली रखकर कोई दौड़कर आ रहा है, कोई साष्टांग प्रणाम कर रहा है, कोई निर्निमेष दृष्टि से उनका दर्शन कर रहा है। सबकी आँखों से आँसू बह रहे हैं। कितने लोग आ

रहे हैं, उसकी कोई संख्या नहीं। मैं किसी को भी नहीं पहचानता। तीन चार भक्तों की बातें मुझे स्मरण हैं। एक भक्त श्री बाबाजी महाशय को दण्डवत् करके खूब हास्य-परिहास करने लगे। वे बाबाजी महाशय के साथ अनेक प्रकार से हँसी मजाक कर रहे थे। मैं उनकी सख्य भाव की प्रीति देखकर अवाक् रह गया। उनका नाम चारु दा था, बहुत रसिक भक्त थे। उन जैसे और कोई नहीं थे। श्री बाबाजी महाशय से बहुत प्रेम करते थे। उनके संग वे सख्य प्रीति करते थे, वे हँसकर उनसे बोले—"नौकरी करते-करते स्वजन-बन्धुओं की सेवा करते-करते दिन तो बीत रहा है। कब आपकी इस झोली में बैठने को मिलेगा ? आप की झोली में न जाने मैं कैसा दीखने लगूंगा ?"

श्री बाबाजी महाशय हँसकर बोले—"झोली में कैसे जाओगे चारु ?" चारुदा बोले—"क्यों, कुछ भी बनकर रहूँगा उसमें, बस, और कुछ नहीं। श्रीगुरु-वैष्णव के झोली में रहने का सौभाग्य चाहिये। आपकी झोली में मेरा कुछ भी बनकर रहने का सौभाग्य क्या इस जनम में होगा ?" यह सब बातें सुनकर श्री बाबाजी महाशय एवं उनके भक्त लोग सभी हँसने लगे। चारुदा के निकट देखा खड़े हैं एक सुन्दर, सुठाम बलवान पुरुष, लाल चेहरा, ब्राह्मण, गले में यज्ञोपवीत, एक चादर ओढ़े हुये पेशीयुक्त शरीर वाले। मैं चारों ओर देखने लगा।

श्री बाबाजी महाशय के निकट उनका नाम सुना—'युगल' वे चारु दा जैसे श्री बाबाजी महाशय के सङ्ग सख्य प्रीति कर रहे थे। युगल दा को मैंने पहचान लिया। कलटाला में 'शील

बाबू' के घर जब मैं श्री बाबाजी महाशय के दर्शन करने गया था तब उन्हें देखा था। साथ ही उनकी सोने-चांदी की दुकान भी देखी थी। एकदिन उनकी दुकान पर बैठा था। उनके मस्तक एवं सर्वांग पर तिलक देखकर समझा था कि वे एक गृही भक्त हैं। मुझे देखकर उन्होंने मुझ से बहुत प्रेमपूर्ण व्यवहार किया था। इसी कारण मैं उन्हें भूला नहीं। उन सुन्दर ब्राह्मण का नाम श्री बलाई भट्टाचार्य था, जो चारु दा के गांव के रहने वाले थे। चांगड़ी पोता में रहते थे। यह दोनों ही श्री बाबाजी महाशय के बहुत प्रिय हैं। चारुदा, युगल दा एवं बलाईदा श्री बाबाजी के कीर्तन में निश्चय ही रहेंगे। इन लोगों के न रहने से श्रील बाबाजी महाशय का मन ही नहीं लगता। सत्र अफसर लोग हैं। दफतर के बाद घर न जाकर श्री बाबाजी महाशय के पास दौड़ आते हैं। उनके सङ्ग कीर्तन-नर्तन करते हैं। वे सब रात को यहीं उनके पास रहते हैं, फिर सुबह स्नान करके, प्रसाद पाके दफतर चले जाते हैं।

मैं सभी को देखने लगा—सुन्दर, हास्ययुक्त मुख-मण्डल। श्रील बाबाजी महाशय के सामने यह लोग नसवार भी ले रहे हैं। नसवार की डिबिया देखकर श्रील बाबाजी महाशय बोले—"ओ चारु, थोड़ा सा दे तो।" चारुदा ने डिबिया खोलकर उनके सामने रखी। श्रील बाबाजी महाशय ने हंसकर थोड़ा सा लिया। चारुदा हँसते-हँसते बोले—"हम लोगों के सर पर आवरण है, सर्वदा ढका रहता है। आपके पास आते ही ढक्कन अपने आप खुल जाता है। आपका सङ्ग इस प्रकार ढक्कन खोल देता है। ऐसे आदमी के पल्ले पड़े हैं, जिसके आगे हम

लोगों की मान, इज्जत और नहीं रहती ।" सब लोग जोर-जोर से हँसने लगे ।

श्रील बाबाजी महाशय सबसे बोले, "हाथ, मुँह धोकर रहने की जगह ठीक कर लो सब ।" पोटली लेकर वे सब जगह ठीक करने को चले गये । इसी समय शान्तिराम दास बाबाजी एवं कालाकृष्ण दास बाबाजी ने आकर मेरा आलिंगन किया । मैंने दोनों को पहचान लिया । यह सब पुरातन बाबाजी हैं । जब मैं स्कूल में पढ़ता था, तब वे सब कीर्तन करने आते थे । किसी व्यक्ति के घर में 'मालसा' भोग लगाकर मुझे उन्होंने बुलाया था और मालसा भोग तथा पनीर-चीनी खूब सारा खिलाया था ।

इसी कारण उन्हें देखकर मैं बहुत आनन्दित हुआ । श्री वैष्णव कृपा ही मानव जीवन का एकमात्र सहारा है । किसी प्रकार से भी यदि वैष्णव सङ्ग मिले तो वही उसके लिये धन्य-क्षण है । वैष्णव कृपा बिना कुछ नहीं होता । वे दोनों हँसकर बोले—जब से तुम्हें देखा है, तब से तुम्हें अपने पास पाने की इच्छा होती थी । अब तो तुम आगये ।" यह सुनकर मैंने उनको दण्डवत्-प्रणाम किया । इस समय श्री अद्वैतदास बाबाजी—श्रील बाबाजी महाशय के गुरुभाई हँसते-हँसते मेरे निकट आकर बोले, "क्या मयना, आगये हमलोगों के पास ? मागुरा के स्कूल में जब पढ़ते थे तब मैंने जो कहा था । स्मरण है ? संसार छोड़कर निश्चय ही तुम चले आओगे, । मैं ने "जी हाँ," यह कहकर उनको दण्डवत् किया, वे 'टुकुमणि' कहकर स्नेह करने लगे ।

फिर देखा अनेक महिलायें श्रील बाबाजी महाशय को दण्डवत् कर रही हैं। दो-तीन के बारे में स्मरण है। 'तालतला' से हरिमती दीदी एवं चागड़ीपोता से दीदीमणि आयी हैं। वे श्रील बाबाजी महाशय के चरणों में दण्डवत् करके पूछ रही हैं—"आप कैसे हैं ?" श्री बाबाजी महाशय मृदु हँसकर बोले—ठाकुरजी की कृपा ने मुझे अच्छा ही रखा है। इस प्रकार प्रीति पूर्वक हँसकर बातें कर रहे हैं, वे भी सब सुनकर हँस रहीं हैं। मैं सोचने लगा—क्या पुरुष, क्या नारी, सब के साथ ही उनका सख्य भाव है, इनके लिये अपना पराया कोई नहीं है। जिसे भी देखें, वही इनका अपना है। बालक, वृद्ध, पुरुष, नारी, जो भी उनके दर्शन करता है मस्त हो जाता है। कितनी महि-लायें आकर उनको प्रणाम कर रही हैं।

श्रील बाबाजी महाशय की सेवा के निमित्त चांदी की थाली, गिलास लायी हैं वे। उनके आन्हिक करने के लिये सुन्दर-सुन्दर आसन लायीं हैं। वे बड़े-बड़े दुपट्टे, चादर, बहि-र्वास, अच्छे-अच्छे सफेद गमछे लायीं हैं। कितने फल, मिठाई श्रीपाद के निकट रखकर आनन्दित हो रहीं हैं। उर्मिला नाम की एक लड़की सुन्दर चावल और अच्छे-अच्छे अचार लायी है। श्रील बाबाजी महाशय के लिये एक सुन्दर वेलवेट की पादुका भी लायीं हैं। यह सब वस्तुएँ देखकर वे मेरे प्रति देखकर हँसते-हँसते बोले,—"काणा छेलेर (लड़के का) नाम पद्मलोचन। देख रहे हो मयना ! बचपन में ही मैंने घर छोड़ा था। जब स्कूल जाता था तो जल्दी से थोड़ा सा दाल-चावल खाकर स्कूल चला जाता था, यदि थोड़ी सी भाजी मिल जाती तो अपने को धन्य मानता था। यदि ज्वर होता था तो ज्वर

उतरने पर दिन में एकदिन रोटी मिलती थी। मैं एक कमीज और दो धोती पहनता था, सरदी में एक बनियान पहनता था और आजकल देखो, ठाकुर जी का थोड़ा नाम जपता हूँ, दुहाई देता हूँ तो कितना कुछ मिल रहा है। साधु का वेश पहने हुए हूँ इसीलिए कितनी वस्तुएँ आ रही हैं। यदि मैं ठीक से नाम लेता, और प्रभु से सच्चा प्रेम करता तो न जाने क्या होता। आओ यह सब दीदी के पास ले जाओ। ठाकुर जी की सेवा में लगेगी। सामान्य कुछ चादर और बहिर्वास रख दो।" वे सब अनिच्छा के साथ सब वस्तुएँ सखीमाँ के निकट दे आयीं। मैं सोचता रहा—यह इतने बड़े महापुरुष हैं कितने लोग इन्हें मानते हैं, और यह फिर भी सहज भाव से अपने को तुच्छ समझ रहे हैं। बिन्दुमात्र भी अहंकार नहीं है।

इस समय श्री कृष्ण चैतन्य दादा महाशय आये, तत्पश्चात् मधु जेठा एवं श्री खण्ड निवासी श्री राखालानन्द शास्त्री जी आयें। श्रील बाबाजी महाशय ने उन लोगों को श्रद्धा पूर्वक दण्डवत् करके आसन ग्रहण करने के लिये अनुरोध किया। श्रीपाद ने श्री राखालानन्द ठाकुर को दण्डवत् किया और उन्होंने श्रील बाबाजी महाशय को हृदय से लगा लिया, मुख-मण्डल पकड़कर कितनी ही प्रीति युक्त बातें करने लगे। दोनों ही के नेत्रों से अश्रुप्लावित होने लगे। श्रील राखालानन्द ठाकुर आसन पर बैठे और श्रील बाबाजी महाशय सबके सङ्ग नीचे बैठे। उनका इस प्रकार प्रीतिपूर्ण व्यवहार देखकर मैं मुग्ध हो गया। फिर देखा सब लोग कितनी ही सामग्री सजाकर कीर्तन करते-करते श्रीधाम के सब ठाकुरों के मन्दिरों में ले जा रहे हैं। श्रील बाबाजी महाशय ने मुझे यह सब देखने के

लिये कहा। सखीमाँ ने श्रीधाम के ठाकुरों के लिये कपड़े और बालभोग सजाकर एक-एक व्यक्ति के सिर पर रख दिया। वे लोग सब नाम कीर्तन करते-करते रवाना हो गये। चारों ओर जैसे आनन्द का झरना झर रहा था। कानाई दा, निताइ दा, गोवर्धन काका सखीमाँ का इन कामों में हाथ बटा रहे थे। वे सर्वदा सखीमाँ के संग फिर रहे थे। अनेकों लोग आ रहे थे वे सबके सङ्ग यथायोग्य व्यवहार कर रहे थे।

श्री गोवर्धन काका श्रील बाबाजी महाशय के गुरुभाई हैं। वे श्री राधारमणदेव तथा महन्त श्री गौरहरि महाराज की समाधि सेवा करते हैं। मैं ने जाकर उनको दण्डवत् किया, उन्होंने प्रीति पूर्वक मेरा आलिंगन किया। इसी प्रकार मैं सबके स्नेह से सिंचित होने लगा। सोचा मेरा भाग्य बहुत प्रसन्न है, नहीं तो इन सबका सङ्ग कैसे मिलता? मैंने सोचा श्रील बाबाजी महाशय जब मुझे इतनी प्रीति करते हैं तो इससे बढ़-कर मेरा सौभाग्य और क्या होगा?

नाट मन्दिर में नवरात्रि का उत्सव मंच सजाया गया। सन्ध्या हो गई। आरति आरम्भ हुई। श्री गोपीदास बाबाजी घूम-घूम कर आरति कीर्तन करने लगे। ठाकुर-देवताओं के बड़े-बड़े चित्रपट द्वारा मंच सजाया गया। कितनी सुन्दर थी सजावट की परिपाटी! मैं श्रील बाबाजी महाशय के पीछे से सब कुछ देखता रहा और आत्मविस्मृत हो गया। इस प्रकार की आरति तो कभी नहीं देखी थी। इतनी सुन्दर ठाकुरों की सजावट भी कहीं नहीं देखी थी। मेरे निकट सब कुछ नूतन सब कुछ मधुर लग रहा था। आरति समाप्त हुई। नाट मंदिर

जनता से भर गया। श्री बाबाजी महाशय बोले—"आसन बिछाकर कीर्तन का बन्दोबस्त करो।" आदेश के साथ साथ काम शुरु हो गया। श्रील बाबाजी महाशय नाट मन्दिर के नीचे आकर खड़े हुये। कितने लोग आकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम करने लगे। वे श्रील बड़े बाबाजी महाशय एवं श्रील महन्त महाराज जी की समाधि पर दण्डवत कर बैठक खाने में दंडवत् करने गये। चारों दिशाएँ 'हरिबोल, हरिबोल, ध्वनि से मुखरित होने लगीं। श्रील बाबाजी महाशय के दाहिने ओर एक गलीचा बिछाया गया, उस पर श्रीधाम के श्रीगोस्वामी-वृन्द आकर बैठे।

सबको श्रील बाबाजी महाशय श्रद्धा पूर्वक प्रणाम करते हुए कीर्तन के लिये बैठे। हाथों में करताल, दोनों ओर दो मृदंग-बादक—श्री हरेकृष्ण दा एवं भगवान दा बैठे। श्री अद्वैत काका, चारुदा, युगल दा, बलाइदा इत्यादि बहुजन उनके दाहिने, वायें और पीछे बैठे। और बहुत सारे लोग उनको घेर कर कीर्तन करने बैठे।

मृदंग करताल लेकर सब निस्तब्ध होकर बैठे, अब श्रील बाबाजी महाशय—"श्री गुरुप्रेमानन्दे निताइ गौर हरिबोल"—बोलकर करताल बजाने लगे। श्रील बाबाजी महाशय कम्पित होने लगे। हस्तस्थित करताल थर-थर कांपने लगे। समस्त शरीर उनका कम्पित होने लगा, बार-बार स्मरण करते-करते वे विह्वल हो रहे थे। लग रहा था कि वे कितने व्याकुल हृदय से ठाकुर जी से श्रीगुरुदेव से प्रार्थना कर रहे हैं। इस प्रकार दण्डवत् करके फिर जैसे ही श्रीपाद बाबाजी महाशय--"श्रीगुरु

प्रेमानन्दे गौर हरि बोल" बोलकर "भज निताइ गौर" कहने लगे भाव से उनका कण्ठ रुद्ध हो गया, आकुल हृदय से वे क्रन्दन कर उठे।

मैं सोच रहा था, इतने व्याकुल होकर क्रन्दन करने का कारण क्या है। जब वे धीरे-धीरे अपने मन में बोल रहे थे— "जय राधारमण" तब मैं समझ रहा था वे अपने श्री गुरुदेव का स्मरण करके, विरह समुद्र में निमग्न हो रहे हैं। जिससे वे अपने को सम्भाल नहीं पा रहे हैं। शिशु सन्तान जैसे मां के लिए व्याकुल होकर क्रन्दन करता है उसी प्रकार वे क्रन्दन कर रहे थे। श्रीगुरु के प्रति इतनी प्रीति एवम् श्रीगुरु का स्मरण करके इस प्रकार व्याकुल हृदय से क्रन्दन करते मैंने किसी को नहीं देखा था। श्रीगुरु की बिरह वेदना इतनी मर्मस्पर्शी थी जो उन्हें इतना विकल कर रही थी। धीरे-धीरे उनका भाव शांत हुआ। फिर "भज निताइ गौर राधेश्याम" नाम ले कर कीर्तन आरम्भ किया। सारा नाट मन्दिर और उसका आस-पास असंख्य लोगों से भर गया। चारों ओर से नाम की ध्वनि मुखरित होने लगी।

उनके मुख से नाम की लहर ऐसे चलने लगी कि कई श्रीगोस्वामी सन्तान, कितने बाबाजी लोग तथा बाबू लोग अकस्मात् उठकर नृत्य करने लगे। कितना मधुर नृत्य था मैं समझा नहीं सकता। इस प्रकार 'भज निताइ गौर राधेश्याम जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम प्रायः डेढ़ घण्टे तक चला तत्पश्चात् श्रील बाबाजी महाराज ने 'जयरे जयरे गोरा श्रीशचीनन्दन' कीर्तन आरम्भ किया। अश्रु, कम्प, पुलक प्रभृति सात्विक भाव

उनके शरीर में आविर्भूत होने लगे। भाव को वे किस प्रकार धारण करते थे उसका वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ, अन्य कोई तो किंचित भाव मात्र से ही विह्वल हो जाता है। उसके कपड़े भी ठीक नहीं रहते। परन्तु उनका इतना भावमय शरीर, इस प्रकार अश्रु, कम्प पुलक लेकर भी अपने को सदा सतुलित बनाए रहता था, विह्वल नहीं होता था। उनकी तरह भाव सम्भालने वाला कोई नहीं देखा। इस प्रकार मैं मन में बहुत कुछ सोच रहा था और उनके श्री मुख मण्डल को देख रहा था। वे सर्वथा अश्रुप्लावित होकर कीर्तन कर रहे थे।

श्री अद्वैत काका जी गमछे से उनके नयन पोंछ रहे थे। हठात् उन्होंने कीर्तन में एक आँखर दिया "गमन नटन लीला, शचीमार नयन तारा, गमन नटन लीला" इत्यादि कितने सारे आँखर दिए, इस प्रकार उन्होंने गमन-नटन-लीला का अनेक बार गान किया। आगे "भाग्यवती सुरधुनी कूल, पदांकित भूमि रे" जैसे ही गाया वे व्याकुल हृदय से क्रन्दन करने लगे, कण्ठ स्वर रुद्ध हो गया, शरीर कम्पित होने लगा, मस्तक किस प्रकार घूर्णित होने लगा उसे समझाना असम्भव है। अजस्र अश्रु धाराएँ नाक और आंखों से निकलते हुए चारों दिशाओं को सिंचित करने लगीं और वहाँ बठे हुए लोगों के ऊपर गिरने लगीं।

किंचित स्थिर होकर बठे परन्तु उसी समय हृदय–विदारक क्रन्दन शुरु हुआ। मृदु-मृदु ओंठ काँप रहे थे, न जाने क्या बोल रहे थे और इस प्रकार कीर्तन में खूब मातन (मस्ती) चल रहा था। प्रायः एक घन्टे तक इस प्रकार मातन चला। मैंने देखा

सभी लोग क्रन्दन कर रहे हैं। मातन समाप्त हुआ, फिर श्रील बाबाजी महाशय ने कीर्तन आरम्भ किया। मंच के निकट रात के बारह बजे तक बैठकर कीर्तन हुआ। फिर उठकर खड़े होकर मधुर स्वर से नाम शुरु किया,—"भज निताइ गौर राधे श्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम।" और साथ-साथ असंख्य लोगों के मुख से यही मधुर नाम उच्चरित होने लगा। समस्त मन्दिर जैसे गम्भीर शब्द से गूंज उठा। ऐसी नाम की तरंग उठी कि उसे मैं लिखने में असमर्थ हूँ।

मंच को घेर-घेर कर नाम हो रहा था। साथ-साथ हम लोग भी घूम रहे थे। फिर आरम्भ हुआ मातन कीर्तन— "पागलेर प्राणाराम, निताइ गौर राधे श्याम।" श्रील बाबाजी महाशय ने उर्द्ध बाहु होकर जैसे ही नृत्य आरम्भ किया सब लोगों ने नाचना शुरु किया, मैं भी नाचते-नाचते आत्मविस्मृत हो गया और उसके पश्चात् मुझे कुछ स्मरण नहीं रहा। जब मेरी मूर्छा भंग हुई तब रात के दो बजे थे। श्रील बाबाजी महाशय पास बैठे थे। और मेरा मस्तक सखीमाँ की गोद में था। जब आंखें खोलकर यह देखा तो लज्जित होकर उठ बैठा। श्रील बाबाजी महाशय हँसकर बोले—"छटाके माताल ! निशि होलो भोर, डाकछे भ्रमर" कहते ही सब हँस पड़े, मैं भी हँस पड़ा। फिर मैंने सखीमाँ को दण्डवत् किया। सखीमाँ श्रील बाबाजी महाशय को देखती हुई बोली—"नव अनुराग है, इसीलिये ऐसा हो गया।"

यह कहकर चली गई। मैं श्रील बाबाजी महाशय के साथ उनकी कुटिया में गया। आश्रम के सभी लोगों ने प्रसाद पा

लिया था। सब अपने-अपने घर चले गये थे। विशाल आश्रम जनशून्य हो गया। मेघलाल दा ने श्री बाबाजी महाशय को प्रसाद पाने के लिये बिठाया। मुझे भी बुलाकर श्रील बाबाजी महाशय के पास बिठाकर बोले—तुम्हारे लिये इतनी रात हो गई, अब तक श्रील बाबाजी महाशय ने प्रसाद नहीं पाया। तुम केवल नाट मन्दिर में लोटपोट होकर रो रहे थे, मंच से गिर न जाओ इस लिये श्रील बाबाजी महाशय तुम्हें पकड़े हुए थे। तुम ऐसे विह्वल हो गए थे कि तुम्हारे कपड़े भी ठीक नहीं थे। श्रील बाबाजी महाशय तुम्हें 'छटाके माताल' कहते हैं, यह बिलकुल ठीक है। इतना विह्वल थोड़े ही होते हैं ?" मैं अपराधी जैसे सर झुकाये बैठा रहा और श्रील बाबाजी महाशय के प्रति देखने में भी मुझे भय होने लगा।

बहुत अन्याय हो गया, इस कारण पश्चात्ताप भी हो रहा था। भय भी हो रहा था। प्रसाद नहीं पा रहा था। तभी श्रील बाबाजी महाशय स्नेह पूर्वक बोले—"मयना यह दाल-पूरी प्रसाद लो।" मेरा सब दुख दूर हो गया, हँसकर श्रील बाबाजी महाशय के हाथ से प्रसाद लेकर खाने लगा। श्रील बाबाजी महाशय जल्दी से प्रसाद पाकर हाथ मुँह धोकर लेट गए। मुझे पास बुलाया, मैं भी उनके साथ सो गया।

प्रातः काल उठकर देखा साथ में श्रील बाबाजी महाशय नहीं हैं। सोचा मंगल आरति की घण्टी बज रही है—दर्शन करने गए होंगे—यह सोचकर फिर सो गया। कुछ देर के बाद श्रील बाबाजी महाशय ने आकर हाथ पकड़कर मुझे बिठा दिया और बोले,—"ब्रह्मचारी होकर इतना क्यों सोते हो ?"

परन्तु कौन किसकी सुने, नींद नहीं टूटी-जब मैं फिर लेट गया तब उन्होंने मुट्ठी से बाल पकड़ कर मुझे बिठा दिया। उठना पड़ा; हाथ, मुँह धोने को चला गया। एक व्यक्ति बोल पड़ा— "श्रील बाबाजी महाशय उसे इतना लाड़ करते हैं, उसका भविष्य अवश्य ही अन्धकारमय हो जाएगा।

श्रील बाबाजी महाशय यह सुनकर गम्भीर होकर बोले— "तो तुम्हें क्या, तुम्हारा तो कोई नुकसान नहीं किया। यदि कोई पहली बार आये घर छोड़ कर और तुम उसके पीछे पड़ जाओ तो क्या यह उचित है? उसे निश्चय ही मेरा स्नेह मिलेगा। वह भद्र ब्राह्मण का लड़का है, बचपन से ही घर छोड़कर निकला है, स्नेह प्रीति न करने से उसका मंगल किस प्रकार होगा? तुम मेरी भी आलोचना कर रहे हो,ऐसा करना ठीक नहीं।" वे लोग सब चुप हो गये। मैं सुनकर वहाँ से चला गया। मन में सोचने लगा वह मुझ से ईर्ष्या कर रहा है कारण श्रील बाबाजी महाशय मुझसे अत्यधिक स्नेह करते हैं। किन्तु वे तो सभी से प्रीति करते हैं।

श्री बाबाजी महाशय तो प्रेम की मूर्ति ही हैं। यह जो हजार-हजार लोग उनके निकट भागे आते हैं, कितने सम्भ्रान्त कुल की महिलायें भी आई हैं, एकमात्र उनके प्रेम आकर्षण से ही तो! फिर मुझे क्यों उसने इस प्रकार कहा समझ में नहीं आता। सब साधु लोग तिलक, माला धारण करते हैं, मैं तिलक नहीं लगाता, माला कण्ठी नहीं धारण करता, क्या यही कारण है, कितने लोग उनके निकट आते हैं। सब कोई तो तिलक माला नहीं धारण करते, तथापि वे लोग श्रील

बाबाजी महाशय की प्रीति के पात्र हैं। क्या मैं सबसे छोटा हूँ क्या इसी कारण मुझे ऐसा व्यवहार मिल रहा है ! इतने में श्रीफणिकाका जानकी को साथ लेकर श्रील बाबाजी के निकट आए। मुझे देखते ही बोले—"क्या ब्रह्मचारी, शील बाबू के घर की बातें याद हैं ? तुम्हें घर लौट जाने को कहा था नहीं गए, अच्छा ही हुआ। यह देखो तुम्हारे जैसा और एक छोटा लड़का—जानकी सेवाश्रम में रहता है और दादा के पास भी आता है। अधिकतर मेरे पास ही रहता है।

इस प्रकार फणि काका जब मेरे संग बातें कर रहे थे, उसी समय बसन्त काका (जो पहले पुलिस इन्सपेक्टर थे और अब श्रील बड़े बाबाजी महाशय का चरण आश्रय पाकर बाबाजी बन चुके हैं) आये और मुझे स्नेह करने लगे। मेरे बालों पर हाथ फेर कर बोले—बड़े सुन्दर बाल हैं ! इन्हें कटवाना ही ठीक रहेगा। बालों से बड़ा आकर्षण होता है। नारियाँ भी आकृष्ट हो जाती हैं।" मैं यह सुनकर आश्चर्य से सोच-विचार करने लगा—साधु लोग तो बाल रखते हैं। इसमें दोष क्या है, मैं तो लड़कियों से नहीं मिलता क्यों कि माँ ने कहा था–प्रत्येक नारी मातृभाव के कारण स्नेह-यत्न करती है।

उन्होंने तो कहा था कि प्रत्येक नारी माँ का रूप है, तो ये लोग ऐसा क्यों कह रहे हैं ? उसी समय बाबाजी महाशय के एक शिष्य बोल उठे—"कल श्रील बाबाजी महाशय से तुम्हें मन्त्र दिलवाकर बाल कटवाऊँगा वे तुम्हें बाबाजी बनाकर छोड़ेंगे।" मैं सुनते ही कुछ उत्तेजित होकर बोला "मैं किसी को 'गुरु' नहीं बनाऊँगा, मन्त्र भी नहीं लूंगा इसी तरह श्रील

बाबाजी महाशय के पास रहूँगा, आप को क्या ?" वे बोले, गले में तुलसी कंठी डाले बिना तुम हमारे दल में नहीं रह सकते । मैंने कहा, "मैं दल-वल कुछ नहीं समझता, मुझे श्रील बाबाजी महाशय की प्रीति, स्नेह और उनका प्रेम मिला है । मैं उनके पास रहूँगा । देखूँ आप मेरा क्या कर सकते हैं ।"

यह कहकर मैं चुप हो गया । उनके ऐसे व्यवहार से मेरी आंखों से आँसू टपकने लगे । इतने में श्रील बाबाजी महाशय को आते देख वे सब घबरा गये । श्रील बाबाजी महाशय मुझे देखकर आश्चर्य-चकित होकर बोले—"इस प्रकार क्यों रो रहे हो ?" मैं ने आँसू पोंछते हुये सारी बात बताई । मेरी सारी बातें सुनकर श्री बाबाजी महाशय कुछ कुपित होकर उनसे बोले—"तुम बड़े साधु बने हो । तिलक माला पहन कर सिद्ध-पुरुष बन गये । ब्राह्मण का छोटा सा सरल, निष्कपट बालक मेरे पास आया है । नया है इसीलिए भी नहीं समझता । इसे माला पहनो, तिलक लगाओ कहकर क्यों तंग कर रहे हो ? अब तुम ही गुरु बन गये हो ! आगे से उसके साथ ऐसे करोगे तो बताऊंगा" मैं उनके ये शब्द सुनकर चुप हो गया और सोचने लगा श्रीबाबाजी महाशय जब मेरी तरफ हैं तब मुझे किस बात की चिन्ता । श्रील बाबाजी महाशय बोले—"उनके साथ नहीं रहना, मेरे साथ ही रहना ।"

इस प्रकार वह व्यक्ति अपमानित होकर वहाँ से चला गया । मैं मन में सोचने लगा—उन्होंने मेरे साथ इस प्रकार व्यवहार किया, जाकर उन्हें भक्ति से दण्डवत् करूँ तो वे प्रसन्न हो जायेंगे । यह सोचकर मैंने उन्हें दण्डवत् किया, वे मुझे

आलिंगन में लेकर बोले,—"भाई सच कहता हूँ मैं ने तुमसे ईर्षा नहीं की। तुम घर छोड़कर आए हो, मैंने भी संसार त्यागकर श्री बाबाजी महाशय से मन्त्र लिया है। तुम भी मंत्र लेकर हम लोगों जैसे बनो।" परन्तु मैंने फिर वही कहा—"मैं ब्राह्मण सन्तान, मन्त्र नहीं लूंगा, गुरु आप बुलाकर मुझे मन्त्र देंगे।"

इस प्रकार कहकर श्रील बाबाजी महाशय के पास लौट आया। श्रील बाबाजी महाशय तब श्रीधाम के ठाकुरों का दर्शन करने को जा रहे थे, असंख्य लोग उनके साथ थे। मैं सब को पीछे छोड़कर श्रील बाबाजी महाशय के साथ आकर खड़ा हो गया। श्रील बाबाजी महाशय हँसकर बोले—"आए हो मयना (मैना) पाखी।" मैं हँस पड़ा। उनके सङ्ग पूर्ववत् ठाकुर दर्शन तथा दण्डवत् करके हम लोग आज कुछ जल्दी लौट आए। भोर से ही श्रील बाबाजी महाशय ने अपने संगी-साथियों को लेकर 'नाम' आरम्भ किया, मैं उस समय सो रहा था। खूब कीर्तन आरम्भ हो गया था।

सब लोग मंच को घेर-कर मधुर नाम कर रहे थे। श्रील बाबाजी महाशय ने पहले दण्डवत करके दो-चार बार मंच-परिक्रमा की और पुनः दण्डवत् की। तत्पश्चात श्री राधारमण की समाधि पर दण्डवत् करके स्नान के निमित्त तेल लगाने बैठे। मैं उनके निकट बैठ गया। कितने भक्त उन्हें घेर कर बैठे। मेघलाल दादा, उपेन दादा (जो बाद में निताइ रमण दास बाबाजी बने) श्रील बाबाजी महाशय को तेल लगाने लगे। कितना हास-परिहास करते हुये उन्होंने एक वाणी

उपदेश दिया। यह वाणी मैंने बहुत बार सुनी है—"छिलका नहीं देखना, ठगे जाओगे। भीतर देखने की चेष्टा करना। इस बार प्रभु का प्रच्छन्न अवतार है। उसकी शक्ति प्रच्छन्न रूप से ही अधिक खेलेगी। वेश-भूषा में बहुत अभिमान होता है।" यही उपदेश सर्वप्रथम मैंने उनके निकट आते ही सुना था और लगभग ५० वर्ष में अनेक बार सुना है। कितना अमूल्य उपदेश है, मैंने इसे छपवाकर रखा है।

इसी समय चारुदा, बलाइदा, युगलदा, माखनदा सब श्री बाबाजी महाशय के निकट आये। श्रील बाबाजी महाशय ने उनलोगों को देखकर आनन्द पूर्वक बैठने को कहा तथा हास्य-परिहास की अनेक बातें होने लगीं। यह प्रीति व्यवहार देखकर मैं मुग्ध हो गया। चारुदा, बलाइदा, युगलदा, माखन-दा श्रील बाबाजी महाशय के शरीर में तेल लगाने लगे। चारुदा के साथ उनकी बहुत सख्य प्रीति थी। चारुदा हँसकर बोले—"यह तेल मैं सबसे उत्तम स्थान पर लगाउंगा।" सब सुनकर हँस पड़े। श्रील बाबाजी महाशय भी मुस्कुराए।

मुझे कुछ समझ में नहीं आया। श्रील बाबाजी महाशय को देखते हुए पूछा—"उत्तम स्थान तो मस्तक है, तो सब क्यों हँस रहे हैं?" मेरी बात सुनकर श्रील बाबाजी महाशय मुझे देखते हुये बोले—"मस्तक ही मनुष्य का उत्तम स्थान है। यह मस्तक श्रीगुरु एवं श्रीभगवान के चरणों पर प्रणाम करता है। इस कारण यह सर्वोत्तम है—"समझे मैना?" मैं ने उत्तर दिया,—"हाँ जी।" इसके बाद मैं श्रील बाबाजी महाशय की पीठ पर तेल लगाने लगा। उन्हें तेल लगाने का यह मेरा

प्रथम सौभाग्य था। पीठ पर तेल लगाने के बाद चरणों पर लगाया। श्रील बाबाजी महाशय हँस कर बोले,—"ओहो। ब्राह्मण ने आकर पैरों पर तेल लगा दिया।" मैं हँसते हुये तेल लगाने लगा।

श्रील बाबाजी महाशय के सङ्ग मैं और अनेक भक्त गंगा जी पर स्नान करने गये। श्रीवास आँगन घाट को अनेक बाबू और महिलायें स्नान के लिए जा रहे थे। अकस्मात् श्रील बाबाजी महाशय को देखकर सब आनन्द से अधीर होकर कहने लगे,—"वह देखो बाबाजी महाशय जा रहे हैं।" कल-कत्ते से अनेक बाबू और महिला-भक्त भी आए। आश्रम तब जगमगा रहा था। आज हम सब कुछ जल्दी स्नान कर के लौट आए, नाम—यज्ञ शुरु हो गया था।

श्रील बाबाजी महाशय के साथ मैं, प्रियनाथ काका, रमणदा, चारुदा, माखनदा, बलाइदा, उनकी पत्नी, उनका छोटा लड़का—अरुण और पुत्री लाली सब उनके सङ्ग जा रहे थे। वे बहुत चंचल गति से चले जा रहे थे। कई बार मेरी ओर देखकर हँसते और फिर चलते। खंजन पक्षी की तरह कितनी मधुर थी उनकी गति—मानो नाचते हुये जा रहे हों। हम लोग उनके सङ्ग चलते-चलते थक गए। वे हँसते-हँसते 'नाम' के स्थान पर चले आए। वहाँ दण्डवत् करके अपनी कुटिया में जा बैठे! चारुदा, बलाइदा, आदि सभी उनके निकट जाकर बैठ गये।

उन्होंने आन्हिक करने का झोला माँगा। सेवक झोला लाया। श्रील बाबाजी महाशय एक-एक कर प्रसादी वस्त्र,

तिलक, चरण-तुलसी एवं चरणामृत सजाकर रखने लगे। वे तिलक धारण करने लगे। सब वहाँ से चले गए। मैं भी वहाँ से उठकर उनके कमरे के आगे बरामदे के एक तरफ बैठकर गायत्री जप करने लगा। चांगड़ी पोता के बलाइदा मेरे पास ही सन्ध्या करने को बैठे। गले में तुलसी माला, सुन्दर तिलक धारण कर मुझ से बोलने लगे,—"तुम भी हमारे जैसे तुलसी कंठी पहनो, तिलक धारण करो।" मैं बोला "नहीं, यदि श्रील बाबाजी महाशय कृपा पूर्वक तिलक माला देंगे तो पहनूंगा। मैं और किसी की बात नहीं सुनूँगा।" श्रील बाबाजी महाशय मुझे बुलाकर बोले—मयना ! तिलक लगाओगे ?" मैं बोला, "आप कहेंगे तो निश्चय ही लगाऊँगा।" यह सुनकर उन्होंने कहा,—"तब आओ मेरे पास।"

उन्होंने अपने हाथों से मेरे द्वादश अङ्गों पर तिलक रचना की। "गले में तो कण्ठी नहीं है" कहते हुये अपनी झोली से एक कण्ठी लेकर मेरे गलेमें तीन लड़ करके पहना दिया। मेरे गले में पहले से एक तुलसी की माला लटकाई हुई थी। मैं बोला,—"मैं यह माला नहीं उतारुँगा। उन्होंने कहा, "ठीक है, नहीं उतारना।"

मैं बाहर आकर बलाइदा के पास बैठा और कहा, "जरा अपना आईना दोजिए, देखूं तो कैसा लग रहा हूँ।" अपने को तिलक से सजा हुआ देखकर मैं बहुत सुखी हो गया। श्रील बाबाजी महाशय ने पहना दिया इस आनन्द से फूला न समा रहा था।

खूब अच्छी तरह अपने बाल बनाए, श्रील बाबाजी महाशय

ने मुझे एक चादर दी थी, उसे उनकी तरह पहन कर ठाकुर जी को दण्डवत् की। फिर सखीमाँ को दण्डवत् की। सखीमाँ हँसकर बोली—"वाह! बहुत अच्छे लग रहे हो।" फिर गोवर्धन काका को दण्डवत् की। उन्होंने प्रीति पूर्वक पीठ पर हाथ फेरा। कानाइ दा हँस कर बोले, "वाह। अब तो बाबाजी बन गए।" मैं बोला, "बाबाजी क्यों बनूँगा मैं तो ब्राह्मण का लड़का हूँ।" कानाइ दा ने हँस कर कहा—"बहुत ब्राह्मण देखे हैं हमने।" इस प्रकार हास-परिहास होने लगा। ठाकुर जी की आरती हुई। मदन दा भगवान दा मुझे पंगत में प्रसाद पाने के लिये ले गए। गोवर्धन काका ने मुझे प्रीति पूर्वक बुलाया—मैं उनके पास जाकर बैठा। सखीमाँ अपने हाथों से प्रसाद देने लगीं। मेरी ओर देखती हुई बोली—बाबाजी के सङ्ग बैठकर ब्राह्मण की जाति नष्ट हो गई। मैं हँस पड़ा।

प्रसाद पाकर, हाथ मुँह धोकर मैं श्रील बाबाजी महाशय के बराम्दे में आकर बैठा। तब तक श्रील बाबाजी महाशय की संध्या पूरी नहीं हुई थी। दरवाजा बन्द था। बीच-बीच में वे हुंकार कर रहे थे स्मरण करते-करते। दो बजे संध्या समाप्त हुई। मैं तब तक श्रील बाबाजी महाशय के पास नहीं गया था। मुझे किसी ने कहा था "श्रील बाबाजी महाशय के पास प्रसाद पाने नहीं जाना। यह बिलकुल ठीक नहीं है। यह सब समझा-बुझाकर वह मुझे पंगत पर ले गया था। इसी कारण मैं ने वहाँ प्रसाद पा लिया और उनके निकट नहीं गया। श्रील बाबाजी महाशय प्रसाद पाने को बैठते ही मेरे बारे में पूछने लगे। "ब्रह्मचारी कहाँ है, बुलाओ उसे।" मेघलाल दा ने मुझ से कहा, "श्रील बाबाजी महाशय तुम्हें

प्रसाद पाने के लिए बुला रहे हैं।" दो-तीन जने बोल उठे—"उसने पंगत में प्रसाद पा लिया है। यह सुनकर श्रील बाबाजी महाशय ने कहा, "कोई बात नहीं, उसे बुलाओ मेरे पास।"

मैं हँसता हुआ श्रील बाबाजी महाशय के पास पहुँचा। उन्होंने मुझ से पूछा, "प्रसाद पाओगे ?" "मैं बाबाजी लोगों के संग पंगत में प्रसाद पा आया हूँ" मैं ने उत्तर दिया। सुनते ही उन्होंने पूछा "क्या वह तुम्हें नाना बातें समझाकर ले गया था ?" मैंने उत्तर दिया, "हाँ, मुझे अनेक बातें समझा-बुझाकर ले गया था।" उन्होंने पुनः पूछा, "नाना बातें समझाई हैं ?" मैं चुप रहा, सोचा उसने जो कुछ समझाया था इन्हें सब पता चल गया है। बातों से तो यही लग रहा है। श्रील बाबाजी महाशय ज्योतिषी तो नहीं हैं परन्तु फिर भी उन्हें सब पता चल जाता है।

तब तो उनसे कोई बात भी नहीं छुपाउंगा। मैं ने सब बातें बता दीं। वे सुनकर कुछ गम्भीर होकर बोले—मैं सब कुछ समझ गया। तुम मेरे पास ही दोपहर को प्रसाद पाना, रात को चारु, बलाइ के साथ वहाँ पर प्रसाद पाना, मैं "जी हाँ" कहकर उन्हीं के पास बैठ गया। मेघलाल दा ने मुझे पंखा पकड़ाया, मैं श्रील बाबाजी महाशय को पंखा करने लगा। वे प्रसाद पाते अचानक बोले, यह लो प्रसाद। मैं ने हाथ आगे किया। चाँदी की एक छोटी सी थाली में सन्देश था। उन्होंने मेरे हाथ में थाली पकड़ा दी। ३।४ सन्देश थे। एक में से थोड़ा सा ही उन्होंने खाया था। मैं आनन्द से पाने लगा। खिड़की से एक व्यक्ति मुझे देखकर हँसने लगा और कहा, "बड़ा मजा।"

इस प्रकार उनका प्रसाद पाना समाप्त हो गया। श्रील बाबाजी महाशय पलंग पर विश्राम करने के लिए लेट गये। मैं भी उनके साथ लेट गया। एक व्यक्ति मुझे घूर-घूर कर देखने लगा, मैंने आँखें बन्द कर लीं। श्रील बाबाजी महाशय ४ बजे उठे और शौचादि से निवृत्त होकर माला जपने लगे। वे कुर्सी पर आकर बैठे। मैं भी उनके पास एक स्टूल पर बैठा। अनेक भक्त आकर श्रील बाबाजी-महाशय को दण्डवत् करने लगे। असंख्य रुपए-नोट चरणों के आगे गिरने लगे। परन्तु उसके प्रति उनकी दृष्टि ही नहीं थी। किन्तु अगर कोई "उत्सव के लिए भिक्षा" यह कहता तो वे आग्रह पूर्वक ले रहे थे।

विजय काका—श्रील बाबाजी महाशय के गुरुभाई हैं। वे ब्राह्मण हैं। वे प्रायः मुझे देखते हैं। एकदिन मुझे बुला ले गए। मैं ने उन्हें दण्डवत् किया। वे प्रसन्न होकर मुझे अपनी कुटिया में ले गए और राजभोग प्रसाद दिया। वे प्रसाद की महिमा का खूब वर्णन करने लगे—"कुत्ते का जूठा होने पर भी महाप्रसाद कभी नष्ट नहीं होता, किन्तु देखो आजकल प्रसाद मिट्टी पर गिर जाए तो कोई नहीं खाता, मेरे श्री गुरुदेव कुत्ते का भी उच्छिष्ट खाने में दुविधा नहीं करते थे। उन्होंने कुत्तों का महोत्सव किया था, उनके मुख से प्रसाद लेकर खाया था।"

मैंने पूछा—'कुत्तों का महोत्सव' क्या ? उन्होंने बताया, सुनो, "भक्तिदासी" नाम की एक कुतिया थी। वह आश्रम में ही रहती थी। प्रसाद के बिना वह कुछ नहीं खाती थी। एक-दिन कीर्तन के बीच उसका देहान्त हो गया। श्री गुरुदेव भक्तों

सहित उसे कन्धे पर चढ़ाके शमशान भूमि ले गए और उसको समाधि दी। दूसरे दिन उसी का महोत्सव होने का निमन्त्रण नवद्वीप वासी ब्राह्मण-वैष्णवों को दिया गया। निमन्त्रण पर कोई नहीं आया। तब उन्होंने अपने सुयोग्य शिष्य श्री नवद्वीपदास को आदेश दिया, "नवद्वीपवासी समस्त कुत्तों को निमन्त्रण दे आओ।"

उसी समय वे आदेश का पालन करने को चल पड़े। धाम-वासी किसी भी कुत्ते को देखते ही हाथ जोड़कर बोलते "भक्ति दासी का देहान्त हो गया है कल उनका उत्सव है। आप लोगों का निमन्त्रण है, आप आना।" दूसरे दिन चार-पाँच सौ कुत्ते आकर प्रसाद पाने बैठे, किसी ने भी लड़ाई नहीं की। कुत्तों ने अपना स्वभाव भी त्याग दिया। नदीया वासी भागे आए इस अभिनव दृश्य को देखने। ऐसी आश्चर्य पूर्ण तथा अभूतपूर्व घटना को देखकर सब लोग मेरे श्रीगुरुदेव की महिमा को समझे। मेरे श्रीगुरुदेव सब को ठीक कर देते हैं। कलि के दाँत तोड़ देते हैं वे। तुम ब्राह्मण हो, मेरे पास आते रहना।" मैंने सोचा कि वे भी ब्राह्मण हैं शायद इसी कारण ब्राह्मणों से स्नेह करते हैं।

उन्होंने कहा "मेरे श्रीगुरुदेव की जीवनी पढ़ोगे तो तुम्हें सब समझ में आ जाएगा। मैंने "हाँ जी" कहा। मैं श्रील बाबाजी महाशय के पास लौट आया। इस आश्रम में मैं नूतन आगन्तुक था। श्रील बाबाजी महाशय मुझे स्नेह प्रीति करते थे इसी कारण सभी मुझे स्नेह करने लगे। वहाँ पर उर्मिला मां को देखा। मुझ ब्राह्मण को देखकर खूब श्रद्धा भक्ति से बोली—

हमारे वहाँ संध्या के बाद एकबार तुम्हें आना होगा। थोड़ी सी मिठाई रक्खी है, बेटा तुम पाकर आना। श्रील बाबाजी महाशय तुम्हें स्नेह करते हैं इसीलिए तुम्हें आने को कह रही हूँ।" मैंने कहा, "अच्छा माँ आऊँगा।" संध्या के पश्चात् मैं रमणदा के साथ उनके घर गया। सन्देश, राजभोग प्रसाद पाकर आया। मैंने उन्हें माँ सम्बोधन किया था।

श्रील बाबाजी महाशय ने पूछा—"कहाँ गए थे ?" मैं ने बताया उर्मिला माँ प्रसाद पाने को बुला गई थीं। मिठाई प्रसाद पाकर आया हूँ।" उन्होंने पूछा, "कौन-कौन गए थे ?" "रमण दा और मैं" मैं ने उत्तर दिया। श्रील बाबाजी महाशय बोले, "मेरे कहे बिना कभी किसी के घर प्रसाद पाने नहीं जाना। तुम्हें प्रीति पूर्वक सभी बुलाएंगे पर तुम नहीं जाना।" मैं बोला, "नहीं अब कभी नहीं जाऊँगा।" वे कहने लगे—"घर छोड़कर, माँ, भाई बहन को छोड़कर फिर किसी को 'माँ' क्यों बना रहे हो ?" मैंने सरलता से उत्तर दिया "नहीं माँ नहीं बनाया, उस महिला ने मुझे बुलाया था, तभी उन्हें 'माँ' कहकर सम्बोधित किया था।" उन्होंने कहा, "यद्यपि प्रसाद है तथापि मेरे साथ जाकर ही प्रसाद पाना।" हमारी भलाई के लिए मैंने उन्हें सदैव व्याकुल होते हुए देखा। उनकी समस्त बातों में एक मंगल उद्देश्य दिखाई पड़ता था।

इसी प्रकार परमानन्द से मेरे दिन बीत रहे थे। नौ दिन, नौ रात अखण्ड कीर्तन चला। फिर एकदिन कीर्तन में नाचते-नाचते मेरी वही अवस्था हो गई। लोटपोट होने लगा, रोने लगा। श्रील बाबाजी महाशय मुझे पकड़े रहे। संध्या से

पूर्व श्रील बाबाजी महाशय के सङ्ग कुछ दिन कई भक्तों के घर गया था—उनके साथ प्रसाद भी पाया था। तभी बहुत से लोगों के साथ परिचय हुआ था—हरिमती दीदी, उर्मिला दीदी, मुंगेर की दीदी, चारुदा, बलाइ दा, दिदिमणि आदि। श्रील बाबाजी महाशय को मुझपर स्नेह करते देखकर हरिमती दीदी भी मुझसे खूब स्नेह पूर्वक बोली "अब जब श्रील बाबाजी महाशय के साथ कलकत्ता जाओगे तब हमारे घर अवश्य जाना।"

उनकी अपूर्व गुरुनिष्ठा, गुरु सेवा देखकर मुझे बहुत आनन्द आया। वे रोज अपने हाथों से फल और मिठाईयों का भोग लगाकर लाती थी। श्रीपाद के संध्या करने से पूर्व उनके लिए नित्य फल मिठाइयों का सम्भार आया करता था। वे स्वयम् किंचित मात्र ग्रहण करके सब वैष्णवों को दे देते थे। किसी भी वस्तु पर उनका किंचित मात्र लोभ या आकर्षण नहीं देखा! उनके लिए आकर्षण था तो केवल ठाकुर की बातों में, केवल प्रेम व्यवहार में। जो भी आता उसी से प्रीति करते। उनके लिए अपना पराया कोई भी नहीं था। मानो सभी उनके निज जन थे।

इस समय मैंने देखा एक वृद्धा माँ वहाँ आई। वे पूर्वी बंगाल (बंगला देश) की महिला लग रहीं थीं। उन्हें देखते ही सब लोग भूमिष्ठ होकर भक्ति पूर्वक प्रणाम दण्डवत् करने लगे। मैं आश्चर्य-चकित होकर सोचने लगा यह महिला निश्चय ही कोई बड़ी सिद्धा हैं तभी सब लोगों के मन में इनके लिए इतना भक्तिभाव है। उनके गले में एक सुन्दर रुद्राक्ष की

माला थी। साथ ही बलाइदा खड़े थे—उनसे मैंने पूछा "यह कौन हैं ?" सुना श्रील बाबाजी महाशय की गर्भधारिणी माँ हैं। यह सुनते ही मैं ने दौड़कर उनके चरणों पर मस्तक रखकर दण्डवत् किया। वे मेरे माथेपर हाथ रखकर स्नेह पूवक बोलीं—"राधिका के शिष्य हो, ब्राह्मण हो ? "हाँ जी, पर शिष्य नहीं हूँ।" मैंने उत्तर दिया। "राधिका कहाँ है" यह कहती हुई श्रील बाबाजी महाशयके कमरे में गईं। उन्हें देखते ही श्रीपाद ने उनके श्रीचरणों पर मस्तक रखकर दण्डवत् किया,माँ ने मस्तक पर अपना चुम्बन देकर आशीष दिया। माँ सन्तान पर अपना थूक देती है उसके कल्याण के लिए। मैंने अपनी माँ को भी ऐसे करते देखा था। इसी कारण मैं हँसने लगा।

श्रील बाबाजी महाशय उठकर खड़े हुए। माँ हँसती हुई बोली,—"राधिका ! मैं मटर की दाल चढ़ाकर आई हूँ। आज दोपहर को वहीं पर भोजन करना, गोवर्धन और इस लड़के को साथ लेकर आना।" बाबाजी महाशय ने हँसकर उत्तर दिया "अच्छा आऊंगा।" उनकी माँ चली गईं। पूर्वी बंगाल में बंगला भाषा कुछ और ही ढंग से बोली जाती है। मुझे इस पर हँसते देखकर स्वयम् हँसते हुये बोले,—"मैं फरीदपुर' का बंगाली, तुम भी 'यशोहर' के हो; और हमारे श्रीगुरुदेव भी 'नाड़ाईल' सबडिविजन-'महिष-खोला' के रहने वाले थे। सब बंगाली हैं—नवद्वीप में अधिकतर बंगाली ही हैं।" इस प्रकार हास-परिहास होने लगा।

आज श्रील बाबाजी कुछ जल्दी ही स्नान, पूजा समाप्त करके गोवर्धन काका और मुझे लेकर प्रसाद पाने को गए। गेट

के पास श्रीफणिदास बाबाजी मिले, उन्हें भी साथ बुला लिया। पहुँचकर देखा उनकी माँ दरवाजे पर खड़ी हम लोगों की प्रतीक्षा कर रहीं हैं। हमें देखते ही स्नेह से हँसकर बोलीं "आ गए, चलो भोग लग चुका है। देर कैसे हो गई?" मैंने भीतर जाते ही देखा एक गृहस्थ वैष्णव एवं उनकी पत्नी खड़े हैं। उनके द्वादश अङ्गों पर उज्ज्वल तिलक विराजमान है। उन्होंने श्रील बाबाजी महाशय को दण्डवत् किया और आसन पर बिठाकर पंखा करने लगे। मैंने श्रीगोवर्धन काका से पूछा, "यह कौन हैं?"

उन्होंने बताया, "इनका नाम पाँचू बाबू है, कलकत्ते के एक धनवान व्यक्ति हैं। इन लोगों के मन में अत्यधिक गुरु-भक्ति है। यह मकान इन्हीं का है। यहाँ पर सपत्नीक आए हुए हैं। श्रील बाबाजी महाशय की माताजी को यहीं पर रखकर उनकी सेवा करते हैं। माँ तो यहीं रहती हैं। पाँचू बाबू सपत्नीक उत्सव के कारण आए हैं। श्रीगुरु के प्रति इनका बहुत प्रेम है। आजकल श्रीपाद कलकत्ते में इन्हीं के घर रहते हैं। इनकी श्रीगुरु-सेवा की कोई तुलना नहीं है। श्रीगुरु एवं उनके पारिषदों की सेवा ही इनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य है।"

यह सब सुनकर मेरे मन में पाँचूबाबू को प्रणाम करने की इच्छा जगी। पर सोचा मेरे गले में यज्ञोपवीत है, मैं ब्राह्मण हूँ, दण्डवत क्यों करूँ? वास्तव में गले में यज्ञोपवीत रहने से ब्राह्मण अभिमान पूर्ण रहता है—छूटता ही नहीं जैसे वह हमारा साथी हो। कितना सुना है, पढ़ा है कि अभिमान त्याग न होने से सब व्यर्थ है। अभिमान का कितना दुर्जय प्रभाव

है ! श्रील बाबाजी महाशय जैसे निरभिमान महान भक्त के पास हूँ तथापि अभिमान जाता ही नहीं। यही तब सोच रहा था कि श्रीफणिदास बाबाजी बोल उठे, "आओ दादा प्रसाद पाने चलें।" हम चारों साथ बैठकर प्रसाद पाने लगे। श्रील बाबाजी महाशय की माँ हमें प्रसाद परोसने लगीं। एक सुन्दर पत्थर के थाल और कटोरे में राधिका को प्रसाद देकर बोलीं– "खाओ, यह शुकता, मैंने बनाया है। तुम्हें शुकता बहुत अच्छा लगता है न, यह पहले खाओ।"

हम सब को भी दिया। सभी ने प्रसाद पाना आरम्भ किया। मैंने दो-चार ग्रास शुकता प्रसाद पाया—कितना सुन्दर स्वाद था। कितने दिनों के बाद ऐसा शुकता प्रसाद पाया। मुझे अपनी माँ को याद आई। वे भी ऐसा शुकता बनाया करती थी। उनकी याद में मेरी आँखों में आँसू आ गए, मन व्याकुल हो उठा। आँखों से आँसू टपकने लगे। श्रील बाबाजी महाशय सब समझ गए। बोले, "माँ को दुःख देकर, उनकी सेवा से वंचित होने पर किसी का जीवन सुखमय नहीं हो सकता, इस संसार में माँ के स्नेह से ही मनुष्य पलता है।

मैं घर संसार त्याग कर बाबाजी बना तथापि माँ की सेवा नहीं छोड़ी। माँ को यहाँ रखकर सेवा करता हूँ। जब तक तुम्हारा यह शरीर है साल में कम-से-कम एकबार माँ का दर्शन कर आना। तुम्हें देखते ही वे प्रसन्न हो जाएगी। श्रीमन् महाप्रभु जी संन्यास के बाद भी माँ की सात बार प्रदक्षिणा दण्डवत् करके उन्हींके आदेश अनुसार श्री नीलाचल में रहे थे। माँ का ऋण कोई नहीं चुका सकता।" मैंने उत्तर दिया,

"मैं ऐसा ही करूँगा, शीघ्र ही माँ से मिलने जाऊँगा।" माँ के स्मरण से मुझे व्याकुल देखकर वे पुनः कहने लगे, "दुनियां में माँ के अपार स्नेह को बहुत कम लोग ही समझते हैं।" मैंने उत्तर दिया, "मैं आपकी बात समझ गया, मैंने घरपर रहते समय एकदिन भी उनके आदेश का उल्लंघन नहीं किया। उन्हें छोड़कर मैं वैरागी बन जाऊँगा, यह बात मैं ने एकदिन मांसे कही थी—माँ ने 'हाँ' या 'ना' कुछ नहीं कहा था, केवल रोने लगी थी।"

मेरी माँ की बात सुनकर श्रील बाबाजी महाशय की माँ बोली, "कितनी तपस्या से राधिका को पाया था। पर वह भी मुझे छोड़कर चला गया। कितने प्रयत्न करने के बाद सबकी ममता छोड़कर यहाँ पर उसे मिली हूँ, अब उसे छोड़कर नहीं जाऊँगी। देखो यही शुकता उसे बना देती थी। शुकता के साथ कितना प्रसाद पाया करता था। अब नवद्वीप में उसे पाया है तभी उसे शुकता बनाकर दे सकी, यही उसे सबसे प्रिय था। श्रीपाद की माँ इस प्रकार पुत्र वात्सल्य की बातें मुझसे करने लगीं।

आज श्रील बाबाजी महाशय के अगणित भक्त हैं। कितने प्रकार का प्रसाद उनके पास आया करता है। असंख्य प्रसाद की थालियाँ भक्त लोग लाते हैं। श्रील बाबाजी महाशय की माताजी भी कभी-कभी प्रसाद लाती हैं। श्रील बाबाजी महाशय भी कभी-कभी उनके पास दो-चार भक्त सहित प्रसाद पाने जाते हैं। आश्रम में नवरात्रि उत्सव चल रहा है। अगणित भक्त आए हुये हैं। एकदिन श्रीपाद के सङ्ग कुछ भक्त

उनकी माताजी के पास प्रसाद पाने गए थे। उस समय देखा कि श्रील बाबाजी महाशय का अधरामृत पाने के लिए अनेक भक्त प्रतीक्षा कर रहे हैं। प्रसाद पाकर श्रीपाद ने मुझ से कहा, "ब्रह्मचारी, सबको थोड़ा-थोड़ा प्रसाद दे दो। ये लोग प्रसाद लेकर ही आश्रम में पंगत पर बैठेंगे। उनके आदेश के अनुसार मैं ने सारा प्रसाद एक साथ मिलाकर सब को थोड़ा-थोड़ा दे दिया। प्रसाद लेकर सब लोग आश्रम में चले गए। श्रील बाबाजी महाशय जैसे ही प्रसाद पाकर उठे, श्री पाँचुदा ने उनके हाथ में पान-प्रसाद लाकर दिया। श्रीपाद पान प्रसाद पाने लगे। कितनी सुन्दर सुगन्ध आ रही थी। मैं ब्रह्मचारी हूँ, पान नहीं खाता परन्तु पान के सुगन्ध से खाने की इच्छा हुई यदि श्रीपाद स्वयम् अपना पान प्रसाद दें तो खाऊंगा। मैं कभी किसी का जूठा नहीं खाता था किन्तु प्रथम दिन आते ही उनका प्रसाद-अधरामृत पाया था। वह अधरामृत कितने स्नेह-वात्सल्य से भरा हुआ था। यह मैं उसी दिन समझा था। इसी कारण मैंने उसे कभी भी अस्वीकार नहीं किया। श्रील बाबाजी महाशय के अतिरिक्त और किसी का जूठा मैं नहीं खाता था।

मैं मन में इस प्रकार सोच ही रहा था कि श्रीपाद मेरा दाहिना हाथ पकड़कर बोले, "लाओ हाथ।" मेरे हाथ आगे करते ही चबाया हुआ पान हाथ पर रख दिया। मैंने बिना दुविधा किए ही खा लिया। हँसते-हँसते बोले, "तुम्हारी ब्राह्मण की जाति बिलकुल नष्ट हो गयी।" मैंने हँसकर कहा, "उस दिन जब आपने अधरामृत दिया था जाति तो तभी नष्ट हो गयी थी। पर मैं और किसी का जूठा नहीं खाऊंगा। आश्रम

में जितने भी साधु हैं यह कभी मुझे जूठा न दिया करें। एकदिन एक व्यक्ति ने मुझे अपने पत्तल से प्रसाद उठाकर दिया था, मैं प्रसाद छोड़कर चला गया था।" वे पास ही खड़े थे, किंचित लज्जित हो गए। श्रील बाबाजी महाशय ने पूछा, "किसने दिया था ?" मैं ने उनका नाम नहीं बताया। कहीं श्रीपाद उनके प्रति अप्रसन्न न हो जांए इसलिये। मैं बोला, "हमारे देश में प्रायः नीच जाति के लोग ही माला तिलक पहन कर साधु बनते हैं।

मेरी यह बात सुनकर श्रीपाद बाबाजी महाशय उपदेश देने लगे, "जो लोग नीच जाति के होते हैं, वे सदा "हम नीच हैं" यह स्मरण रखते हैं। अतएव साधु होने पर भी उनमें अभिमान नहीं आता। और जो ब्राह्मण, उत्तम जाति के हैं वे जब अपनी उत्तम कुल और जाति को भूल जांएगे तभी तो उनमें भक्ति होगी। उच्च जाति-विद्या महत्व एवं रूप यौवन इन सबसे अहंकार बहुत बढ़ता है। यह सब न भूलने से भक्ति नहीं होती। जो व्यक्ति एकान्त भक्त है, वह नीच होने पर भी सभी का पूज्य है।

देखो युधिष्ठर का राजसूय यज्ञ हुआ। कितने ऋषि-मुनियों की सेवा हुई परन्तु यज्ञ पूरा नहीं हुआ। यज्ञ पूरा होने पर ही शंख-घण्टा स्वयम् बजना था। पर कहाँ ! शंख घण्टा तो नहीं बजा। युधिष्ठर ने व्याकुल होकर श्रीकृष्ण से पूछा, "सखा शंख-घण्टा तो नहीं बज रहा है। तब तो मेरा यज्ञ अपूर्ण रह गया। भगवान श्रीकृष्ण बोले, "तुम्हारे यज्ञ में एक महान दोष रह गया है। इसी कारण यज्ञ पूर्ण नहीं हुआ।" युधिष्ठिर ने

अनुनय किया, "बोलो, बोलो सखा, मेरी क्या त्रुटि रह गई ?" "श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया" तुमने परम भागवत किसी वैष्णव की सेवा नहीं की है। उन्हें अपने घर लाकर सेवा नहीं की यही एक दोष रह गया है। युधिष्ठिर ने पूछा, यहाँ पर लाखों लोगों की सेवा हुई क्या उनमें कोई भी वैष्णव नहीं था ?

श्रीकृष्ण बोले, वैष्णव इन यज्ञों में नहीं आते, वे सदैव गुप्त रहते हैं। उन्हें पहचानना बहुत कठिन होता है।" युधिष्ठिर ने व्याकुल होकर पूछा 'बताओ सखा, कहाँ है यह वैष्णव ?" श्रीकृष्ण बोले, "उस दूर के गांव में एक मोची रहता है। उस परम भागवत् का नाम बाल्मीकि रईदास है। उन्हें आदर पूर्वक घर में लाकर सेवा करो तभी तुम्हारा यज्ञ पूरा होगा।" यह सुनते ही युधिष्ठिर ने भीम एवं अर्जुन से कहा, "जाओ तुम दोनों उन्हें आदर पूर्वक घर पर ले आओ।" द्रोपदी को आदेश दिया, "उत्तम-उत्तम वस्तुएँ तैयार करके श्रीकृष्ण को निवेदन करने के पश्चात् उन्हें पाकशाला गृह में बिठाकर स्वयम् खिलाना।"

भीम, अर्जुन तुरन्त वाल्मीकि के पास पहुँच गए। उस समय वे जूता सिलाई कर रहे थे और कृष्ण नाम गुनगुना रहे थे। भीम अर्जुन को द्वार पर देखकर उन्हें परम आश्चर्य हुआ। भीम अर्जुन के दण्डवत् करने पर वे संकोच से बोल उठे, 'छि, छि आप लोग यह क्या कर रहे हैं ? मैं नीच जाति का मोची हूँ क्या आप यह नहीं जानते ?" वे दोनों बोले, हम आपको निमन्त्रण देने आए हैं। आज आप कृपा करके हमारे घर पर भोजन करेंगे।

परन्तु रइदास सम्मत नहीं हुए, कहने लगे, "यदि उच्छिष्ट साफ करने को कहते हैं तो मैं सभी ब्राह्मणों का उच्छिष्ट साफ करना स्वीकारता हूँ।" भीम व अर्जुन विनीत वचनों से बोले "नहीं, नहीं यह बात नहीं है। आप कृपा पूर्वक हमारे घर प्रसाद ग्रहण करने को चलें।" इस प्रकार अनेक प्रकार दीनता प्रकट करने के बाद रइदास जी उनके घर पधारे। घर पर उनके आगमन के निमित्त केले का पेड़, मंगल कलश, हल्दी-जल सभी मांगलिक वस्तुओं का आयोजन किया गया था। जैसे ही रुईदास जी भीम व अर्जुन के साथ राजमहल में पधारे चारों ओर से मंगल वाद्य बजने लगे हल्दी-जल सिंचन किया जाने लगा।

युधिष्ठिर ने ससम्मान उन्हें सिंहासन पर बिठाया। द्रौपदी ने चरण प्रक्षालन किये। तत्पश्चात् उन्हें पंखा करने लगीं। पाकशाला में आसन बिछाया गया। उत्तम-उत्तम प्रसाद उनके सम्मुख उपस्थित किया गया। उत्तम खीर सुन्दर-सुन्दर साग, शुकता आदि उनके सामने रखे गये। श्रीरुईदास जी श्री कृष्ण को स्मरण करके प्रसाद पाने बैठे। सर्व प्रथम खीर का प्रसाद पाने लगे। साग, शुकता आदि प्रसाद न पाकर 'तस्मै' पाने लगे। इससे द्रौपदी मन में सोचने लगीं नीच जाति-भोजन क्रम नहीं जानता इसी कारण पहले ही खीर पा रहा है। द्रौपदी ने वैष्णव को नीच जाति समझ कर उनकी अवज्ञा की और अपराधी बनी। और इसी कारण शंख घण्टा ध्वनि नहीं हुई। युधिष्ठिर व्याकुल तथा चिंतित हो उठे। वैष्णव-सेवा करने पर भी क्यों नहीं मेरा यज्ञ पूर्ण हुआ। श्रीकृष्ण से पूछने पर उन्होंने बताया, 'द्रौपदी ने मन ही मन इस वैष्णव की जाति का

विचार किया है और अपराध संचय हुआ है, पूछो द्रोपदी से। द्रोपदी को स्वीकार करना पड़ा, जो परम भागवत होते हैं वे जिह्वा की लालसा क्यों करेंगे ?

खीर प्रसाद ठाकुर जी का सबसे प्रिय है। इसी कारण इसका दूसरा नाम "तस्मै" अर्थात् "आप ही का" है। इस भोग का प्रभु ने कैसा आस्वादन किया है यह जानने के निमित्त साग, शुकता आदि प्रसाद न पाकर उन्होंने सर्व प्रथम खीर प्रसाद का आस्वादन किया था। श्रीकृष्ण से वैष्णव के इस व्यवहार का भेद जानकर द्रोपदी समझ गई कि उनकी वैष्णव के प्रति अवज्ञा के कारण ही यज्ञ पूरा नहीं हुआ, शंख-घण्टा नहीं बजा।

द्रोपदी श्रीरुइदास जी के निकट हाथ जोड़ कर क्षमा-प्रार्थना करने लगी अपने कृत अपराध के निमित्त। तब तो रुईदास जी के ग्रास-ग्रास पर शंख-घण्टा बजने लगा। वैष्णव की जाति को लेकर यदि कोई विचार करे, वैष्णव नीच जाति का होने पर यदि उसकी अवज्ञा करे तो उसका क्या परिणाम होता है तथा भक्ति बल से नीच जाति का व्यक्ति भी कैसे श्रेष्ठ आसन प्राप्त कर सकता है भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयम् इसका उदाहरण दिखाया। यह कथा महाभारत में लिखी है। षड्गुण सम्पन्न ब्राह्मण भी यदि श्री हरि भक्ति से विमुख है तो चण्डाल से भी अधिक नीच है। यदि कोई नीच चण्डाल कुल में जन्म लेकर श्री हरि भक्ति से बलवान होता है तो उसका आसन, उसकी महिमा ब्राह्मण से भी श्रेष्ठ होती है। शास्त्र में इसका उदाहरण दे रखा है। भक्त ही श्रेष्ठ है, भक्तिहीन का सर्वस्व

व्यर्थ है।" यह सब उपदेश देकर श्रीपाद ने वैष्णव की महिमा का वर्णन किया।

श्रीपाद के सङ्ग हम आश्रम पर लौट आए। आश्रम में सब प्रसाद पा रहे थे और निताइ-गौर गुण गान कर रहे थे। मैं वहीं पर खड़ा होकर सुनने लगा। एक बाबाजी ने मुझ से पूछा, "प्रसाद नहीं पाओगे ? उत्तर दिया "मैं ने पा लिया है।" सुनते ही एक व्यक्ति श्लेष पूर्वक बोल पड़े, "बड़े वृक्ष के साथ सम्बन्ध किया है तो चिन्ता क्या ?" "आप लोगों ने भी तो बड़े वृक्ष पर रस्सी बाँधी है, आपको भी किस बात की कमी है ?" यह कहकर हँसते-हँसते मैं वहाँ से चला आया।

आज नवरात्रि संकीर्तन यज्ञ का अन्तिम दिन है। अपूर्व नाम ध्वनि चहुंओर मुखरित हो रही है। उड़ीसा वासी अनेक भक्त आए हुए हैं। वे सब अत्यन्त मधुर स्वर में नाम कीर्तन कर रहे हैं। नाम करते २ ठाकुर जी के मंच के चारों ओर वे कितना मधुर नृत्य कर रहे हैं मैं उस कीर्तन को सुनकर मुग्ध हो गया। प्राण व मन नाच उठे। मैं अपने को रोक न सका और उनके साथ नृत्य करने लगा। छोटे स्मरण दा अत्यन्त सुन्दर मृदंग बजा रहे थे। श्री बसन्त दास, नन्ददास एवं विश्वरूप गोस्वामी आदि भी नृत्य करने लगे। प्रायः ३।४ घंटे तक यह अपूर्व कीर्तन चलता रहा, उसके बाद कीर्तन शान्त हुआ।

कितने ही लोग प्रेम मग्न हो लोट पोट होने लगे। कानाई दा का भावावेश शान्त नहीं हो रहा था, उनके शरीर में अद्भुत कम्प हो रहा था। इस प्रकार उड़ीसा वासियों का

नाम कीर्तन व नृत्य देखकर मैं मुग्ध हो गया। ऐसा मधुर कीर्तन मैंने पहले कभी नहीं सुना था, श्रील बाबाजी महाशय के पास आकर जीवन में मैंने पहली बार ही ऐसा कीर्तनानन्द अनुभव किया था। बाबाजी महाशय मेरी ओर देखकर बोले, 'देखते हो, वे कितना सुन्दर नाम कीर्तन करते हैं। इस भाव का नाम कीर्तन तुम्हारे बंगला देश में भी नहीं है।"

उड़ीसा देश में भी जगन्नाथ नाम एवम् श्री निताई-गौर का नाम सर्वत्र प्रचारित है। जगत के नाथ-जगन्नाथ पुरी धाम में प्रगट हुए हैं। पृथ्वी पर और कहीं प्रकट न होकर उत्कल देश में समुद्र के किनारे, दारुब्रह्म के रूप में प्रकट हुए हैं। भक्ति भाव से उड़ीसा वासी उनकी सेवा करेंगे इसी कारण यहाँ पधारे। गौर सुन्दर ने संन्यास के बाद चौबीस वर्ष इसी पुरी धाम में ही बिताए। केवल ७ वर्ष वे दक्षिण देश में भ्रमण के लिए गए थे। उनकी विशेष भक्ति के कारण ही महाप्रभु का अधिकांश जीवन पुरी में बीता। उत्कल देश में ही साक्षी-गोपाल प्रगट हुए हैं।

मैंने पूछा—"साक्षी गोपाल कौन।" वे बोले—"बाद में बताऊँगा।" उड़ीसा के हरेक गांव में ठाकुर जी का मन्दिर है और वहाँ अत्यन्त निष्ठा पूर्वक सेवा होती है। वे लोग वैष्णवों को "बाबाजी" "महाप्रभु" कहकर ही पुकारते हैं। श्रीभगवान तथा भक्तों के प्रति उनकी अतुलनीय निष्ठा है। ऐसा प्रेम भारत में और कहीं दिखाई नहीं पड़ता। श्री जगन्नाथ जी की रथयात्रा के समय लाखों २ लोग प्रभु का दर्शन करने आते हैं। इसी कारण उत्कल देश मुझे प्रिय है। और हमारे कर्ता

(श्री गुरुदेव) की यह उत्कल देश प्रिय विहार भूमि है। इसी उत्कल देश में वे ज्यादातर रहते थे। नीलाचल, कटक, कन्टा वाड़ी, जाजपुर बालेश्वर, केन्द्रापाड़ा आदि सदा उनके विहार स्थल रहे हैं। वहाँ कितना आनन्द उन्होंने किया। जब वे उत्कल के पथ में कीर्तन करते हुए व नाचते हुए जाते थे तो कीर्तन ध्वनि चारों ओर मुखरित हो उठती थी।

तुमने तो उन्हें नहीं देखा उनकी बात मैं तुम्हें बताऊँ। चरित सुधा का अध्ययन करना। सब समझ में आ जाएगा व उनकी उड़ीसा देश में लीलाओं की कथा पढ़कर तुम धन्य हो जाओगे। मैं श्री गुरुदेव के आदेश से कलकत्ता में रहता हूँ पर मेरा मन नीलाचल धाम में रहता है। इस प्रकार कितनी ही बातें बताने लगे। मेरी आँखों में आँसू आ गए। मैं बोला "क्या आप मुझे वह नीलाचल धाम दिखाएँगे? तब मैं नीलाचल, कटक आदि के बारे में कुछ नहीं जानता था, केवल उनसे सुनकर ही मेरे मन में वे स्थान देखने की इच्छा उत्पन्न हुई। इस प्रकार कथा कहते २ संध्या हो गई। श्रील बाबाजी महाशय दर्शनों को गए। हम लोग भी इधर उधर चले गए।

आज नव रात्रि यज्ञ का अन्तिम दिन है। रात के साढ़े आठ बजे श्रील बाबाजी महाशय कीर्तन में बैठे। अगणित भक्तों ने आकर योगदान किया। श्री अद्वैत काका, चारुदा, बलाइदा, युगलदा बिहारीदास बाबाजी, रजनीदा, उपेनदा, प्रियनाथ काका बसन्त काका, भगवान दा आदि अनेक भक्त वैष्णव श्री बाबाजी महाशय के चारों ओर बैठे हुए कीर्तन कर रहे थे। अब तो वे

सब नित्य धाम को पधार गए हैं। एक मात्र युगलदा अब तक प्रकट हैं। वे श्री पाठवाड़ी में रहते हैं।

अपूर्व कीर्तन आरम्भ हुआ। समस्त आश्रम कीर्तन ध्वनि से मुखरित हो उठा। रात के एक बजे तक कीर्तन चला। उसके बाद श्री पाद खड़े होकर, "पागलेर प्राणाराम, निताइ गौर राधे श्याम" बोलने लगे और इसके साथ ही अपूर्व नृत्य आरम्भ हुआ। श्री बाबा जी महाशय का अद्भुत नृत्य मैं भाषा द्वारा समझा नहीं सकता। कीर्तन का प्रवाह रात के २॥ बजे तक चलता रहा। तत्पश्चात् कीर्तन शान्त होकर, सबने प्रसाद पाया और किंचित विश्राम किया। अगले दिन सवेरे ही नाम आरम्भ हुआ। आज नव रात्रि यज्ञ का समापन है। प्रात: नाम के पश्चात् आश्रम परिक्रमा तथा संक्षिप्त नगर कीर्तन करके नाम यज्ञ समाप्त किया।

आज श्री श्री राधारमणचरणदास देव की तिरोभाव तिथि है। श्रील बाबाजी महाशय उनका सूचक कीर्तन करेंगे। समाज बाड़ी के विस्तीर्ण आँगन में शामियाना लगाया गया है। अगणित लोग आकर आंगन में बैठ गए जिनमें वृद्ध, स्त्रियां, साधू, वैष्णव एवम् गोस्वामी सन्तानगण भी शामिल थे। आस-पास के घरों की छत पर भी लोग जमा हो गए। मैं श्रील बाबाजी महाशय के कमरे में उनके पास बैठा हुआ था। वे नेत्रों से अजस्र अश्रुधाराएँ बहाते हुए श्री गुरुदेव के विरह में रो रहे थे। उनका शरीर काँप रहा था। कीर्तन में नहीं जा रहे थे। मन २ में कुछ गुनगुना रहे थे और रुदन कर रहे थे। इतने में श्रीकृष्ण चैतन्य दादा महाशय, श्री राखालानन्द

शास्त्री एवम् श्री चैतन्यचरण गोस्वामी श्रील बाबाजी महाशय के पास आए।

उन्हें देखकर श्रील बाबाजी महाशय व्याकुल हृदय से फूट २ कर रोने लगे। श्रीचैतन्यचरण गोस्वामी एवम् श्रीकृष्ण-चैतन्यदादा महाशय ने उन्हें आलिंगन किया। सभी व्याकुल हो उठे। फिर धीरे २ भाव संवरण करके श्रीपाद-कीर्तन में आ विराजे। खोल, करताल बजने लगे। श्रील बाबाजी महाशय ने करताल लेकर दण्डवत करके कीर्तन आरम्भ किया। 'जय रे....' बोलते २ ही व्याकुल क्रन्दन कर उठे। आगे 'श्रीराधा-रमण' बोल नहीं पा रहे थे। केवल हृदय विदारक क्रन्दन आरम्भ हुआ। उनका वह श्री गुरु विरह में व्याकुल होकर क्रन्दन करना देखकर समस्त उपस्थित नरनारी भी अनवरत अश्रुजल बहाने लगे।

मैं एक तरफ खड़ा था। सब का क्रन्दन देखकर मेरी आँखों में भी पानी आ गया। एक २ समय वे ऐसे हुंकार दे रहे थे कि कहा नहीं जा सकता। आखिर में उन्होंने बच्चे का क्रन्दन आरम्भ किया। जिसने भी उनका वह हृदय विदारक क्रन्दन देखा है वही जान सकता है कि गुरुविरह कैसा होता है, उनका अपने गुरु से कितना प्रेम था कि वे उनका नाम तक उच्चारण नहीं कर पा रहे थे। उन्हें स्मरण मात्र से ही वे व्याकुल हृदय से रोदन कर रहे थे। आंसुओं से उनका वक्षस्थल भीज रहा था। मस्तक घूर्णित हो रहा था। आस पास बैठे हुए सब लोगों को वे अपने नयन जल से सींच रहे थे। आँसुओं की ऐसी वर्षा हो रही थी कि कोई समझ नहीं सकता।

अद्वैत काका अनवरत गमछे से उनके नेत्र व मुख को पोंछ रहे थे तब भी क्रन्दन थम नहीं रहा था। उनके कीर्तन के समय सभी उपस्थित भक्तजन आँसू बहाने लगे। इस प्रकार एक घण्टा बीतने के पश्चात् किंचित शान्त होने पर कीर्तन आरम्भ किया। उनका यह अपूर्व श्री गुरु विरह लीला कीर्तन मैंने पहली बार ही सुना था, और आगे भी शायद ही सुन पाऊँ। जितने दिन बाबाजी महाशय प्रगट रहे वे स्वयं ही यह कीर्तन करते थे, जिसने भी उनका कीर्तन सुना है वही जानता है कि श्रीगुरु उनके निकट अपूर्व रत्न के समान थे। मैं वाणी द्वारा उसका वर्णन नहीं कर सकता।

खड़े होकर कीर्तन शुरु किया—"पागलेर प्राणाराम निताइ गौर राधे श्याम।" अन्त में वे श्री बड़े बाबा जी महाशय की समाधि मन्दिर के बरामदे में खड़े होकर कीर्तन करने लगे। मैं अपनी लेखनी द्वारा उसका कैसे वर्णन करूँगा। उसके बाद कीर्तन स्थान पर आकर दण्डवत करके नाम समाप्त किया। इस प्रकार कीर्तन समाप्त होते २ एक बज गया। अब वे अपने कमरे में विश्राम करने बैठे। स्नान का समय हो गया। वे एक स्टूल पर बैठे। दो दिन पहले श्रील बड़े बाबाजी महाशयका १०८ कलशों से महा अभिषेक स्नान हुआ था। अन्तर्धान से पूर्व भी उनका ऐसा अभिषेक हुआ था। कलश में भरकर वह स्नान का जल रखा हुआ था। वही जल श्री बाबाजी महाशय ने किंचित पान किया और मस्तक पर लगाया। तत्पश्चात श्री बड़े बाबाजी का प्रसादी मरिच जल भी पाया। अभी भी उनका आवेश शान्त नहीं हुआ था, मैं उनके सामने चुपचाप बैठा था।

एक दो बार उन्होंने मेरी ओर देखा और पूछा—"स्नान कर लिया।" मैं बोला "नहीं।" सेवक वृन्द ने उनके शरीर में तेल लगाया। तेल लगवाकर श्रील बाबाजी महाशय गंगा स्नान को चले। हम लोग भी उनके साथ चले। गंगा स्नान करके दो बजे वापिस लौट आए। आते ही श्रीपाद आन्हिक पूजा करने बैठे। हमलोग महोत्सव के भोग का आयोजन देखने गए। देखा अनेक चूल्हे जल रहे हैं। दाल तरकारी आदि बनानेके लिए बड़ी २ कढ़ाइयाँ आदि देखकर मैं चकित रह गया। अनेक तरकारियों का स्तूप बनाया गया। अन्न प्रसाद (चावल) का एक पहाड़ सा बनाया हुआ था। बड़े टबों में दाल रखी हुई थी। प्राय: दस बारह पुजारी रसोई कर रहे थे। ठाकुर जी का भोग कीर्तन हुआ। ६४ महन्तों का भोग लगाया गया। असंख्य नर नारी प्रसाद पाने के लिए बैठे। वैष्णव, साधु जन एक तरफ बैठे। कलकत्ते से आए हुए भक्त लोग भी बैठे। जिसे जहाँ स्थान मिला वहीं बैठ गए। अपूर्व ढंग से महाप्रसाद वितरण होने लगा। अपूर्व सुगन्ध चारों ओर फैल रही थी। दाल, तरकारी, लाफड़ा, अम्बल, बूँदियाँ, दही, यथेच्छ परिमाण में दिया जा रहा था।

जगन्नाथ क्षेत्र की भाँति सबको समान भाव से प्रसाद दिया जा रहा था। बगैर किसी दुविधा के—ब्राह्मण, शूद्र, धनवान, कंगाल, सब एक साथ बैठे हुए प्रसाद पा रहे थे। जाति विचार बिल्कुल भी नहीं था। महाप्रसाद की महिमा मुझे तब पता चली। अभी तक जगन्नाथ धाम में महाप्रसाद वितरण के विजय में मैंने केवल सुना ही था—श्रीपाद के मुखसे। आज अपनी आँखों से मैंने महाप्रसाद की महिमा देखी। श्रीमद् बाबाजी

महाशय जब कृपा पूर्वक अपने साथ श्रीजगन्नाथ धाम को ले गए तब मैंने आनन्द बाजार में महाप्रसाद की महिमा देखी। इस धाम में श्री जगन्नाथ जी की महिमा व महाप्रसाद की ही प्रधानता है। जाति,वर्ण का विचार किये बगैर सभी महाप्रसाद ग्रहण करते हैं। ठीक इसी प्रकार समाजबाड़ी में मैंने देखा और आज तक वैसा ही देखता हूँ।

उसके बाद सखी माँ मालपूआ प्रसाद ले आईं। हरि-हरि ध्वनि होने लगी। सब उच्चस्वर से 'जय श्रीराधारमण' बोलने लगे। कोई २ 'जय सखी माँ' बोलने लगा। सखी माँ के पीछे ४/५ लोग मालपूए के टोकरे लेकर खड़े हो गए। सखी माँ द्रुतगति से सबको मालपूआ वितरण कर रही हैं, जैसे ही एक टोकरे का मालपूआ खत्म होता है, दूसरा टोकरा दे दिया जाता है। कितनी प्रीति पूर्वक, हास युक्त होकर सखी माँ सबको मालपूए बाँट रही हैं मैं समझा नहीं सकता। एक के बाद दूसरी पंगत होती रही और पूर्ववत् प्रसाद होता रहा। इस प्रकार रात के दस बजे तक महोत्सव हुआ। श्रील बाबाजी महाशय के निकट आकर देखा कि वे प्रसाद पाने बैठे हैं। आश्रम के सब लोगों के प्रसाद पाने के बाद ही वे समस्त भक्तों का अधरामृत पाकर प्रसाद पाते हैं। इसी समय एक भक्त मिट्टी के पात्र में वैष्णव अधरामृत ले आया।

श्रील बाबाजी महाशय ने पहले वह प्रसाद हाथ पर लेकर पाया। तत् पश्चात् प्रसाद पाने लगे। मैं जैसे ही पास जाकर बैठा–पूछा—"प्रसाद पा लिया।" मैं बोला "दोपहर के समय चारुदा, बलाइदा के सङ्ग प्रसाद पाया था।" अच्छा किया,

अब मेरे सङ्ग प्रसाद पाओ।" बोलते ही मैं एक पत्तल लेकर बैठ गया। सेवक महाप्रसाद देने लगा। श्रील बाबाजी महाशय अपने हाथ से एक पात्र से प्रसाद देते हुए बोले, "खाओ—भक्त अधरामृत है।" मैंने पूछा—"कौन से भक्त?" वे बोले "धाम-वासी भक्तजन जिन्होंने इस उत्सव में प्रसाद पाया है, उन सबका अधरामृत।"

मैंने पूछा "इस उत्सव का?" वो बोले "हाँ! मेरे गुरुदेव ने आज कितने स्वरूप धारण किये हैं,जानते हो? दीन, कंगाल, साधु, भक्त, गृहस्थ इस प्रकार अनेक रूप धारण कर उन्होंने प्रसाद ग्रहण किया है। यह चिन्मय, अप्राकृत धाम है! धामवासियों में प्राकृत बुद्धि नहीं करनी चाहिये। जानते हो मेरे गुरुदेव ने कुत्तों का अधरामृत भी पाया था। कुत्ते भी भक्त हैं। धाम में सभी का शरीर अप्राकृत है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं करना चाहिये।" यह सब सुनकर मैंने सोचा—ऐसी निष्ठा युक्त उन्नत भाव लेकर भला कोई ही जीवन बिता सकता है।

मुझे यह सब सुनकर आश्चर्य हुआ। मैंने कितनी सुकृति से श्रील बाबाजी महाशय का सङ्ग लाभ किया, कितनी सुन्दर बातें सुनने की मिलीं, मैं कितना स्नेह लाभ कर रहा हूँ, यह विचार कर हृदय आनन्द से भर उठा। प्रसाद पाकर वे बाहर कुर्सी पर बैठे। इसी समय देखा कुछ लोग स्नान करके नाम करते २ गंगाजी से आ रहे हैं। मैंने दौड़ कर गेट के पास जाते ही देखा, सखीमाँ अनेक भक्तों सहित स्नान करके आ रहीं थीं। मुझे देखकर हँसकर बोलीं—"चलो प्रसाद पाने।" मैं

उनके साथ चला। सब का प्रसाद पाने के लिये। पत्तल बिछायी गयी। सब लोग प्रसाद पाने बैठे। मुझे भी प्रसाद दिया गया। मैं बोला "मैं ने प्रसाद लिया है श्रील बाबाजी महाशय के साथ।" सखीमाँ बोलीं--"तो क्या हुआ, फिर पाओ।" मैंने बिना संकोच किये उनके साथ थोड़ा प्रसाद पाया।

हाथ मुँह धोकर सब अपने-अपने आसन पर जाकर सो गए। मैं श्रील बाबाजी महाशय के बराम्दे में जा बैठा। अकस्मात् मैंने देखा सखीमाँ एक दिया लेकर धीरे-धीरे गेट के पास गईं। कौतुहल वश मैं भी उनके निकट पहुँचा, देखा ये भूमिष्ठ होकर गेट पर प्रणाम कर रहीं हैं। मैंने सोचा यहाँ क्यों प्रणाम कर रहीं है! उस समय रात का एक बजा था, चारों ओर बिलकुल सन्नाटा था। केवल श्रील गोवर्धन काका श्रील बड़े बाबाजी महाशय के बराम्दे में खड़े थे। उसके बाद सखी माँ ने ठाकुर जी का चरणामृत पान करके धीरे-धीरे श्रीगौर-हरिदास बाबाजी महाशय के बराम्दे में आकर चरणामृत पान किया, तत्पश्चात् उन्होंने श्रील बड़े बाबाजी महाशय के बराम्दे में दण्डवत् करके अत्यन्त प्रीति एवम् आनन्द पूर्वक उनका चरणामृत खूब पान किया। उनके पीछे-पीछे घूम-घूम कर मैं यह सब देख रहा था। वे विश्राम करने जाने लगीं तभी मैंने कौतुहल वश पूछा "आपने गेट पर क्यों प्रणाम किया, वहाँ पर तो कोई ठाकुर नहीं।" वे हँसती हुई बोलीं—आज जिन भक्तों ने आश्रम में प्रसाद पाया हैं उन सबकी चरणधूलि गेट पर है। अत: उन्हें दण्डवत् करके मस्तक पर धारण किया है। भक्त की दया बिना भगवान नहीं मिलते।

भक्त कृपा कितनी अधिक शक्तिशाली है, एवम् भक्त-चरण-रज भक्ति लाभ करने का श्रेष्ठ उपाय है यह बात मैंने उनके मुख से प्रथम बार सुनी और स्वयं उनके आचरण में भी देखी है। महापुरुषों की वाणी एवम् शास्त्रोक्त अच्छी-अच्छी बातें अनेकों से सुनने को तो मिलती हैं, पर आचरण करते हुए बहुत कम लोग ही दीखते हैं। श्रील बाबाजी महाशय एवं सखीमाँ स्वयं आचरण करके हम लोगों को शिक्षा देते थे। किन्तु मेरे पाषाण-हृदय पर उसका बीज अंकुरित कहाँ हुआ !! अभिमानरूपी पर्वत पर बैठा हूँ, इसी कारण वंचित रह गया, सिंचित न हो सका। सखीमाँ ने "सो जाओ" यह कहकर अपने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया। मैं उनके बराम्दे के एक कोने में गमछा बिछाकर सो गया।

मंगला आरति का घण्टा बजने लगा था कि नींद खुल गई। सखीमाँ और श्रील बाबाजी महाशय पहले ही उठ गए थे। श्रील बाबाजी महाशय मंगला-आरति दर्शन कर रहे थे और सखीमाँ एक 'लालटेन' हाथ में लेकर मन्दिर परिक्रमा कर रहीं थीं। शौचादि के बाद स्नान करके वे श्रील बाबाजी महाशय के कमरे की तरफ गईं—तब सूरज निकल आया था। श्रील बाबाजी महाशय ने उन्हें भूमिष्ठ होकर दण्डवत्-प्रणाम किया। निकट ही एक नारियल वृक्ष के नीचे मैं खड़ा था। श्रील बाबाजी महाशय ने मुझे इशारा किया। मैंने सखीमाँ को भूमिष्ठ होकर दण्डवत् प्रणाम किया। सखीमाँ मुझ से स्नेह-प्रीति करने लगीं।

उत्सव समाप्त हो गया था। आश्रम में ज्यादा लोग नहीं

रहे। सुना, आगामी कल श्री गौरहरि दास महन्त-बाबा के तिरोभाव महोत्सव पर विशाल नगर-कीर्तन होगा एवं श्रीपाद के सङ्ग सब लोग नवद्वीप धाम के समस्त ठाकुरमन्दिरों की परिक्रमा करेंगे।

चार बजे अद्वितीय पण्डित–श्री राखालानन्द ठाकुर शास्त्री जी श्री भागवत-पाठ करेंगे। यह सुनकर मैंने भी श्रील बाबाजी महाशय के पीछे बैठकर 'पाठ' (कथा) सुना। श्रीचैतन्य चन्द्रामृत की अपूर्व व्याख्या हुई। सभी लोग नीरव-निःस्पन्द होकर गौर कथा सुनने लगे। 'पाठ' के बाद भजन प्रारम्भ हुआ। श्री दीनेशचन्द्र भट्टाचार्य महाशय हारमोनियम् पर गान करने लगे। उनके मधुर कण्ठ से मानो मधु वर्षा होने लगी। असंख्य पुरुष नारी उनका गान सुनकर मुग्ध हो गये। श्रील बाबाजी महाशय के नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे। मुझे वह गान अब तक स्मरण है—एमन मधुमाखा हरिनाम निताइ कोथा हते एनेछे। ए नाम एकबार सुने आमार हृदय वीणा आपनि बेजे उठेछे॥ इत्यादि॥

भावार्थ—ऐसा मधुमय हरिनाम निताइ कहाँ से लाए हैं? यह नाम सुनते ही मेरे हृदय की वीणा स्वयमेव बज उठी है।

उसके बाद श्री विश्वरूप गोस्वामी स्वरचित भजन गान करने लगे—"काँचा सोनार बरण धरेछे। छल करा तार रूपेर बाहार केवल बाहिरे। ढाँकले की आर स्वभाव चापा जाय, आँका बाँका चालचलन, आर बाँक नयने चाय, बलब की से, एमनि हेंसे परिचय देय मिल करे॥ इत्यादि

भावार्थ—शुद्ध स्वर्ण का वर्ण तो धारण कर लिया है, परन्तु छलिया (श्याम सुन्दर,) अपने आपको केवल ऊपर से ही ढँक पाये हैं, उनका स्वभाव तो बाँकी चलन एवम् तिरछी चितवन से प्रकाशित हो रहा है, मैं क्या कहूँ उसकी ऐसी मधुर हँसन माधुरी है कि वह उस छैल छबीले श्याम का परिचय दे रही है।

उसके बाद श्री अनाथबन्धु भट्टाचार्य गान करने लगे—सुन्दर चेहरा-मधुर आकर्षण था उनके गान में। श्रील बाबाजी महाशय गान सुन रहे थे और अझोर धाराओं से अश्रु विसर्जन कर रहे थे। चारों ओर देखा, सभी के आंखों में अश्रु थे। वह गीत कितना मर्मस्पर्शी, कितना प्रीतियुक्त था।

अब तक मुझे स्मरण है—"गोरा रूप सदाइ पड़े मने।
आमि भूलिते यतन करि, बेदनाते मरि प्राणे॥
देशेते होयछि बादी, प्रतिबेशी प्रतिबादी,
तबु गोरा भालबासि, अभिलाशी निशि दिने।
गोरा लागि एतो ज्वाला, तबु से मोर जपमाला।
कि गुण करेछे गोरा, हेला होल कूल, माने।"

भावार्थ—गौरसुन्दर का रूप सदा ही मेरे हृदय में स्मरण हो रहा है। मैं उसे भूलने का यत्न करती हूँ परन्तु ऐसा करते ही मेरे प्राणों में महान् पीड़ा होने लगती है, घर एवम् बाहर सब लोग मेरी निन्दा करते हैं, परन्तु फिर भी मुझ गौर अनुरागिनी को अहर्निश उनके मिलन की ही अभिलाषा होती है। गौर के लिए मैं तो जल भर रही हूँ, फिर भी मैं उनके नाम की माला जपती रहती हूँ, न जाने कौन सा जादू मुझ पर

कर दिया है कि कुल को मान मर्यादा मेरे लिए तुच्छ हो गई है।

गीत सुनकर श्रील बाबाजी महाशय फूट-फूट कर रोने लगे। अश्रु, कंप, पुलक आदि सात्विक भावों से विभूषित हो पड़े। कुछ देर बाद भाव सम्वरण हुआ, कीर्तन भी समाप्त हुआ। आरति का घण्टा बज उठा, सब आरति दर्शन करने लगे। श्री दिनेशचन्द्र भट्टाचार्य महाशय तथा श्रील अनाथबन्धु भट्टाचार्य महाशय आम के पेड़ के नीचे खड़े हुये थे—मैंने जाकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। उन्होंने मुझे आलिंगन किया। तिनुदा जैसे मैं भी छोटा था, श्रील बाबाजी महाशय के पास नया-नया आया हूँ अतः वे मुझसे भी स्नेह प्रीति करने लगे। उसदिन दिनेश बाबु, अनाथ बाबु, सदानन्द भट्टाचार्य महाशय ने सखीमाँ के निकट प्रसाद पाया। मैं तब उन लोगों के पास ही बैठा रहा।

श्रीधाम के बहुत से गोस्वामी सन्तान आए, सखीमाँ ने सबको यथा योग्य मर्यादा करके बैठने को आसन दिया एवं प्रसाद पाने का अनुरोध किया। पूरी-साग, मिठाई-फल आदि 'पक्का' प्रसाद उन्होंने ग्रहण किया। रात को हम सबने प्रसाद पाकर विश्राम किया। प्रातःकाल मधुर नाम-ध्वनि सुनाई दी। मेरी नींद खुल गई—परिक्रमा करते हुये सब लोग नाम कर रहे थे। मुरारी दा, गोपी' दा, रमण दा, छोटे रमण दा, जानकी, मदन 'दा, श्री राधाचरण दादा, निताइ एवं तारक दा—सभी श्रील बाबाजी महाशय के पास ही रहते थे। भगवान दा और छोटे रमण दा खोल बजा रहे थे, बाकी सब

नाचते हुये मन्दिर परिक्रमा कर रहे थे। तभी श्रील बाबाजी महाशय ने अपनी कुटिया से निकल कर नाम-कीर्तन में योग-दान किया। स्वयं ही प्रभाती सुर में नाम प्रारम्भ किया। नाम-ध्वनि से सभी का मन-प्राण आकर्षित हो उठा। उनकी कण्ठ ध्वनि सुनकर नारी-पुरुष सभी दौड़े आये। दो-तीनबार परिक्रमा करके नाम समाप्त किया और कहा—"शीघ्र नगर-कीर्तन का प्रबन्ध करो। श्रीपाद अपनी भजन कुटिया में जा बैठे। सखीमाँ पुन: उनके निकट आईं तो श्रीपाद उन्हें दण्डवत् कर नगर-कीर्तन को जाने को प्रस्तुत होने लगे।

मैंने नाट-मन्दिर में जाकर देखा असंख्य लोग झण्डियाँ, 'खुन्ति' आदि लिये नगर-कीर्तन को जाने की तैयारी कर रहे थे। श्री बिहारीदास बाबाजी के हाथ में असंख्य फूल-मालाएँ थीं। श्री बाबाजी महाशय ने धीरे-धीरे आकर बैठक घरमें दण्डवत की एवं श्रीमहन्त-महाराज तथा श्रील बड़े बाबाजी महाशय की समाधि पर दण्डवत प्रणाम करके नाट मन्दिर में आकर खड़े हुए, चारों ओर से 'हरिबोल' ध्वनि होने लगी। श्रील बाबाजी महाशय के श्रीहस्त में बड़े निताइ दा ने करताल दी। मदन दा, छोटे रमणदा, हरेकृष्ण दा, भगवान 'दा' किंकर काका आदि वैष्णववृन्द उन दिनों बाबाजी महाशय के कीर्तन में खोल बजाते थे। श्रील बाबाजी महाशय ने 'प्रेमानन्दे निताइ गौर हरि बोल' कह कर दण्डवत की तो सभी लोग 'हरि बोल' ध्वनि देकर दण्डवत् करके खड़े हो गए। मधुर मृदंग और करताल बजने लगे।

श्री बिहारीदास बाबाजी महाशय ने सर्व-प्रथम ठाकुरों को

माला चन्दन पहनाया, तत्पश्चात् मृदंग और 'खुन्ति' पर, फिर गोस्वामिओं को माला पहनायी एवं मस्तक पर चन्दन लगाया। श्रीकृष्ण चैतन्य ने दादा महाशय को (बड़े बाबा) माला चन्दन पहनाकर जितने ब्राह्मण वैष्णव थे सब को माला चन्दन दिया। उसके बाद श्रील बाबाजी महाशय को माला पहनाकर उनके परिकर वृन्द को मालाएँ पहनाईं।

श्रील बाबाजी महाशय ने 'श्रीगुरु प्रेमानन्दे निताइ-गौर हरि बोल' ध्वनि देकर दण्डवत प्रणाम किया और खड़े होकर कीर्तन करने लगे। चारों ओर से 'हरि बोल' ध्वनि होने लगी, मधुर मृदंग बजने लगा। कीर्तन प्रारम्भ हुआ—"एस (आओ) नदीयार चाँद गोरा, एस संकीर्तन पिता' इस प्रकार से प्रायः आधे घण्टे तक श्रीमहाप्रभुजो तथा उनके परिकर वृन्द का आह्वान किया। तत्पश्चात्—

"प्रकट, अप्रकटलीलार दुइ तो विधान, प्रकट लीलाय प्रभु करेन स्वयं नृत्यगान। अप्रकटे नाम रूपे साक्षात् भगवान, कीर्तन बिहारी हए आछेन वर्तमान" हरि नामेर बहु अर्थ ताहा नाहि जानि, श्याम-सुन्दर, यशोदा-नन्दन, एइ मात्र मानि।

भावार्थ—प्रभु की नित्य लीला प्रकट एवम् अप्रकट दो रूपों में चलती रहती है। प्रकट लीला में प्रभु स्वय नृत्य-गान करते हैं एवम् अप्रकट लीला में नाम रूप में साक्षात् विराजमान रहते हैं एवम् कीर्तन बिहारी होकर उपस्थित रहते हैं।

गाते-गाते कण्ठ रुद्ध हो गया, शरीर थर-थर काँपने लगा। समस्त शरीर पर काँटों की तरह अद्भुत पुलकावली होने लगी। शरीर ऐसा काँपने लगा कि जैसे अभी गिर पड़ेंगे।

श्री बिहारीदास बाबाजी महाशय ने पीछे से उनको पकड़ लिया। प्राय: २० मिनट तक आविष्ट रहे। किंचित भाव शांत होने पर पुनः गाने लगे—

हरि नामेर बहु अर्थ, ताहा नाहि जानि, श्याम सुन्दर यशोदा नन्दन एई मात्र मानि।

भावार्थ—हरि नाम के बहुत अर्थ मैं नहीं जानता, मैं तो केवल श्याम सुन्दर, यशोदानन्दन ही मानता हूँ!

सेइ हरि गौर हरि नदीया बिहरे,
हरे कृष्ण नाम प्रेमे जगत निस्तारे।
(प्रभुर) दक्षिणे श्रीनित्यानन्द, वामे गदाधर,
सन्मुखेते नृत्यावेशे कुबेर कुमार॥
गदाधरेर वामे श्रीवास आर नरहरि,
चौषट्टि महान्त द्वादश गोपाल संगे करि।
चारिदिके (चारों ओर) पारिषद मण्डली करिया।
तार माझे (उनके बीच) नाचे गोरा हरि बोल बलिया॥

वे हरि ही 'गौर हरि' के रूप में नदिया में विहार कर रहे हैं एवं 'हरे कृष्ण' नाम एवम् प्रेम दान द्वारा जगत का उद्धार कर रहे हैं। श्रीमन्महाप्रभु के दाहिनी ओर नित्यानन्द प्रभु हैं, बाँई ओर गदाधर पंडित जी हैं तथा सामने नृत्यावेश में श्रीअद्वैत प्रभु हैं। चारों ओर पार्षदों का मण्डल है, उनके बीच में गौर सुन्दर हरि २ बोलते हुए नाच रहे हैं, सबके आगे दोनों भुजाएं उठाए हुए निताइ चाँद नाचते हुए जा रहे हैं। तथा हरे कृष्ण नाम एवं प्रेम लुटा रहे हैं।

सबाकार आगे निताइ दुबाहु तुलिया.... "यह पंक्ति कहते ही वे हुँकार भरते हुये नृत्य करने लगे। भूमि से प्रायः तीन फुट ऊपर को उठ गए। सारा शरीर काँपने लगा। भावावेश में निरन्तर ऊपर उठकर गिरने लगे। फिर अपूर्व नृत्य आरम्भ किया। श्री बिहारीदास बाबा और निताइदास जी उन्हें बहुत सावधानी से सम्भालने लगे। चारों ओर से हरि बोल ध्वनि होने लगी, 'हुलु-हुलु' मंगल ध्वनि गूँज उठी। प्रेम समुद्र उच्छलित हो उठा।

श्री बसन्तदास बाबा, श्रीश्यामदास बाबा, श्री विश्वरूप गोस्वामी व समग्र गोस्वामी वृन्द परमानन्द पूर्वक नृत्य करने लगे। श्रील बाबाजी महाशय ने 'भाव' कुछ शान्त होने पर कीर्तन आरम्भ किया—"सबाकार आगे निताइ दुबाहू तुलिया, हरे कृष्ण नाम प्रेम जान बिलाइया" "आबार (पुनः) बलो हरिनाम, आबार बलो। एइ मधुर हरे कृष्ण नाम आबार बलो" यह कहते हुये नाट-मन्दिर में ठाकुरजी को प्रणाम करके आश्रम से बाहर निकले। 'पताका'(झंडियां) 'खुन्ति' आगे-आगे चल रहे थे। गोस्वामी वृन्द 'खुन्ति' लिए हुये थे। उनके पीछे श्रील बाबाजी महाशय एवं उन्हें घेरकर परिकर वृन्द "आबार बलो हरिनाम, आबार बलो मधुर हरे कृष्ण आबार बलो, गाते हुये चलने लगे।

समाज बाड़ी परिक्रमा करके, श्री बड़े बाबाजी महाशय को दण्डवत प्रणाम करके पुनः नाम प्रारम्भ किया "गौर हरि हरि बोल।" 'नाम' लिये बैठक में आये तो 'मातन' कीर्तन आरम्भ हुआ—"प्रेम दाता निताइ बले गौर हरि, हरि बोल।"

मधुर नृत्य आरम्भ हुआ। चार पाँच भक्तों को 'आवेश' हो गया। वे भूमि पर लोट पोट होने लगे।

श्रीपाद 'नाम' लेकर गेट से बाहर निकले। असंख्य नर-नारी व्याकुल हृदय से कीर्तन के साथ चलने लगे। कुछ लोग उनके पीछे-पीछे नाम करते हुए व्याकुल हृदय से भागे जा रहे थे, कुछ लोग उनके दर्शन के लिये पहले से ही मार्ग पर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। सभी के मुखपर श्रीहरिका नाम। कितना मधुर दृश्य था वह। प्राय: हजार व्यक्तियों के मुख से यही नाम ध्वनित हो रहा था। जो कोई आता वो ही श्रीनाम में सम्मिलित हो जाता। श्रील बाबाजी महाशय ने धीरे-धीरे 'श्रीवास आंगिना' में पहुँच कर दण्डवत प्रणाम की और 'नाट मन्दिर' में कीर्तन करने लगे। प्रभु के सेवक श्रील गौर चाँद गोस्वामी एवं श्रील चैतन्यदास गोस्वामी जी ने सबको माला-चन्दन दिया, कुछ देर तक वहाँ नृत्य-कीर्तन करके अब नवद्वीप के मार्ग पर निकल पड़े। श्रील बाबाजी महाशय ने एक सफेद गमछा से अपना सर ढक कर उसे कानों के दोनों तरफ से घुमा दिया था, कस कर चादर बाँध ली थी। मुख पर हँसी की लहर खिल रही थी, दोनों भुजाओं को ऊपर उठाए हुये झूमते-झूमते नृत्य करते हुये चले जा रहे थे। कितनी मधुर नृत्य-भङ्गि थी नदीया के पथ पर। परिकर वृन्द भी नृत्य कर रहे थे। आबाल-वृद्ध-नारी उनके पीछे-पीछे चले जा रहे थे। कैसी मधु-वर्षा हो रही थी। इस प्रकार से वे 'श्रीपोड़ामां तला' आ पहुँचे। वहाँ पर दण्डवत करके खूब नृत्य-कीर्तन करने लगे।

उससे आगे चौराहे पर खड़े होकर यह गान करने लगे, परिकर वृन्द उनके पीछे-पीछे गानें लगे—

पाषण्ड दलन बाना, नित्यानन्द राय रे।

निताइ आपे नाचे, आपे गाए, गौराँग बोलाए रे ॥ इत्यादि

भावार्थ—श्री नित्यानन्द राय का बाना पाषण्ड को दलन (चूर-चूर) करने वाला है। निताइ चाँद स्वयं नाच रहे हैं, गा रहे हैं एवं सब लोगों से गौर सुन्दर का नाम बुलवा रहे हैं।

प्राय: एक घण्टा श्री निताई गुणगान करके मधुर नृत्य करते हुए 'श्री हरि सभा के गौर' के दर्शन निमित्त वहाँ से चल पड़े। श्री 'हरि सभा' के नृत्यरत श्रीगौर विग्रह अति मधुर हैं। उन्हीं के दर्शन की लालसा से श्रील बाबाजी महाशय भी मधुर नृत्य कर रहे थे—मुझे ऐसा लगा। कीर्तन करते हुये मन्दिर में पहुँच कर मन्दिर के सेवक श्रीस्मृतिकण्ठ गोस्वामी जी को दण्डवत की। प्राय: आधे घण्टे तक नाम ध्वनि चलती रही। श्री गौर सुन्दर को दण्डवत् प्रणाम करके मधुर कीर्तन प्रारम्भ किया।

तोरा देखबि यदि, आए नागरि नेचे जाए प्राण गौर हरि, तोरा देखबि यदि आए नागरि। गृह काज तो सदाइ आछे, गौर-नटन देखबि आए। गृह काजे पड़ुक बाज-देखबि गोरा रस राज।

भावार्थ—हे नदिया नागरी आओ देखो प्राण गौरहरि कैसा सुन्दर नृत्य करते हुए जा रहे हैं। घर के काम तो सदा ही लगे रहते हैं, गौर की नृत्य माधुरी आकर देखो तो सही। तुम्हारे घर के कामों पर बिजली गिर पड़े, गोरा रसराज को (शीघ्र) आकर देखो। यह गाते हुए 'पद' गान करने लगे—

धवल पाटेर जोड़ पड़े छे, रांगा रांगा पाड़ दियेछे,
चरण ऊपर दुले जेछे कोंचा गो।

आँखर देने लगे "गोरार काँच।
सोनार अंगेर वसन भेंदि किरण उठेछे।"

बाँकमल सोनार नूपुर बेजे जेछे मधुर - मधुर
रूप देखिते भुवन मूरछा गो॥

भावार्थ—गौर सुन्दर नदिया के पथ पर नृत्य करते हुए जा रहे हैं लाल रंग की किनारी युक्त श्वेत रङ्ग की रेशमी धोती धारण किए हुए हैं, नृत्य रत चरणों के बीच धोती की चुन्नट दोलायमान हो रही है। उनके अङ्ग की स्वर्णिम छटा वस्त्रों को भेद कर चारों ओर छिटक रही है। श्री चरणों में सोने के बाँक मल (चरणों का विशेष आभूषण) व नूपुर मधुर-मधुर बजते हुये जा रहे हैं। उन के रूप दर्शन से जगवासी समस्त लोग मूर्छित हो रहे हैं।

वह नूपुर ध्वनि नदिया वधूगण के मनों को मत्त कर रही है एवम् उन रसराज नवीन गौर सुन्दर के रूप दर्शन से सब लोग मूर्छा को प्राप्त हो रहे हैं।

मधुर मृदु मुस्काते हुये आँखर देने लगे—मन मजाते नदोया बधूर, नूपूर बाजे मधुर-मधुर, रूप देखिते भूवन मुरछा गो। नव रसेर गोरा राय, भूवन मुरछा पाय।' कहते-कहते समस्त शरीर थर-थर काँपने लगा, स्वयं मूर्छित होने लगे। श्रीनिताइ दादा पीछे से उन्हें पकड़ कर सम्भालने लगे। खूब मातन कीर्तन होने लगा। अनेकों वैष्णव भक्त गौर सुन्दर के

सन्मुख मूर्छित हो गिर पड़े। कुछ दूरी पर गौर सुन्दर के सेवाइत श्री स्मृतिकण्ठ गोस्वामी जी आबिष्ट हो कर पड़े हुये थे। उनके मुख से खून निकल रहा था। एक व्यक्ति मस्तक पर पानी डालते हुये उनकी सेवा में लगा हुआ था।

कीर्तन करते हुये अष्ट सात्विक भावों से विभूषित श्रील बाबाजी महाशय भाव सम्वरण कर रहे थे—भाव से विह्वल नहीं हो रहे थे। उनमें भाव धारण करने की असीम शक्ति देखी है। पद आरम्भ हुआ—

"दीघल-दीघल चाँचर चूल, ताय गुजेछे चाँपार फूल
कुँद मालतीर माला बैड़ा झोंटा गो।"

आँखर "ओ जे कूल वतीर कूलेर खोंटा,
चाँचर चूले फूलेर झोटा"

भावार्थ—कुन्द व मालती पुष्पों की मालाओं से घेष्टित लम्बे-२ घुँघराले केशों में चम्पा के फूल गुँथे हुए हैं, यह छवि नदिया वासी कुल वधुओं की लज्जा का अपहरण कर रही है।

इस पद के होते मात्र ही देखा कई मूर्ति वैष्णव सर पर घूघंट ओढ़े नदीया वासिनी गौर नागरी के भाव से अपरूप मधुर नृत्य करने लगे। उस समय मुझे इन भावों के विषय में कोई जानकारी नहीं थी। वैष्णवों के श्रीमुख से तथा श्रीलोचन-दास जी की पदावलिओं को पढ़कर गौर-नागरी भाव का पता चला।

चन्दन माखा गोरा गाय बाहू दोलाए चले जाए, कपाल माझे, भूवन मोहन फाँटा गो। आँखर "एके तो सहज रूपेई भूवन भोले, ताते आबार चन्दन माखा गोरा गाए चले जाए आर लए जाए। जानि, कूल, लज्जा चले जाय आर लए जाए—

"ओतो नय चन्दनेर फोंटा ! ओजे कूलवतीर कूलेर खोंटा।
चन्दनेर बिन्दू नय, मदय विजयी ध्वजा,
हार मेनेछे मदन राजा।
जग माझे सुपुरुष बले, मदनेर बड़ गरब छिल। गौरांग मुरति हेरे से गरब भंग होलो, बिकाइछे गोरार पाय। प्राणपति गौरांग बले, कामेर रति, छाड़ि पति बिकाइछे गोरार पाय।"

भावार्थ—गौर अङ्ग चन्दन चर्चित है, दोनों भुजाएं उठाए चले जा रहे हैं, मस्तक पर चन्दन बिन्दु सुशोभित है एक तो सहज रूप से त्रिभुवन को आकर्षित कर रहे हैं उस पर चन्दन बिन्दु तो जाति, कुल एवम् धैर्य को बहाए दे रहा है। उस चन्दन बिन्दु की शोभा निहार कर, कामदेव तो धराशायी हो गया है और रति 'हा गौरांग' कहकर गौर सुन्दर के चरणों में न्यौछावर हो गई है।

'हरिऐ शची दुलाले........मातन कीर्तन आरम्भ हुआ। प्रायः २० मिनट तक चला। श्रील बाबाजी महाशय पद गाने लगे—

"बाहूर हेलन दोलन देखि, हाथीर शुण्ड किसे लिखि,
नयान बयान जेनो कूदें कोंदा गो।

आँखर "निङाड़ि रसेर कोन निधि, गौर गड़ेछे कोन बिधि !
गड़े बुझि देखे नाई, देखले छेड़े,
दित ना, प्राण-पुतली करे राखतो ।।
किन्तु गौर राज्ये उल्टो रीति, एका भोग करते नारे।
भूवनमोहन गोरा, जगजने देखबे बोले, ताइते छेड़े दियेछे।"

भावार्थ—दोलायमान भुजाएं हाथी की सूँड़ के समान हैं, न जाने कौन से शिल्पी ने इनके रसीले नयन युक्त मुखकमल को गड़ा है।

समग्र रसों के समुद्र को मथकर न जाने कौन से ब्रह्मा ने गौर को बनाया है, परन्तु उसने लगता है कि उसे देखा नहीं है, अगर देखता तो उसे प्राणों की पुतली करके रखता। परन्तु गौर के राज्य की रीति ही उल्टी है जगवासिओं के दर्शन के लिए ही शायद उसने भुवन मोहन गौर को छोड़ दिया है।

श्रवण व मन की व्यथा दूर करने वाली मधुर २ वाणी बोल रहे हैं मानो चन्द्रमा से अमृत झर रहा है।

मातन्न कीर्तन के साथ उन्मत्तवत नृत्य होने लगा। श्रील बाबाजी महाशय भी कुछ देर नृत्य कर पुनः गाने लगे—

मधुर-मधुर कए गो कथा, श्रवण मनेर घूचाए व्यथा,
चाँदे जैनो उगारऐ सुधा गो।"

आँखर "अमियार प्रस्रवण, हृदिकर्ण रसायन—चाँदे जेनो उगारए सुधा गो। गौर-हरि 'हरि' बोलल—जेनो चाँद फेटे अमिया झरल। मधुर गौर किशोर, मधुर - मधुर नाट, मधुर-मधुर सब सहचर, मधुर-मधुर हाट।। मधुर गौरांगेर,

सकलइ मधुर। मधुर गौरांगे हेरे, एबार सबाइ मत्त मधु रे।
'स्वभाव' जागान गोरा—प्रभु निताइ पागल करा।

भावार्थ—मधुर २ गौर किशोर का मधुर २ नृत्य है सब सहचर मधुर २ हैं, अब की लीला में नित्य गोपी स्वरूप जगा कर सभी को मधुर रस में निमज्जित कर रहे हैं।

कहते ही अपूर्व मातन आरम्भ हुआ। भाव सम्भाल कर गाते रहे—

"एमन केउ व्यथित आछे थाके, कथाए छले खनिक राखे,
नयन भरे देखि रूप खानि गो।

लोचनदास बले केने, नयन दिलि गौर पाने
दुकूल खेलि आपना आपनि गो॥

आँखर देने लगे—"आमरा कूलेर नारी, कहिते नारि, 'गौर! तुमि दाँड़ाओ बोले, बोलते नारि। आमादेर शाशुड़ी-ननदी वैरी। देखे जा लो ओ नागरी; गौर नटन देखे जा। गृह-काज तो सदाइ आछे, गृह-काजे पड़ूक बाज, देखबि गोरा रसराज।"

भावार्थ—ऐसा कौन मर्मी है जो कि दो घड़ी गौर को रोक दे, जिससे कि मैं उनके नेत्र भर कर दर्शन कर सकूँ। मेरी सास, ननद तो बैरी हैं उनके कारण 'गौर तुम जरा ठहरो' मैं इतना भी तो कह नहीं सकती। अरी सखी घर के काम तो सदा ही लगे रहते हैं, उन पर बिजली पड़े, परन्तु तू आकर रसराज गौर का नटन (नृत्य माधुरी) देख जा। श्री लोचन

दास जी कह रहे हैं कि तूने गौर को देखा ही क्यों, जिससे तेरे दोनों कुल नष्ट हो गए हैं।

पुनः नाम आरम्भ किया प्रेम दाता निताइ बले, गौर हरि हरि बोल........नाम लेकर महाप्रभुजी को दण्डवत करके नदीया के पथ पर कीर्तन करते हुए चल पड़े—ऊर्द्ध बाहू होकर नृत्य करते-करते। परिकर वृन्द भी हाथ उठाए पीछे-पीछे नाचते हुये चले जा रहे थे। मदन दा, रमण दा, हरेकृष्ण दा व भगवान दा मधुर मृदंग बजा रहे थे।

उस रमणीक दृश्य से लग रहा था जैसे गौर सुन्दर स्वयं नृत्य करते हुये चले जा रहे हैं—साथ श्रीनिताइ चाँद प्रेम-हिलोर से झूमते-झूमते जा रहे हैं; भक्त रूपी भ्रमर गण उस रूप-माधुरी को पान करने के निमित्त झुंडके झुंड उमड़कर आ रहे हैं। इस प्रकार प्रेम तरंग में नाचते-नाचते धामेश्वर श्रीमन्-महाप्रभुजी के मन्दिर में आ पहुँचे। अपूर्व कीर्तन-नर्त्तन होने लगा। सभी आत्मविस्मृत हो गए। अचानक मैं ने देखा एक तरफ बड़े-बड़े घर की स्त्रियाँ लज्जा, शर्म सभी भूल कर कोई तो नृत्य कर रही थीं, कोई क्रन्दन कर रही थी तो कई स्त्रियाँ अति स्वर से 'हा गौर हरि !' 'हा गौर किशोर' कहकर पुकार रही थीं। कुछ स्त्रियाँ रोते-रोते भूमि पर लोट पोट हो रहीं थीं। मुझे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। मुझे लगने लगा कि इन्होंने अवश्य ही कीर्तन में श्री गौर किशोर का दर्शन किया है। उस दिन श्रील बाबाजी महाशय के कीर्तन में प्रत्यक्ष देखा कि कीर्तन में ऐसी शक्ति है जो कि मनुष्य को सब कुछ भुला देती है। 'लज्जा' नारी जाति का प्रधान गुण है। यह

महिलाएँ उस लज्जा को भूल बैठीं। इससे पूर्व मैंने कभी ऐसा होते नहीं देखा था। बाद में मैंने श्रील बाबाजी महाशय से इस सम्बन्ध में पूछा।

उन्होंने कहा था "हां ऐसा ही होता है।" संकीर्तन श्रीरास-स्थली है। श्रीवृन्दावन में जिस प्रकार असंख्य गोपियों के साथ श्रीराधागोविन्द ने 'रास' में नृत्य किया था, उसी प्रकार इस कलियुग में वे ही श्रीधाम नवद्वीप में अवतीर्ण हुए थे। श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण दोनों एकीभूत होकर श्रीगौरांग स्वरूप में आविर्भूत हुए नवद्वीप धाम में। जब प्रभु आए तो उनके साथ उनके परिकर व उनका धाम भी प्रकट हुए। श्री नन्दनन्दन अब शचीनन्दन हुये। श्रीवृन्दावन में वंशीध्वनि, नवद्वीप में हरि नाम ध्वनि। श्रीवृन्दावन में श्रीयमुना, नवद्वीप में सुरधुनी (गंगाजी)। वृन्दावन में सखासङ्ग खेल, नवद्वीप में भक्त सङ्ग मेल, श्रीवृन्दावन में रास-मण्डल, नदीया में अब संकीर्तन। यह सब अपूर्व सिद्धान्त उनके श्री-मुख से सुनकर कृतार्थ हो गया।

श्रील बाबाजी महाशय ने प्रभु को दण्डवत प्रणाम किया। वृद्ध सेवक ने उन्हें प्रसादी माला पहनाई। वहाँ से चल कर श्री निताइ चाँद के मन्दिर पहुँचे। पहुँचते ही वे हुँकार भरते हुए नृत्य करने लगे। अपूर्व नाम ध्वनि के साथ नृत्य प्रारम्भ हुआ। बहुत से भक्त 'हा निताइ !!' कहते हुए व्याकुल हृदय से क्रन्दन करने लगे। कई तो भूमि पर लोट पोट होने लगे और कई वक्षस्थल पर कराघात करते हुए रोने लगे। कीर्तन में बहुत ही उन्माद की सृष्टि हुई। पाठक ! इस वर्णना को

कल्पित अथवा पागलों का प्रलाप न समझें। यद्यपि बहुत दिनों की बात है पर मेरे मानसपटल पर आज भी उसी प्रकार जागृत है।

कीर्तन ध्वनि कुछ शान्त हुई। श्रील बाबाजी महाशय के नयनों से श्रीनिताइ चाँद का मुखारविन्द दर्शन करते ही अजस्र अश्रुपात होने लगा। सात्विक भाव—अश्रु, कम्प पुलकावली उनके श्री अङ्ग पर आविर्भूत होने लगे। भाव शांत होते ही कीर्त्तन आरम्भ किया—

देख रे नयन भरि निताइ सुन्दर रे। गौरांग प्रणय रसमय पुरन्दर रे॥ आँखर स्फुर्ति होने लगी 'गौर प्रेमेर मुरति निताइ, प्रेम बिने आर किछु इ नाइ। मुखे 'प्रेम, प्रेम'सबाइ बले। प्रेमेर अनुभव नाइ, ताइ 'काम' के देखे प्रेम बले। प्रेमेर मूरति आमार प्रभु नित्यानन्द रे। प्रेमे बले,प्रेमे चले, प्रेमे कोल(आश्रय) देय आचाण्डाले।'आए पतित आए'बले प्रेमे कोल देए आचंडाले। 'आए पतित आए' बले बयान भासे प्रेमजले। धेए जाए पतितेर काछे, केंदे-केंदे तारे पूछे—आर के कोथा पतित आछे ? आमि बिकाइब प्रेम दिब, मुखे गौर हरि बल।

भावार्थ—अरे भाई आँख भर कर निताइ सुन्दर को देखो। ये गौर प्रेम रसमय पुरन्दर हैं। आखर देने लगे—गौर प्रेम की मूरति निताइ चाँद प्रेम बिना और कुछ नहीं हैं। मुख से तो प्रेम २ सब बोलते हैं, परन्तु प्रेम का अनुभव नहीं करते। वे 'काम' को ही प्रेम बोलते हैं। प्रेम की मूरति तो हमारे श्री नित्यानन्द प्रभु ही हैं। वे प्रेम से बोलते हैं, प्रेम से चलते हैं, प्रेम से ही चाण्डाल पर्यन्त पतित जनों को आलिंगन करते हैं।

'अरे पतित जीवो आओ' यह कह कर सबको गले लगाते हैं। 'आओ पतित आओ' कहकर उनके मुख कमल पर प्रेमाश्रु धाराएँ बहने लगती हैं। पतित जीवों के पास जा २ कर पूछते हैं कि और पतित जीव कहाँ हैं सबको बुलाओ मैं तुम्हारे हाथों बिक जाऊँगा और सबको प्रेम दूँगा—तुम मुखसे केवल मुख से 'गौर हरि' बोलो।

यह पंक्ति गाते ही हुँकार-गर्जन पूर्वक नृत्य करने लगे। परिकर वृन्द भी नाच उठे। उद्दाम नृत्य शुरु हुआ। थर-थर काँपने लगा श्रील बाबाजी महाशय का श्री अङ्ग खड़े रहना असम्भव लगने लगा। अजस्र धाराओं से अश्रुपात हो रहा था। बहुत देर तक इस तरह नृत्य कीर्तन करते हुये श्रीनिताइ चाँद को दण्डवत प्रणाम कर नाम ध्वनि के साथ 'भजन कुटीर' की ओर चल दिए। वहाँ पर भी कुछ समय तक कीर्तन करके श्री सुरधुनी (गंगाजी) के तट पर पहुंचे। उनके मुख पर अपूर्व मधुर मुस्कान छा गई। कीर्तन करने लगे—"जाए निताइ हेले दुले। 'गौर हरि बोल' बले, हेमदण्ड बाहू तुले, जाए निताइ हेले दुले।" मधुर मृदंग की ध्वनि के साथ-साथ सभी नर-नारी श्रील बाबाजी महाशय के सहित नृत्य करते हुए 'श्रीवास आंगिना' के घाट पर आ पहुँचे।

श्री 'सुरधुनि' के दर्शन करते हुए बाबाजी महाशय ने कीर्तन आरम्भ किया—के जाबि, के जाबि भाई भवसिन्धु पार रे—आमार दयाल निताइ डाके 'के पारे जाबि आए रे। धन्य कलियुगेते, चैतन्य अवतार रे, आमार चैतन्येर घाटे अ-दान खेया बाए रे॥ ज्वरा, अन्ध, बधिर अबधि पार हय रे। 'लागे

नारे पारेर कड़ि', बाहू तुले बले निताइ काण्डारी ॥ आमि पार करे देइ भववारि, जाति-कूल-अधिकार बिचार ना करि। आमि एनेछि प्रेमेर तरी। एइ भव पारेर घाटे-घाटे लए फिरि नामेर तरी। शुधु मुखे बलले गौर हरि, पार करे देइ भववारि।"

भावार्थ—"संसार सागर के पार 'कौन जाएगा, कौन जाएगा" हमारे दयाल निताइ पुकार रहे हैं। धन्य है कलियुग, जिसमें दयालु शिरोमणि चैतन्य देव ने अवतार लिया है, हमारे चैतन्य के घाट पर बीमार, अन्धे, बहरे सब जीव बगैर मूल्य के पार हो रहे हैं। निताइ मल्लाह बाहु उठाकर कह रहे हैं कि पार जाने के लिए पैसा-कौड़ी नहीं लगेगा। मैं जाति, कुल अधिकार का विचार किये बिना सबको भव समुद्र से पार कर दूँगा। इस प्रकार वे घाट २ पर नाम की नौका लिए घूम रहे हैं 'केवल मुख से गौरहरि बोलो' मैं निश्चय ही सबको भव सिन्धु से पार कर दूँगा। ऐसा कह रहे हैं।

कुछ देर तक मातन कीर्तन करके प्राय: दोपहर के दो बजे 'समाज बाड़ी' लौट आए। परिक्रमा करके नाट मन्दिर में कीर्तन आरम्भ किया—"नगर भ्रमिए आमार गौर एलो घरे................" कीर्तन में श्री शची माता रोती-रोती कीर्तन श्रम से श्रमित गौर सुन्दर को वात्सल्य रस से अभिभूत होकर लाड़ लड़ाती थी उसी का वर्णन करने लगे। वह विशाल पदावली "श्रीगुरु कृपार दान" ग्रन्थ में लिपिबद्ध किया गया है। कीर्तन के उपरान्त प्रभू से प्रार्थना करने लगे 'एइ कृपा करो मोरे गौरांग श्री हरि। नित्यानन्द संगे जेनो तोमाय न

पासरि (न भूलूं)। पतितेर बन्धु निताइ आमादेर प्रभू—तुमि आर नित्यानन्द बिहरिबे यथा, (जहाँ-जहाँ लीला करोगे) एइ कर जन्मे-जन्मे भृत्य हई तथा। तोमार दासानुदासेर सङ्ग दियो (देना), जेथाय, सेथाए रेखो। भाई-भाई एक प्राणे गाइबो—गौर हरि हरिबोल।" प्रचण्ड नाम ध्वनि उठने लगी। तत् पश्चात् 'हरि हरये नमः, कृष्ण यादवाय नमः, यादबाय नमः कृष्ण माधवाय नमः गोपाल-गोविन्द, राम, श्री मधुसूदन, गिरिधारी—गोपीनाथ-मदनमोहन इत्यादि पद गान करने लगे।

सखीमाँ (श्री ललिता दासी) एक पात्र में दही-हल्दी मिश्रित जल लिए खड़ी थीं। पात्र के ऊपर आम की पत्ती व एक नूतन गमछा था। उन्होंने पात्र श्रील बाबाजी महाशय को दे दिया। श्रील बाबाजी महाशय ने 'लूट' कीर्तन (श्रीनिताइ चाँद का प्रेम लुटाने का वर्णन) करने लगे—"आए रे, तोरा लूटबि के आए, आमार दयाल निताइ अमिया बिलाय रे" इत्यादि।

भावार्थ—आओ रे तुम लोग आओ कौन लूटेगा, हमारे दयाल निताइ चाँद (प्रेम) अमृत लुटा रहे हैं।

'गौर हरि बोल' ध्वनि से पुनः नृत्य - कीर्तन होने लगा नाम-तरंग में पड़ कर कौन किधर जा पड़ा किसी को कोई सुध न रही। सखी माँ एक बड़े थाल में बताशे ले आईं। बाबाजी महाशय हलदी-जल का पात्र मस्तक पर रखे ठाकुर मंच के चारों ओर मधुर नृत्य करने लगे। सभी के ऊपर जल छिड़काते हुये उसे बीच में फोड़ डाला। चारों ओर वह पवित्र जल फैल गया। वे स्वयं उस जल के ऊपर साष्टांग दण्डवत कर

के लोटपोट होने लगे। फिर वे अपने भजन कुटीर में चले गए उन्हें ऐसा करते देखकर हम सबने भी वहाँ लोट-पोट किया।

सखी माँ बताशे लुटाने लगीं। सभी लोग हरिध्वनि देते हुए लूटने लगे। इस प्रकार से नाम-यज्ञ का समापन हुआ। हम सब बाबाजी महाशय के पास पहुंचे। हमें देखकर कहने लगे—"सब लोग इस चादर को (जिसे ओढ़कर वे कीर्तन करते थे और लोट पोट हुये थे) धो डालना चाहते हैं परन्तु इस में तो 'रजमहारानी' लगी हुई हैं। यह बात किसी के समझ में नहीं आती। यह 'रज' ही हमारी 'प्राप्ति' है। श्रीधाम की 'रज' के प्रति यदि निष्ठा न हुई तो क्या लाभ !! हमारे कर्ता (श्री बड़े बाबाजी) इस धाम के 'रज' के बरतनों में भोग लगाकर पाते थे, पुनः धोकर रख देते थे। धाम की रज को महिमा वे स्वयं दिखाकर गए हैं। श्री गौर किशोर दास बाबाजी यहाँ के सिद्धपुरुष थे। वे सर्वदा अपने सारे शरीर पर श्रीधाम की 'रज' लगाए रहते थे। एक छोटी सी 'नाव' के भीतर रहते और धामवासियों के घर-घर मधूकरी करते थे।

एकबार उनके मन में आया कि बिना कोई सेवा किए धामवासियों से मधूकरी माँगना ठीक नहीं है। जंगल से सूखी लकड़ियाँ काटकर सड़क पर बैठे रहते,जो कुछ दाम मिल जाता उसी से निर्वाह करते। उन दिनों वे धाम में सिद्धपुरुष माने जाते थे। रास्ते पर या शमशान भूमि पर पड़े हुए कपड़ों से कौपीन, बहिर्वास आदि बनाकर पहनते थे। उनके मनमें बिन्दु मात्र घृणा नहीं होती थी। कहते थे 'धामवासियों के वस्त्र तो चिन्मय वस्तु है, उससे घृणा नहीं करनी चाहिये।

श्रीधाम तथा धामवासियों को आप्राकृत चिन्मय मानते थे। एकबार भक्तों ने उनसे गंगाजी के उस पार ले जाने का बहुत आग्रह किया। श्री गौर किशोर दास बाबा रज की पोटलो अपने कन्धे पर रखकर गंगाजी पार हुए। 'स्वरूप गंज' 'मिआपुर' आदि भ्रमण कर आए। पर उस पोटली को अपने कन्धे से तब उतारा जब वे नवद्वीप लौट आए। भक्तों के पूछने पर हँस कर बोले—"यदि इस बीच मेरा देहान्त हो जाता तो श्रीधाम की ही प्राप्ति होती क्यों की धाम की रज' जो साथ में थी।" उनकी इस प्रकार धाम-निष्ठा, रजनिष्ठा देखकर सभी आश्चर्य में पड़ गए। उनकी समाधि नवद्वीप धाम के 'रानीर चड़ा' नामक स्थान पर है।" श्रील बाबाजी महाशय इसके बाद स्नान करके आन्हिक करने बैठे।

उस दिन श्रील गौर-हरिमहन्त बाबा की तिरोभाव तिथि थी। नाट मन्दिर में बहुत से ब्राह्मण वैष्णवों ने प्रसाद पाया। हम सबने 'पंगतघर' में प्रसाद पाया। रात को श्रीमती सखीमाँ ने आरति, रूप, अभिसार कीर्तन किया।

दूसरे दिन सुबह जब मैं श्रील बाबाजी महाशय के पास बैठा हुआ था तब सखीमाँ एक वृद्धा माता को अपने साथ लेकर पहुँची। उनके साथ श्रीफणिकाका जी व श्रीनन्द काका जी भी थे। सखीमाँ बोलीं—"आज दोपहर तथा रात को, दोनों समय माँ के घर प्रसाद पाने की व्यवस्था हुई है। मधु-पुजारी रसोई बनाने गया है।" श्रील बाबाजी महाशयने माँके चरणों में दण्डवत किया। वात्सल्यमयी माँ उनके मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद करती हुई बोलीं—अपने परिकरों को

भी साथ लेते आना।" सखी माँ ने भी उनके चरणों में मस्तक रखकर उन्हें प्रणाम किया। एक सामान्य गृहस्थी महिला को इस प्रकार साधू वैष्णवों का प्रणाम स्वीकार करते देखकर मुझे बहुत ही आश्चर्य हुआ। श्री बिहारी काका ने मुझे समझा दिया।

वह वृद्धा परम भक्तिमती व वात्सल्यमयी माँ थी। धामवासी सभी साधू वैष्णवों को अपना पुत्र जानकर स्नेह करती थी। साधु सेवा व ठाकुर-सेवा ही उनके जीवन का मूल कर्तव्य था। अस्वस्थ वैष्णवों की हर प्रयोजनीय वस्तु से उनकी सेवा किया करती थी। वे विशेष धनी मानकुण्डु के 'खान परिवार' की महिला थीं। उन्हीं के घर से यह निमन्त्रण था। आश्रम के सभी लोगों ने वहाँ प्रसाद पाया।

अगले दिन सुबह श्रील बाबाजी महाशय ने मुझसे कहा कि दोपहर को प्रसाद पाकर वे गंगाजी के उसपार 'कृष्ण नगर' चलेंगे जहाँ पर श्रील बड़े बाबा का चरणचिन्ह सीमेन्ट के फर्श पर पड़ा था। सुनकर मैं बहुत खुश हुआ। संध्या के समय श्रील बाबाजी महाशय के साथ प्रायः ३०/३५ लोग 'कृष्ण नगर' में उनके शिष्य—श्रीठाकुर कानाई के वंशधर श्री सनत् सेनगुप्त महाशय के घर आ पहुँचे। कुछ भक्तों को बाबा ने आदेश दिया दिक् नगर जाने को। वहाँ पर दूसरे दिन कल्पतरु वृक्ष के नीचे अष्ट-प्रहर नाम संकीर्तन का प्रबन्ध किया गया था। वे लोग स्वरूपगंज जानेवाली गाड़ी से दिक्नगर चले गए। कृष्ण नगर पहुंचकर हम ४/५ व्यक्ति बाबाजी महाशय के साथ उसी मकान के सामने पहुँचे जहाँ पर बड़े बाबा का चरण चिन्ह

पड़ा था। दूसरे लोगों ने उस मकान को खरीद लिया था। चिन्ह भी मिट चुका था। अतः हम लोग वहीं पर भूमिष्ठ होकर प्रणाम करके चले आए। वहाँ से लौट कर श्रील बाबाजी महाशय ने रात के एक बजे तक कीर्तन किया दूसरे दिन सुबह नगर-कीर्तन हुआ। तत्पश्चात् स्नान-आन्हिक करके प्रसाद पाया व किंचित विश्राम करके परिकर सहित दिग्नगर पहुंचे। संध्या हो चुकी थी। स्टेशन से कल्पतरु तक प्रायः एक मील का जंगल व मैदानी रास्ता था। बाकी लोग आगे - आगे निकल गए।

श्रील बाबाजी महाशय के सङ्ग निताइ' दा, रमण दा, उपेन 'दा, बिहारी काका और मैं हास परिहास करते हुये चलने लगे। इतने में निताइ' दा मुझे अलग से बुलाकर कहने लगे— जीवन ! देखो श्रील बाबाजी महाशय किस प्रकार बालक स्वभाव के हैं। महापुरुषों में तीन प्रकार के स्वभाव पाए जाते हैं— बालकवत्, उन्मत्तवत् व कभी-कभी पिशाचवत्। श्रीबड़े-बाबाजी महाशय कभी-कभी उन्मत्त पुरीधाम में फिरते थे। पागल होकर "जय नित्यानन्द राम कहते हुये लाइट् पोस्ट तोड़ने तथा सिपाहियों को मारने पर उन्हें पुलिस ने पकड़कर उनके हाथों में जंजीर पहना दिया था। वे उन्हें भी तोड़ डालते थे। महापुरुषों को समझपाना बहुत कठिन है।

श्रील बाबाजी महाशय किस प्रकार बालक स्वभाव के हैं, तुझे दिखाता हूँ। उस सामने वाले पेड़ों पर बन्दर रहते हैं। 'उस पर 'भूत' रहते हैं' कहकर मैं उन्हें डरा दूंगा।" श्रील बाबाजी महाशय जब उन वृक्षों के करीब पहुँचे तो निताइ दा

ने छुपकर उनपर पत्थर मारा और उन्हें सुनाकर कहने लगे "जीवन ! इन पेड़ों पर भूत रहते हैं, मैंने एक दिन देखा था।" बन्दर इधर उधर कूदने लगे। अन्धेरे में स्पष्ट दिखाई नहीं दे रहे थे। पेड़ हिलने लगे। श्रील बाबाजी महाशय भय से ठिठक् कर खड़े हो गए—आगे बढ़ने को तैयार ही नहीं हुए। मुझसे कहने लगे—"पीछे हट जा, आगे मत जाना।" निताइ दा 'हरिबोल' ध्वनि देने लगे, बन्दर और कूदने लगे। उन्होंने निताइ' दा से कहा—तूने मुझे पहले क्यों नहीं बताया, मैं कभी नहीं आया इस रास्ते पर। पेड़ के नीचे से जाते समय अगर हम लोगों पे भूत आ गिरे तो क्या होगा। हम नहीं जाएँगे उस रास्ते से।" निताइ दा, रमण दा उन्हें बालकवत् भयभीत होते देखकर मृदुमन्द हँसने लगे। मुझसे रहा नहीं गया—सारी बातें बता दीं। वे किंचित रुष्ट हुए फिर हँसते हुए निताइ दा से कहा—"तुम बहुत चालाक हो ! नदीया वासी हो न, तभी यह शैतानी" कुछ ही देर में हम लोग कल्पतरु के नीचे आ पहुंचे।

पास ही किसी भक्त के घर पर श्रील बाबाजी महाशय का रहने का प्रबन्ध किया गया था। 'कल्पतरु' के नीचे आम्र-पल्लव, मंगल कलश, केलेके पेड़ इत्यादि उपकरणोंसे अष्ट-प्रहर नाम यज्ञ की व्यवस्था की गई थी। निकट ही हम लोगों के रहने तथा 'रसोई' के लिये तिरपाल से घेर कर स्थान बनाया गया था। ग्राम वासियों ने समग्र स्थान को झाड़-लीप कर सुन्दर रूप से सजाया हुआ था। वहीं पर श्रील बाबाजी महाशय के ठाकुर जी को विराजमान किया गया। संध्या-आरति, पूजा-अर्चना के पश्चात् श्रील बाबाजी महाशय ने अधिवास

कीर्तन आरम्भ किया। प्रायः रात के एक बजे तक अपूर्व नृत्य-कीर्तन हुआ। उसके बाद ठाकुर जी का भोग लगा, सबने प्रसाद पाया। श्रील बाबाजी महाशय वहीं पर कम्बल बिछा-कर विश्राम करने लगे। बलाइ दा' चारु दा और मैं उनके चरणों के पास दरी बिछाकर सो गए। उन दिनों कृष्णकमल दादा व शशीदा पुजारी थे। दोनों ने श्रीनाममाला जपते-जपते रात बिता दी।

भोर होते ही शौचादि के बाद श्रील बाबाजी महाशय ने प्रभाती सुर में नाम प्रारम्भ किया। मन प्राण उन्मत्तकारी नाम ध्वनि सुन कर दूर-दूर से लोग आने लगे। उस गांव के बहुत से मुसलमान जो उस वृक्ष को "पीर तला" के नाम से श्रद्धा करते थे, आकर नाम में योगदान करने लगे। ग्राम वासियों में से कोई चावल, कोई, दाल तो कोई साग-सब्जी लेकर श्रद्धा पूर्वक वृक्ष के नीचे रखने लगे। एक ग्वाले ने खूब सारा मक्खन, घी, दही लेकर ठाकुर जी का भोग लगाया व सभी से प्रसाद पाने का अनुरोध करने लगा। वह और उसकी पत्नी ने बाबाजी महाशय को दण्डवत् किया तथा मेरे गले में यज्ञोपवीत देखकर प्रार्थना करने लगा "हे ठाकुर बाबाजी, हे ब्राह्मण देवता कृपा करके हमारे घर चरणधूल देजाओ।

विशेष जिद करने पर श्रील बाबाजी महाशय को जाना पड़ा। मैं, चारु दादा, व रमण दा उनके अनुरोध पर वहीं कुछ देर रुक गए। रमण दादा वहीं पर अपनी ठाकुर पूजा करने लग गए। ग्वाले ने श्रद्धा पूर्वक खूब सारा 'सन्देश' दही और मठा लाकर दिया। चारु दा ने वहीं पर भोग लगाने को कहा।

रमण दा, पूजा में देरी कर रहे थे। गम्भीर स्वर से चारु' दा बोल उठे—रमण! और कितना भजन करोगे। यहाँ पर तो पेट के अन्दर ही बड़े जोर से खोल-करताल बज रहे हैं अर्थात् जोर से भूख लग रही है। रमण दा ने शीघ्र भोग लगाया—चारुदा झटपट पत्तल बिछाकर प्रसाद पाने बैठ गए, सङ्ग में मुझे भी बिठाया।

चारुदा पहले एक हाथ से फिर दोनों हाथों से दही-सन्देश खाने लगे। मुझसे कहने लगे—"जल्दी खतम कर नहीं तो बाकी लोग सब आकर हम पर हमला कर देंगे।" यह कहते हुये थोड़ा सा दही अपने मुख पर मल लिया और मेरे मुख पर भी। कहने लगे "और नहीं खाया जाता, एक पाईप लाकर गले में ठूँस दे तो कैसा रहेगा।" हँसी के मारे मेरा पेट फूला जा रहा था कि इतने में बलाइ दा व और कई लोग वहाँ आ पहुंचे। चारु दा कहने लगे"—अरे कोई हो तो मुझे इस विपदा से बचाओ, पेट फूला जा रहा है। हँसी की धूम मच गई। सब लोगों ने मिलकर खूब दही-सन्देश प्रसाद पाया। ग्वाला हाथ जोड़े अपने भाग्य की सराहना करने लगा।

दोपहर के बारह बजे हम लोग कल्पतरु वृक्ष के नीचे पहुंचे। उस समय श्रील बाबाजी महाशय आन्हिक कर रहे थे। अश्रु-कम्प, पुलक आदि सात्विक भावों से विभूषित होकर हुँकार भर रहे थे। चारु दा ने मुझ से कहा "देख जीवन श्रील बाबाजी महाशय किस तरह हुंकार भर रहे हैं। उन्हें अपने श्रीगुरुदेव के साक्षात् दर्शन हो रहे हैं। उनके गुरुजी (श्री बड़े बाबा) ने 'नाम' के बल से इस वृक्ष को नचाया था। इसके हर

पत्ते से मधु की वर्षा हुई थी। ज्यादा दिन की बात नहीं। इस घटना के प्रत्यक्ष द्रष्टा अब भी जीवित हैं इस गाँव में। ग्रामवासी अब तक उनका नाम श्रद्धा से लेते हैं। हर वर्ष श्रील बाबाजी महाशय उसी तिथि पर यहां आकर उत्सव मनाते हैं। तुझसे उन्हें बहुत स्नेह है तभी अपने साथ लाए हैं।"

प्राय: ढाई बजे आन्हिक समाप्त करके श्रील बाबाजी महाशय बलाइ दा व चारुदा को अपने साथ बिठाकर प्रसाद पाने बैठे। चारुदा प्रसाद पाने बैठ तो गए पर आनाकानि करने लगे। उनकी अस्वच्छन्दता को देखकर श्रीबाबाजी महाशय ने पूछा "क्यों 'चारु, क्या बात है?" चारुदाने कपट गाम्भीर्य दिखाते हुए उत्तर दिया "जी मुझे लग रहा है पेट में शूल-वेदना शुरु होने वाली है अत: आपकी आज्ञा हो तो जाकर थोड़ा लेट जाऊँ।" श्रील बाबाजी महाशय ने कहा "यदि शरीर अस्वस्थ लग रहा है तो जाओ, जाकर लेट जाओ।" चारुदा उठकर चले गए और कुछ दूरी पर कम्बल बिछाकर लेट गये और हँसते हुए उनका प्रसाद पाना दर्शन करने लगे।

सभी मृदुमन्द हँस रहे थे। श्रील बाबाजी महाशय के हँसने का कारण पूछने पर मैं ने उन्हें सब कुछ बता दिया। चारु दा कुछ लज्जित होकर पीछे मुड़कर लेट गए। श्रील बाबाजी महाशय आनन्द से ध्वनि देते हुये प्रसाद पा रहे थे। इसी कारण बहुत देर हो गई। प्रसाद पाकर सभी विश्राम करने गए। चारु दा सोने का बहाना करके नाक से खूब आवाज निकाल रहे थे। श्रील बाबाजी महाशय उनकी चालाकी समझ गये। एक तिनका लेकर उनके नाक में थोड़ा सा घुसा दिया।

चारु दा हड़बड़ा कर उठे तो देखा सामने श्रीपाद ! कहने लगे "आगे से कभी दही-सन्देश नहीं खाऊंगा। मेरे पेट में दर्द उठ रहा था। वैसे थोड़ देर लेट कर ठीक हो गया है।" उनकी बातों पर सभी जोर-जोर से हँसने लगे।

चारुदा श्रील बाबाजी महाशय के थे तो शिष्य' पर परस्पर सख्य भाव की प्रीति थो। वे सर्वदा श्रीगुरुध्यान, श्रीगुरुकथा में ही डूबे रहते थे। श्रीपाद के कीर्तन में वे प्रधान साथी होते थे। चारुदा, बलाइदा, युगल दा व अद्वैतकाकाजी के बिना कीर्तन में उन्हें आनन्द नहीं आता था। कीर्तन में इन लोगों का होना बहुत ही आवश्यक होता था। प्रायः एक घन्टा विश्राम करके श्रील बाबाजी महाशय नाम-माला द्वारा जप करने लगे। सन्ध्या हो गई। स्थानीय तथा कृष्ण नगर से बहुत से लोग आए हुये थे आरति के पश्चात् कीर्तन सुनने के लिए।

श्रील बाबाजी महाशय ने कीर्तन प्रारम्भ किया। आनन्द की तरंग उठने लगी। व्याकुल हृदय से कीर्तन में श्रील बड़े बाबाजी महाशय को पुकारने लगे—"आबार तुमि एसो प्रभू ! आबार तेमनि करे नामे वृक्ष नाचाओ। देखा दिए आमादेर तापित प्राण शीतल करो।"

भावार्थ—प्रभु पुनः एक बार पधारो। फिर कृपा करके नाम द्वारा वृक्ष को नचाओ। दर्शन देकर हमारे तप्त प्राणों को शीतल करो।

चारों ओर से क्रन्दन ध्वनि उठने लगी। इस प्रकार आर्तिभरी प्रार्थना करके उठकर खड़े हुये व "पागलेर प्राणाराम,

निताइ गौर राधे-श्याम" नाम ध्वनि बहुत देर तक करते रहे। रात ढल चुकी थी। प्रसाद पाकर थोड़ा विश्राम किया। दिन निकल आया था। हाथ-मुँह धोकर सभी को अपने साथ लिए नगर कीर्तन को निकले। ग्राम जंगल से पूर्ण था अतः कुछ दूर तक जाके लौट आए व 'गौर एल घरे, आमार निताइ एल घरे' ध्वनि देकर नाम समाप्त किया। दधि-मंगल, हरि लूट इत्यादि के बाद दण्डवत् करके श्रीपाद कल्पतरु के नीचे-स्नान-आन्हिक आदि करने लगे। महोत्सव महाप्रसाद पाने के लिए असंख्य लोग आए। प्रसाद पाकर श्रीपाद के संग हम लोग पैदल कालना में 'श्री निताई-गौर' दर्शन करने के लिए रवाना हो गए। गंगा जी के उस पार पहुँच कर श्रील बाबाजी महाशय ने जलस्पर्श करके दण्डवत की, फिर नाव से उतर कर घोड़ा गाड़ी से कालना पहुँचे।

श्री निताइ गौर के दर्शन करके श्रीपाद के संग हम लोग एक इमली के वृक्ष के नीचे बैठे। वृक्ष के चारों ओर सीमेन्ट का चबूतरा बना हुआ था। इसी वृक्ष के नीचे दोनों प्रभूओं ने (निताइ गौर ने) विश्राम किया था। मन्दिर के पुजारी गोस्वामी जी श्रील बाबाजी महाशय से अत्यन्त स्नेह करते थे। उन्होंने रात को प्रसाद पाने का प्रबन्ध किया और श्रीपाद से अनुरोध किया की दूसरे दिन भी श्रीमन् महाप्रभुजीका महाप्रसाद पाकर ही नवद्वीप जाएँ। उत्तर में श्रीपाद ने कहा यह तो हम सबका परम सौभाग्य ही है।" प्रातः काल वहीं पर 'प्रभाती' कीर्तन हुआ। सबने वहीं पर ही अपना-अपना आन्हिक किया। आरति का घण्टा बज उठा, हम सब दर्शन करने गए। श्रीधाम वृन्दावन के श्रीबांके बिहारी जी की भांति

झाँकी होती है यहाँ के ठाकुर की। श्रील बाबाजी महाशय दर्शन मात्र से भाव विह्वल हो गए। गोस्वामी जी मन्दिर के भीतर से एक पुराना 'चप्पू' ले आये। श्रीमन् महाप्रभु जिस नौका से कालना पहुंचे थे उसी नौका का वह चप्पू था। श्रील बाबाजी महाशय 'चप्पू' के स्पर्श मात्र से अश्रुप्लावित होने लगे, शरीर कंपित होने लगा। भाव सम्वरण करके दण्डवत किया। स्नान-आन्हिक के पश्चात् श्रीमन् महाप्रभुजी का अधरामृत पाकर परिकर वृन्द सहित घोड़ा गाड़ी से स्टेशन रवाना हो गए। उस दिन होली की पूर्व सन्ध्या थी। श्रीधाम नवद्वीप में कीर्तन के निमित्त पहुंचना बहुत आवश्यक था। अगले दिन 'गौर पूर्णिमा' थी।

श्रील बाबाजी महाशय के सङ्ग हम लोग प्राय: चालीस व्यक्ति थे। उनके सङ्ग एक साथ श्रीधाम लौट रहे थे अत: सभी बड़े प्रसन्न हो रहे थे। जिस प्रकार से चुम्बक लोहे को आकर्षण करता है उसी प्रकार उनके आकर्षण में जो भी आता वह लौट कर जा नहीं सकता था। हम अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से उन्हें छोड़ भी जाते पर वे हमें कभी नहीं छोड़ सकते थे।

"तोमाय प्रभु बलब निठूर कोन प्राणे।
कत रूपे तव स्नेहेर दान, कत रूपे करो सिंचने ।।
बसे बसे गाँथि कामनार माला,
प्राण हए जाए शुधू झालापाला।
तुमि ऐसे काछे, कतो कथा कह, कतना करुण छन्दने ।।
आमि चले जाइ तोमारे छाड़ि,
चुपि - चुपि एसे बाँधिले हरि।

तोमार बाँधन शक्त अति, वासना करि दलने ।।
माया-ममताए घेरा कामना मोर,
तार माझे ऐसे मरम चोर,
कोन छले ऐसे पातिया कोर, आमारे बाँचाले मरणे ।।
व्यथार व्यथी, के तुमि दरदी, ये जाक् मोर सबाइ बादी,
दास 'जीवन' अति अभाजन, ताहारे राखिओ चरणे ।।

भावार्थ—हे प्रभु मैं आपको भला निठुर किस प्रकार कह सकता हूँ। कितने प्रकार आप स्नेह करते हो, कितने प्रकार से आप (स्नेह द्वारा) सिञ्चन करते हो। मैं तो बैठा-२ कामनाओं की माला ही गूँथता रहता हूँ, किन्तु मेरे प्राण केवल उलझते ही जाते हैं लेकिन फिर भी तुम आकर कितनी करुण कथा कहते हो। मैं तो तुम्हें छोड़कर चला जाता हूँ, परन्तु तुम चुपके-चुपके आकर मुझे डोर से बाँध लेते हो। तुम्हारा बन्धन बहुत दृढ़ होता है और वासना का दलन करके, मुझे माया, ममता के घेरे से चोर की तरह निकाल लाते हो। मुझे मरने से बचा लेते हो। मेरे दुःख के दरदी कौन हो तुम ? सब मुझसे विरुद्ध हो रहे हैं। यह 'दास जीवन' अत्यन्त अभाजन है, इसे अपने चरणों में ही सदा रखना।

श्रील बाबाजी महाशय की करुणा लाभ करके, उनसे नाम, प्रेमधन लाभ करके अनेकों पाषण्डी जीव कृत-कृतार्थ हो गये हैं इसके अनेक दृष्टान्त आज तक भी देखने को मिलते हैं।

हम लोग श्रीधाम नवद्वीप स्टेशन पहुँचे। श्रील बाबाजी महाशय के दर्शन मात्र से ही चारों दिशाएँ 'हरिबोल' ध्वनि से मुखरित हो गईं। भक्तों ने उनके गले में प्रसादी माला

पहना दी। मृदुमन्द हँसते हुए श्रील बाबाजी महाशय प्लेटफार्म से जाने लगे। हरि ध्वनि सुनकर व श्रीपाद के मनोहर स्वरूप को दर्शन कर बहुत से अँग्रेज राजकर्मचारी मुग्ध होकर अपनी-अपनी टोपी उतार कर उन्हें अभिनन्दन करने लगे। श्रीपाद ने भी हाथ जोड़कर उन लोगों की यथायोग्य मर्यादा की। श्रीपाद बाबाजी महाशय प्रत्येक व्यक्ति, बालक-वृद्ध-पुरुष-नारी सभी को यथायथ मर्यादा प्रदान करते थे। ब्राह्मण, वैष्णव, साधुओं को अतुलनीय मर्यादा देते थे। इस प्रकार का मर्यादा-प्रदान कारी पुरुष मैंने जीवन में और कहीं नहीं देखा।

उन्होंने सर्वप्रथम गाड़ी में ठाकुरजी को विराजमान कराया। फिर स्वयं गाड़ी पर बैठे। मैं भी चुपके से उनके पास बैठ गया। वे हँसकर मुझसे बोले—'कैसे झटपट आकर बैठ गया ताकि मेरे साथ ही जा सको। काफी होशियार हो तुम !' उनके संग मैं भी हँस पड़ा पर एक व्यक्ति का चेहरा गम्भीर हो गया। संन्ध्या से पूर्व ही हम लोग समाजबाड़ी आ पहुँचे। 'बाबाजी महाशय आ गये' कहते हुए सभी आश्रमवासी दौड़ आये गेट के पास। श्रीमती सखी माँ चंचल द्रुतगति से आकर गेट के एक तरफ खड़ी हो गईं।

धीरे-धीरे ठाकुरों को उतारा गया, खोल करताल उतारे गये, उसके बाद श्रील बाबाजी महाशय उतरे। श्रीधाम में श्रीगुरुदेव के पास लौट आये हैं—आनन्द से मुखमण्डल चमचमाने लगा। चारों ओर से हरिबोल ध्वनि, हुलु ध्वनि होने लगी। उन्हें दर्शन करने, दण्डवत करने लोगों की कतार लग गई। निताइ दा, रमण दा सबको मना करते हुये कहने लगे—'पहले श्रीपाद को स्वस्थ होने दो, बाद में प्रणाम करना।'

सुनकर सभी स्थिर हो गये। श्रील बाबाजी महाशय धीरे-धीरे आगे को चलने लगे। सखी माँ को देखते ही उनके चरणों में दण्डवत प्रणाम किया। छोटे भाई से मिलकर खुशी से सखी माँ के आँखों में आँसू आ गये। पूछने लगीं—'शरीर तो ठीक है न ! मैं कब से तुम्हारी राह देख रही हूँ। फिर वे भंडार घर को चली गयीं।

श्रील बाबाजी महाशय ने पहले बैठक पर दण्डवत किया, फिर श्रील गौरकिशोर महन्त महाराज को दण्डवत करके श्रील बड़े बाबाजी महाशय की समाधि पर दण्डवत प्रणाम किया। अन्तत: अपनी भजन कुटिया को दण्डवत करके आसन पर बैठे।

असंख्य भक्त आकर उन्हें प्रणाम करने लगे। उस दिन "चाँचर' उत्सव था। एक दैत्य की बहुत बड़ी मूर्ति बनाई गई। उसमें आग लगाकर उसे जलाया जाना था। श्रीबिहारी काका जी ने बताया उस दिन श्रीधाम वृन्दावन में श्रीकृष्ण ने 'सेड़ासुर' का वध किया था व 'होरी' खेली थी। श्रीराम दादा कुछ ही देर में कीर्तन करेंगे, देखना कितना आनन्द आयेगा। श्रील बाबाजी महाशय ने आरती दर्शन किया। उन्होंने एक गमछा सिर पर बाँध लिया और कसकर एक पटका कमर पर बाँध लिया। किंकर काका व हरेकृष्ण दादा 'खोल' ले आए। श्रीपाद ने करताल लिए। परिकरों के संग कीर्तन आरम्भ किया। आनन्द की धारा बहने लगी। बहुत देर तक नाम करने के पश्चात् 'पद' गाने लगे—

'आज होरी खेलब श्याम तोमार सने। एकला पेयेछि आज

निधुबने ॥ अर्थात् गोपी श्यामसुन्दर से कह रही है कि आज निधिवन में मोहन तुम अकेले मिल गये हो। आज तुमसे मैं होली अवश्य खेलूँगी।' इस पद के गाते ही सखी माँ व अनेक भक्त होली खेलने लगे। वे श्रील बाबाजी महाशय व उनके परिकरों पर अबीर, गुलाल मारने लगे। रंग से चारों ओर लाल ही लाल हो गया। 'मैड़ासुर' को आग लगाई गई। मुहूर्त मात्र में वह जल गया। नदिया के बालक उस पर खूब लाठी मारने लगे और नाचने लगे। उसके बाद बहुत देर तक कीर्तन हुआ। सखी माँ नाट मन्दिर में बहुत देर तक कीर्तन करती रहीं। उसके बाद सबने प्रसाद पाकर विश्राम किया।

अगले दिन होली पूर्णिमा थी—श्रीमन् महाप्रभु की आविर्भाव तिथि। सभी लोग अपने-अपने काम काज से निवृत्त होकर आश्रम में एकत्रित होने लगे। सखी माँ ने हम बच्चों को आठ-आठ आने पैसे दिये रंग खरीदने के लिए। उस दिन सड़क पर निकलना कठिन था। सभी के हाथ में पिचकारी थी, जो जिसे मिल जाये उसे बिना रंगे नहीं छोड़ा। हमारे आश्रम में दोपहर के दो बजे से होली आरम्भ होना था। निताइ'दा, कानाइ दा श्रीनाद के आंगन के आगे बड़े-बड़े टब में पानी भरकर रखने लगे। उसमें रंग घोला गया। उधर मन्दिर के बरामदे में युगलकिशोर सखियों के संग सिंहासन पर विराजमान हुए। उनके दोनों ओर सखियाँ व सखागण खड़े हो गये। सभी के हाथ में बड़ी-बड़ी पिचकारी थी। रंग और गुलाल उड़ने लगे। तीन बजे से पिचकारियाँ चलने लगीं।

थोड़ी ही देर में श्रील बाबाजी महाशय परिकरों के साथ नाट मन्दिर में श्रीमन् महाप्रभुजी की जन्म लीला कीर्तन करने

लगे। अपूर्व मन-उन्मत्तकारी कीर्तन होने लगा। चारों ओर से अबीर गुलाल की वर्षा हो रही थी। हम सब आश्रम स्थित बालक पिचकारियाँ लेकर फिर रहे थे। श्रीमती सखी माँ चाँदी की बनी हुई एक सुन्दर पिचकारी लेकर होली खेलने लगीं। उनके ऊपर सभी पिचकारी मारने लगे। श्रीपाद के कीर्तन के पश्चात् सखी माँ 'होली-कीर्तन' करने लगीं—श्री-श्यामसुन्दर प्रियाजी व सखा व गोपियों के संग होली खेल रहे हैं। कितनी ही कीर्तन मण्डलियाँ आने लगीं। चारों ओर अबीर कुंकुम गुलाल से श्रीगौर पूर्णिमा का दिन सुरञ्जित हो उठा एवं कीर्तन ध्वनि द्वारा समस्त वातावरण मुखरित हो उठा।

इसी तरह होली खेलकर सब गंगाजी में स्नान करके आश्रम लौट आये। सखी माँ ने ठाकुरजी का अभिषेक करके चरणामृत दिया। मैं कुछ देर तक होली खेलकर थक चुका था। श्रील बाबाजी महाशय कीर्तन करके बैठे हुये थे। मैं उनके पास जाकर बैठा। मुझे इस 'फाल्गुन पूर्णिमा' के बारे में बताते हुये कहा—"आज श्रीमन् महाप्रभु की आविर्भाव तिथि है, आज के दिन सभी देव-देवियाँ मनुष्य रूप धारण करके श्रीधाम में आये हैं। घोर रात्रि के समय उन्हें देख पाओगे, वे 'पोड़ामाँ तला' में—पागल-पगली के वेष में फिरते हैं। उन्हें दिव्य दृष्टि के बिना पहचाना नहीं जा सकता।" सुनकर मैं बोला—"तो मैं भी रात को जाऊँगा उन्हें देखने।" वे बोले—"नहीं !! तू डर जाएगा।"

सखी माँ ने प्रसाद पाने के लिए बुला भेजा। वे पंगत में स्वयं पूरी, तरकारी, खिचड़ी आदि परोस रहीं थीं। जिन्होंने

व्रत रखा था वे फल आदि प्रसाद पाने लगे। मैं भी पंगत में जाने लगा तो मेघलाल दादा ने चुपके से मुझे बुलाकर कहा— "तुम्हें श्रील बाबाजी महाशय बुला रहे हैं। मैं उनके पास गया तो अपने पास बिठाकर प्रसाद दिया। उस दिन श्रीअद्वैत काका व श्रीफणि काका भी उनके संग प्रसाद पा रहे थे। उन्होंने भी मुझे प्रसाद दिया, मैं बड़े आनन्द से पाने लगा, सभी अपने-अपने स्थान को चले गये। बैठे-२ मुझे बहुत नींद आ रही थी तो श्रील बाबाजी महाशय ने मुझे पकड़ कर अपने पलंग पर सुला दिया। वे स्वयं कब आकर लेटे, कब उठे, कब सुबह हुई मुझे पता ही नहीं चला। प्राय: साढ़े पाँच बजे देखा कि श्रीपाद मुझे जगा रहे थे। एक बार देखकर फिर सो गया तो उन्होंने मेरे बाल पकड़ कर मुझे बिठा दिया और कहने लगे —इतनी नींद क्यों !! मैं लज्जित हो गया।

बाहर आकर दीवार पर पीठ लगाकर फिर सोने लगा तो श्रीपाद ने मेरी आँखों में पानी के छींटे मारे। मेरी नींद छूट गई। शीघ्र ही स्नान-शौचादि करके उनके पास आ बैठा और बालक स्वभाव वश पूछ बैठा 'इतना बड़ा आश्रम कैसे बना ?'

श्रील बाबाजी महाशय ने बताया कि वह आश्रम किसी एक दुष्ट जमींदार का प्रमोद-उद्यान था सभी तरह के दुष्कर्म यहाँ होते थे। जहाँ पर बैठक खाना कमरा है वहाँ पीपों में शराब रखी होती थी। इस बगीचे में से हत्या किए गए लोगों के अनेकों कंकाल निकले थे। जब श्रील बड़े बाबाजी महाशय के मन में आश्रम प्रतिष्ठा की बात आई तो उन्हें यही स्थान पसन्द आया। उनका कहना था कि यह स्थान जितना

पापमय था, यह उतना ही धर्ममय सुन्दर स्थान में परिवर्तित होगा। बगीचा खरीदने के बाद उसे गंगाजल से परिष्कृत किया गया व एक माह व्यापी अखण्ड नामकीर्तन यज्ञ हुआ। किसी एक जमींदार के बगीचे में मिट्टी के नीचे दबे हुये युगल-किशोर के श्रीविग्रह ने बड़े बाबा को स्वप्नादेश दिया उन्हें लाने के लिए। श्री बड़े बाबा ने कीर्तन करते हुए उन्हें लाकर आश्रम में प्रतिष्ठित किया। अपनी अप्रकट लीला से कुछ दिन पहले उन्होंने श्रीललिता सखी माँ व मुझसे (श्रीबाबा जी महाशय से) कहा था कि बारह वर्ष के पश्चात् इस आश्रम में दो ब्राह्मण आयेंगे, उनकी सेवा करना।

इस भविष्यवाणी को सत्य होते हुये मैंने स्वयं देखा है। जिस दिन बारह वर्ष पूर्ण हुए उस दिन सुबह श्रीललिता सखी माँ कीर्तन करती हुई हम सबको लेकर गंगाजी के तट पर पहुँची। उस पार एक वृद्ध वैष्णव बाबाजी श्रीनिताइ-गौर लिए प्रतीक्षा कर रहे थे। इस पार से नौका भेजी गई। वृद्ध बाबाजी निताई-गौर को लेकर इस पार पहुँचे। उन्होंने क्रन्दन करते हुये बताया कि ठाकुर के आदेश अनुसार ही वे उन्हें यहाँ लाये हैं। आज भी वे दोनों (निताइ-गौर) सबकी पूजा स्वीकार कर के सभी को दर्शन दे रहे हैं। श्रील बाबाजी महाशय से इन वृत्तान्तों को सुनकर मैं आश्चर्यचकित हो गया था। मन में लालसा बढ़ गई और उनसे 'हरि सभा' के नृत्यरत अपूर्व गौर किशोर का वृत्तान्त सुनाने का आग्रह किया।

श्रीपाद आनन्द से उद्वेलित हो उठे और कहने लगे— "श्रीस्मृतिकंठ गोस्वामी, जो हरि सभा में गौर किशोर के

पुजारी हैं, का परम्परा से विद्वानों का वंश था। परम विद्वान् उनके पितामह श्रीब्रजनाथ विद्यारत्न की एक संस्कृत-पाठशाला थी। शास्त्रार्थ करने में वे अद्वितीय पंडित थे। परन्तु उनके सुयोग्य पुत्र श्रीमथुरानाथ जी विद्वान् होते हुये भी वैष्णव व वैष्णव ग्रन्थों का संग किया करते थे। कभी-कभी वे मण्डली बनाकर कीर्तन भी किया करते थे। एक दिन रात्रि के समय विद्यारत्नजी श्रीतर्क पंचानन महाशय के साथ शास्त्र आलोचना करते हुये जा रहे थे। 'पोड़ामाँ तला' के चौरास्ते पर पहुँचे तो पंचानन महाशय अपने घर की ओर चले गये। विद्यारत्नजी भी घर लौटने की सोच ही रहे थे कि उन्हें मधुर कीर्तन ध्वनि सुनाई दी। कीर्तन ध्वनि क्रमशः निकट आने लगी।

विद्यारत्न महाशय ने देखा एक अति मनोहर सुन्दर युवा पुरुष दोनों भुजा उठाये कीर्तन मण्डली के मध्य में नृत्य करते हुये चले जा रहे थे। उनके श्रीअंग से चन्द्रमा की चाँदनी छिटक रही थी। विद्यारत्न जी मंत्रमुग्ध होकर वहीं पर खड़े रह गये। युवक के रूप-लावण्य से प्रेम-विभोर हो गये, कीर्तन मण्डली धीरे-धीरे आगे बढ़ गई। आगे बढ़कर देखा श्रीविप्रदान शाँखारी अपने दरवाजे पर खड़े थे। उन्होंने उनसे कीर्तन मण्डली के बारे में पूछा तो पता चला कि उन्हें केवल कीर्तन की ध्वनि ही सुनाई दी थी। श्रीविद्यारत्न जी अपने घर पहुँचकर एकान्त स्थान पर बैठकर चिन्तन करने लगे।

कौन था वह सुन्दर युवा पुरुष ! उसकी अंग ज्योति से चारों दिशाएं चमक रही थीं। क्या रूप माधुरी थी—कमल पुष्प की भाँति सुन्दर नयन, प्रशस्त वक्षस्थल, क्षीण कटि रेशमी

पीताम्बर पहने हुये, आजानुलम्बित एक भुजा ऊपर को नृत्य भंगिमा में उठाये हुये, एक भुजा नीचे, एक चरण के ऊपर दूसरा चरण रखते हुए चले जा रहे थे। उनके श्रीअंग कान्ति के आगे स्वर्ण चम्पक पुष्प की छटा भी हार मान रही थी। नवद्वीप में उन्हें पहले तो कभी नहीं देखा, कहाँ गये वे कीर्तन करते हुये !

इस प्रकार सोचते हुये काफी समय बीत गया, इतने में किसी ने मधुर स्वर से पुकारा 'ब्रज, ओ ब्रज!' विद्यारत्नजी ने अपना नाम सुनकर आश्चर्य-चकित होकर आंगन की ओर देखा कि कीर्तन मण्डली के वही युवक अपनी अंग छटा से चारों दिशाएँ आलोकित करते हुए खड़े हैं। युवक अति मधुर स्वर से कहने लगे 'ब्रज मुझे भलीभाँति देख लो, मैं ही गौर हूँ। मैं उस पाठशाला में रहता हूँ। तुमने मुझे जिस प्रकार नृत्य करते हुए देखा था उसी मुद्रा में मेरी मूर्त्ति बनवाना। 'राम-सीता' मुहल्ले का जो बिहारी कुम्हार है, उसी से बनवाना, और किसी से नहीं" यह कहकर अन्तर्धान हो गये।

विद्यारत्नजी से और रहा नहीं गया। रोते-रोते आँगन में लोटपोट होने लगे। कहने लगे—"हा प्रभु ! क्या मुझे आप पुनः दर्शन देंगे। मैं विद्या के मद से मत्त था। मेरे अहंकार को चूर्ण करके आपने मुझे दर्शन दिया। हा प्रभु मुझ अपराधी को क्षमा करो। क्या आप मुझे पुनः उसी नृत्य रत मूर्त्ति में दर्शन देंगे !! इस प्रकार सारी रात वे विलाप करते रहे। प्रातः होते ही वे बिहारी कुम्हार के घर पहुँचे। बिहारी से कहा 'देखो ऐसी एक मूर्ति का निर्माण करना जो श्रीराधारानी जैसी

हो परन्तु पुरुष देहधारी। जिस प्रकार मैं खड़ा हूँ उसी प्रकार होनी चाहिये' कहकर दाँया हाथ ऊपर और बाँया नीचे की ओर करके नृत्य के मुद्रा में खड़े हो गये। बिहारी बोला—'पण्डितजी, मैं तो बरतन बनाता हूँ। आप किसी अन्य कारीगर से बनवाइये।' विद्यारत्नजी ने हँसकर कहा—'नहीं, तुम्हीं से बनवाने के लिये गौर ने स्वयं कहा है।' इस घटना के बाद विद्यारत्नजी बहुत बदल गये। पुत्र मथुरानाथ को पिता के इस परिवर्तन से आश्चर्य तथा प्रसन्नता हुई यद्यपि उन्हें इस घटना के विषय में कुछ भी पता नहीं था।

एक दिन बिहारी जब अपने घर पर बैठे मूर्त्ति के विषय में सोच विचार कर रहा था कि तभी किसी ने उसे पुकारा 'देखो बिहारी मैं आया हूँ। मुझे विद्यारत्न ने तुम्हारे पास भेजा है। तुम मेरा माप ले लो।' उसी अपूर्व सुन्दर युवा पुरुष ने प्रेम कण्ठ से कहा 'देखो मैं जिस तरह खड़ा हो रहा हूँ वैसा ही तैयार करना।' बिहारी ने धागा लाकर नाप ले लिया, गौरसुन्दर बोले 'बिहारी तुम्हारे घर में मुड़ी (मुरमुरा) हो तो ले आओ।' बिहारी ने भीतर से मुड़ी लाकर देखा कि वहाँ कोई नहीं था। बिहारी पागलों की तरह भागा और विद्यारत्न जी के घर पहुँच कर पूछने लगा 'कहाँ गये वह सुन्दर युवक गोसाँइ'।

सारी घटना बताते हुए बिहारी रोने लगा। श्रीविद्यारत्न जी ने उसे हृदय से लगा लिया। कहने लगे 'तुम भाग्यवान हो, जो गौर ने तुम्हें दर्शन दिया है, तुमसे खाने के लिए मुड़ी माँगा है उन्होंने। तुम पर उनकी कितनी करुणा है।' बिहारी ने

उन्हें नाप का धागा भी दिखाया। तभी से विद्यारत्नजी सर्वदा भाव-विभोर रहने लगे, पुत्र मथुरानाथ ने अन्तराल से दोनों की बातचीत सुनकर पिता से सारा वृत्तान्त पूछा व गौर की अहैतुकी करुणा से गद्-गद् हो गए।

अब तो पिता पुत्र में गौर-लीला का आस्वादन होने लगा। कुछ ही दिनों में मूर्ति तैयार हो गई। आगामी वैशाखी पूर्णिमा के दिन प्रतिष्ठा का दिन निश्चय हो गया।

विद्यारत्न महाशय ने पुत्र मथुरानाथ के द्वारा श्रीविग्रह की प्रतिष्ठा करवाई। महा-महोत्सव हुआ। सन्ध्या के समय चारों ओर देखने गए कि कोई भक्त रह तो नहीं गया, विग्रह निर्माता बिहारी को एक कदम के वृक्ष के नीचे चुपचाप खड़े हुए देखकर पूछा—'बिहारी! तुमने प्रसाद पाया है कि नहीं? तुम्हारे पैसे मैं कल चुका दूँगा, आज बहुत भीड़ है।' बिहारी निस्पन्द चुपचाप खड़ा रहा। विद्यारत्नजी ने जैसे ही उसका हाथ पकड़ा वह गिर पड़ा, भादुड़ी महाशय, जिन्होंने उत्सव का सारा भार उठाया था, व पाठशाला के छात्रगण दौड़ आए। सभी ने देखा कि बिहारी के प्राण कभी के निकल चुके थे। सभी ने मिलकर उसकी देह पुष्प मालाओं से सजाकर कीर्तन करते हुये गंगाजी के तट पर ले गये व उसी में बहा दिया। बिहारी के देहान्त होने पर विद्यारत्न जी बहुत ही उदास रहने लगे। वह पाठशाला ही गौर-मन्दिर बन गई। विद्यारत्न महाशय अपना निवास स्थान छोड़कर उसी के पीछे नया घर बनवाकर रहने लगे व गौर की सेवा करने लगे। कुछ दिन के बाद एक साधु बाबा आकर उन्हें युगलकिशोर के श्रीविग्रह सेवा के लिए दे गये।

विद्यारत्नजी के देहान्त के बाद मथुरानाथ जी तथा उनके बाद उनके तृतीय पुत्र श्रीस्मृतिकण्ठ गोस्वामी जी आजकल गौर की सेवा करते हैं।' श्रीपाद के मुख से गौरसुन्दर की अहैतुकी करुणा गाथा सुनकर मैं व्याकुल हृदय से रोने लगा तो श्रीपाद मुझसे कहने लगे 'क्यों मैना पाखी ! रो रहे हो ? उठो, रोने के दिन तो बहुत पड़े हैं।' उस दिन इसका अर्थ तो नहीं समझा था पर आज समझ में आ रहा है।

उस दिन 'वनगाँव' निवासी श्रीहरिदास दादा के घर श्रील बाबाजी महाशय का परिकर सहित निमन्त्रण था। श्रीगुरु सेवा ही उनका जीवन सर्वस्व था। श्रीगुरु सेवा के लिये उनका तन-मन-धन समर्पित था। सन्ध्या आरति, रूप-अभिसार कीर्तन के पश्चात् सब लोग उनके घर प्रसाद पाने गये। प्रसाद पाने के बाद हरिदादा ने श्रीपाद को एक 'वेलवेट' की सुन्दर कुर्सी पर बिठाकर प्रसादी ताम्बूल सेवन कराने लगे। उनके विश्राम के निमित्त नया पलंग खरीद कर लाये थे। हरिदादा ने हाथ जोड़कर श्रीपाद से उसी पर विश्राम करने के लिए विनती की। श्रील बाबाजी महाशय ने 'भक्तवाँछा है, भक्त-वाँछा।' कहकर प्रसन्नता से सेवा स्वीकार की।

श्रीपाद विश्राम करने लगे। हम लोग पलंग के नीचे एक दरी बिछाकर सो गये। हरिदादा ने सारी रात जागकर खड़े-खड़े श्रीपाद को पंखा किया। उस दिन मैं श्रील बाबाजी महाशय के साथ ही बहुत जल्दी उठ गया। श्रीपाद ने प्रसन्न होकर मुझसे कहा 'आज तो जल्दी उठ गये, नहीं तो बाल पकड़ कर उठा देता।' शौचादि के बाद श्रीपाद बगल में चादर दबाये हम सबको लेकर आश्रम लौट आये।

मुरारी दा, गोपी दा, व तारक दा नाम करते हुये परिक्रमा आरम्भ ही कर रहे थे कि श्रील बाबाजी महाशय ने प्रभाती सुर में नाम आरम्भ किया और मन्दिर परिक्रमा करने लगे। उनकी अपूर्व प्रेमकण्ठ ध्वनि से चारों दिशाएँ मुखरित होने लगीं। चारों ओर से लोग आकर्षित होकर आने लगे। श्रीपाद अपूर्व आँखर दे रहे थे—"भज रे दिन बये जाएरे, भज निताइ गौर राधे श्याम। साध्य-साधन-निर्णय करा नाम॥ पागलेर प्राणाराम, आमादेर गलाय पराबे बले, कत साधेर गाँथा नाम। प्राण भरे बल भाइरे निताइ गौर राधे श्याम। हरे कृष्ण हरे राम॥ प्रायः ग्यारह बजे नाम समाप्त करके श्रीपाद दण्डवत् प्रणाम कर अपनी भजन कुटी में चले गये।

सुनने में आया कि श्रीपाद उसी दिन सन्ध्या के समय ट्रेन से कलकत्ता रवाना होंगे। एक व्यक्ति आकर मुझे डाँट-डपट करने लगे "आज से तुम्हारे मजे के दिन खत्म। श्रील बाबाजी महाशय के संग केवल उनके शिष्य या उनके परिकर ही जा सकते हैं। लिस्ट में तुम्हारा नाम नहीं है। केवल रोने से ही काम नहीं चलता।

इतने लोगों ने उनसे मन्त्र लिया पर तुम ही एक हो जो अपने आपको ब्राह्मण मानकर अड़े हुये हो। न तो तुम्हें कीर्तन करना आता और न ही तुम हमारे गुरु भाई हो। भला तुम्हें वे क्यों अपने साथ ले जायेंगे। रोज उनके पलंग पर सोना, उनके साथ बैठकर बढ़िया-बढ़िया प्रसाद पाना, आज से सब लाड़ खत्म। क्या समझ रखा है उन्हें।" उनकी डाँट से मुझे दुख तो हुआ पर श्रील बाबाजी महाशय से बिछुड़ने की बात

सोचकर मेरा हृदय दुख से चूर-चूर होने लगा। उनके कमरे में झाँककर देखा वे बहुत ही व्यस्त थे। दर्शनार्थियों की भीड़ लगी हुई थी। मैं उनके कमरे के पीछे झाड़ियों में बैठकर रोने लगा। वहाँ पर कोई आता जाता नहीं था। सो किसी ने मुझे देखा नहीं।

जाने का समय हो चुका था। श्रील बाबाजी महाशय के ठाकुरजी व परिकर वृन्द सभी गाड़ी पर अपना-अपना सामान लेकर बैठ गये। श्रीपाद श्रीविग्रहों को व सखी माँ को दण्डवत करके गाड़ी में चढ़ने लगे तो परिकरों से पूछा 'ब्रह्मचारी कहाँ है?' उसी व्यक्ति ने उत्तर दिया 'उसने तो मन्त्र नहीं लिया, शिष्य भी नहीं बना, वह हमारा गुरुभाई नहीं है, अतः उसका नाम लिस्ट में नहीं लिखा गया।'

श्रील बाबाजी महाशय कुछ रुष्ट होकर बोले "तुम बड़े शिष्य बने हो, बलिहारी तुम्हारी गुरुभक्ति!! यह कहकर वे लौट आये। पहले मेरा नाम लेकर मुझे पुकारा उन्होंने। उत्तर न मिलने पर स्वयं कमरे के पीछे आकर हाथ पकड़ कर मुझे उठाया व दुलार करते हुये पूछा—"क्या बात है? क्यों रो रहे हो?" मैंने उन्हें सब कुछ बता दिया। "अच्छा तो यह बात है, मैं उसे अच्छी तरह मजा चखाऊँगा। तुम मेरे साथ रहना, मेरी गाड़ी पर, मेरे पास ही बैठना" यह कहते हुये अपने साथ ले गये। मेरा हृदय आनन्द से भर गया। धीरे-२ जाकर गाड़ी में श्रीपाद के पास बैठ गया। जिन्होंने मुझे डाँटा था वे पिछली गाड़ी पर बैठे गम्भीर होकर मुझे देख रहे थे। मुझ नटखट से रहा नहीं गया, चुपके से उन्हें अँगूठा दिखा दिया।

कुछ समय बाद रेलगाड़ी आने पर हम सब एक खाली डिब्बे में चढ़े। श्रीपाद मुझे स्वयं अपने साथ ले जा रहे हैं, यह सोच-२ कर मैं आनन्द में मग्न हो रहा था। जिस व्यक्ति ने मुझे डाँटा था, उनसे व्यंग्य पूर्वक हँसते हुए मैं कहने लगा 'क्यों जी मेरा नाम लिस्ट में तो नहीं है और न ही मैं श्रीपाद का शिष्य हूँ, अब कैसी रही।" यह बात सुनकर श्रीबाबाजी महाशय मेरे गाल पर चपत लगाकर हँसते हुये बोले, "चुप करो। मौका पड़ने पर यह भी तुम्हें मजा चखा सकता है, आखिर ये तुम से बड़े हैं। जब तक हृदय में द्वेष, हिंसा व ईर्ष्या विद्यमान है तबतक मनुष्य साधु तो दूर मनुष्य कहलाने के भी योग्य नहीं है।

भक्तिमार्ग में दीनता ही प्रधान है, इसके बिना भक्ति महारानी की कृपा नहीं होती। हृदय में अहंकार, दम्भ एवं गर्व के होने पर सारा किया कराया बेकार हो जाता है। उत्तम जाति वाले को तो जाति का अभिमान नहीं रखना चाहिये एवं नीच जाति वाले व्यक्ति को हमेशा अपने को नीच ही मानना चाहिये। ठाकुरजी एवं श्रीगुरुदेव ने कृपा पूर्वक हमें नाम, मंत्र व वेश प्रदान किया है। जानते हो वैष्णव संन्यास (भेक) का वास्तविक तात्पर्य क्या है ? —'पुरुष-अभिमान भूलकर कंगाल बनकर, समस्त साधु व वैष्णवों के चरणों में लोटते ही रहना।' वेशाश्रय के पश्चात् ब्राह्मण भी अपने यज्ञोपवीत का परित्याग करके अविचार पूर्वक सबके चरण की रज ले सकते हैं।

इसीलिए हम लोगों का कंगाल वेश है। जाति, विद्या, रूप, बड़प्पन व यौवन इन पाँचोंका अभिमान त्यागने पर ही भक्ति-

देवी आगमन करती हैं। कहा गया है, "वैष्णव हइते दिल मने बड़ साध। तृणादपि याजने पड़े गैल बाद" —अर्थात् वैष्णव होने की मन में बड़ी साध थी परन्तु तृणादपि श्लोक* की शिक्षा का विचार करने पर मन की आशा मन में रह गयी। आजकल पग-२ में सब कहते हैं—"हम विरक्त वैष्णव हैं और वे गृहस्थी हैं। यह बड़ी-२ बातें सुनने में आती हैं। भला कौन-सा त्याग किया है, अच्छा खाने को चाहिये, अच्छा पहनने को चाहिये, सुख के सभी साधन चाहिये, इन सबके बिना मिजाज गर्म हो जाता है।

घर में रहते जिन्होंने स्नेह पूर्वक पालन पोषण किया उन गुरुजनों व माता-पिता की सेवा तो की नहीं, पितृ ऋण व मातृ ऋण तो चुकाया नहीं, सोचा मठ या आश्रम में गुरुदेव की शरीर व मन से सेवा करेंगे किन्तु वह भी कहाँ हुई। चाहे किसी अन्य की सेवा हो अथवा न हो, अपनी सेवा ठीक प्रकार होनी चाहिये। माता-पिता एवं गुरुकी सेवाका परित्याग करके अहंकार की मूर्ति बन बैठे। कुछ लोग धर्म की माँ बनाते हैं। इस बारे में एक कहानी सुनाता हूँ—

---

* तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरि॥

तिनके से भी स्वयं को नीच माने एवं वृक्ष के समान सहन शील हो। स्वयं अमानी होकर दूसरों को मान देते हुये सदा श्रीहरि कीर्तन करना चाहिये।

"एक व्यक्ति माता-पिता को त्यागकर नवद्वीप धाम में भेक लेकर बाबाजी हो गया। अपनी जननी के पास वे नहीं जाते थे। उनका कहना था कि वह तो माया है, माया का संसार छोड़ आया, फिर क्यों वहाँ जाऊँ। एक दिन वे साग सब्जी से भरी डलिया सिर पर रखे जा रहे थे, उनसे पूछा भक्त महाशय सिर पर डलिया कैसी। तब मन्द-२ मुसकराते हुए वे बोले, इस धाम में मेरी एक धर्म माँ है, उन्हीं की सेवा के लिए यह सामान ले जा रहा हूँ। मैंने कहा वाह-२, आपकी जो अधर्म माँ, जिन्होंने आपको जन्म दिया, उन्हें त्यागे कितने दिन हो गये। धर्म की माँ पाकर क्या अधर्म माँ को छोड़ दिया।" यह सुनकर हम सब लोग जोर से हँस पड़े।

बाबाजी महाशय पुनः कहने लगे—"संसार अगर श्रीकृष्ण भजन के अनुकूल न हो तभी, उसे छोड़ सकते हो। अधिकतर लोग भजन में अनुकूलता हेतु संसार छोड़कर आते तो हैं परन्तु दम्भ की मूर्ति बन बैठते हैं। कलिकाल में वैराग्य करना सहज नहीं। जो लोग कुछ विशेष वैराग्य करने जाते हैं, कठिन बीमारियाँ उन्हें घेर लेती हैं, अन्त में औषधि, पथ्य आदि उनके जीवन का अंग बन जाता है।

पहले तो मन में सोचते हैं कि सनातन गोस्वामी की तरह प्रतिदिन एक-२ वृक्ष के नीचे वास करूँगा, श्रीरघुनाथदास गोस्वामी जी की तरह मट्ठा पीकर भजन करूँगा। दो चार दिन में ही सब धरा रह जाता है। कारण यह है कि इस कलियुग में मनुष्यों के प्राण अन्न पर आधारित हैं, निद्रालु स्वभाव है, मन्द भाग्य है एवं शरीर रोगों का घर है। इन सबके रहते

हुए भला वैराग्य कैसे सम्भव है। इसीलिये जितना भी सम्भव हो सके, समय से प्रसाद पाओ व नाम-कीर्तन करो। सात्त्विक भोजन व बालों में तेल न लगाना—क्या यही साधुता का लक्षण है ?"

तब मैं हँसकर बोला, पर मैं तो साधू नहीं बनूँगा केवल आपके पास ही रहना चाहूँगा। बाबाजी महाशय ने तब प्यार से मेरे गाल पर चपत लगाई। हमारे साथ चारुदा, बलाइ दा, पाँचू दा व पाँचू दा की पत्नी इत्यादि थे। कुछ दिनों से श्रीपाद उनके निवास स्थान पर रहकर कीर्तन प्रचार करते थे।

पाँचूदा को एकबार देखकर फिर मेरी ओर देखकर श्रील बाबाजी महाशय ने पूछा—"अच्छा बताओ तो—जो लोग संसार छोड़कर साधु बने हैं, उनमें और गृहस्थियों में श्रेष्ठ कौन है ?" मैंने सहज में ही उत्तर दिया 'क्यों, जिन्होंने संसार छोड़ा है, वे ही श्रेष्ठ होंगे।' श्रीपाद हँसकर कहने लगे—"अच्छा जरा सोचो तो जो स्त्री, पुत्र, कन्या, माता-पिता के भय से, संसारी माया के डर से भाग कर घर छोड़ते हैं; बाद में उनकी खोज-खबर तक नहीं लेते। और जो गृहस्थी होते हैं वे संसार की माया से डरते नहीं हैं। स्त्री-पुत्र-कन्या को अपने साथ लेकर माया साथ लेकर श्रीधाम वृन्दावन, नवद्वीप दर्शन करने आते हैं, साधुओं की सेवा करते हैं, उनकी चरण रज लेकर अपने को धन्य मानते हैं।

इस प्रकार जो माया से डरते हैं और जो माया को साथ लेकर ही भगवद् भजन करते हैं—उनमें से बड़ा कौन है ?"

तब मैं अच्छी तरह उनकी बात समझ गया और उत्तर दिया कि साधु-वैष्णव सेवी गृहस्थी भक्त ही श्रेष्ठ हैं। श्रीपाद पुनः कहने लगे—देखना इस बार हम लोग गृहस्थियों के घर जाकर रहेंगे। वे पति-पत्नी, पुत्र-कन्या सभी मिलकर प्रभु की सेवा करते हैं। पति पत्नी की मिलित साधु-वैष्णव सेवा भजन के लिए अनुकूल होती है। वे प्राण मन से सेवा करते हैं। वे स्वयं भोजन न करके ठाकुर को उत्तम-उत्तम वस्तु भोग लगाकर हम लोगों को पवाते हैं। साधु-वैष्णवों के लिये उनके द्वार सर्वदा खुले रहते हैं। उनकी सेवा के निमित्त उनके मन में किसी प्रकार का संकोच नहीं होता, वे कितने विशाल हृदय वाले होते हैं। क्यों नहीं वे हमसे श्रेष्ठ होंगे। चाहे त्यागी हो या गृहस्थी हो, जिसके हृदय में भक्ति है, वही बड़ा होता है। घर छोड़कर, त्यागी होते हुये भी जिनमें कामना-वासना होती है उसे 'फल्गु' वैराग्य कहते हैं।

मैंने पूछा 'फल्गु' वैराग्य किसे कहते हैं?" उन्होंने हँसते हुये कहा "फल्गु नदी अन्तःसलिला है। अर्थात् ऊपर से बिल्कुल सूखी, जल का लेशमात्र नहीं दिखाई देता परन्तु जरा सी मिट्टी खोदने पर पानी निकल आता है। उसी प्रकार बहुत से लोगों में बाहर से तो वैराग्य दीखता है पर हृदय में भोग वासना फल्गु की तरह छिपी हुई होती है। वे कपटी होते हैं। श्रीमन् महाप्रभु जी की वाणी है—

'ज्ञान वैराग्य नहे भक्तिर अंग।' यदि कोई श्रीमन्महाप्रभु जी का अनन्य भक्त हो जाय तो वैराग्य उसके लिए कोई विशेष बड़ी बात नहीं है। उनकी कृपा से सब सम्भव है। परन्तु

वैराग्य 'अकैतव' अर्थात् निष्कपट होनी चाहिए। महापुरुषों की वाणी है "महाप्रभुर भक्तगणेर वैराग्य प्रधान। जाहा देखि तुष्ट हन गौर भगवान्॥" भक्ति से सब कुछ सम्भव है। श्रीकृष्ण अनुराग से विषयों के प्रति स्वयं ही वैराग्य हो जाता है।"

"मेरे श्रीगुरुदेव की कथा सुनो। एकबार भक्तों ने उन्हें हजार रुपये की कीमती शाल पहनायी। शाल हाथ में लेकर उन्होंने उसकी बार-बार प्रशंसा की। फिर जानते हो उन्होंने क्या किया। एक दियासलाई जलाकर उसे जला दिया। उनका कहना था कि उसे ओढ़ कर अहंकार होता है, कृष्ण-भक्ति नहीं होतो जो भी विषय या वस्तु कृष्णभक्ति के अनुकूल न होती उसका वे तत्क्षण परित्याग कर देते थे। पुरी झाँझ-पीटा मठ में जब हम लोग रहते थे उस समय ठाकुर सेवा बड़ी कठिनाई से चलती थी। भिक्षा में थोड़े से चावल व दो-चार पैसे जो भी मिलता था उसी से निर्वाह होता था। उसी से साधु-वैष्णव सेवा भी चलती थी।

महीने में पच्चीस दिन केवल चावल और सजना पेड़ की पत्तियों का साग बनता था कभी कभी श्रीजगन्नाथ जी का प्रसाद मिल जाता था निमन्त्रण में। उन्हीं दिनों एक भक्त ने आकर श्री बड़े बाबाजी महाशय को एक थैली में पचास-हजार रुपये दिये। बाबा ने यह रुपया ठाकुरजी को देने के लिए कहा तो उसने उत्तर दिया—

"मैं ठाकुर-वाकुर किसी को नहीं जानता, न ही मुझे उसकी दरकार है। मैं आपही को जानता हूँ, आपको ही दिया। बाबा

बहुत गम्भीर हो गये और सेवक को आदेश दिया उसे आश्रम से बाहर निकालने का तथा जहाँ पर उसने थैली रखी थी वहाँ गोबर से लिपवाया। कहने लगे "ठाकुरजी को नहीं मानता और मुझे भक्ति दिखाने आया है। ऐसे भक्ति विरोधियों के दर्शन करने पर भी मन मलिन हो जाता है। उसके उस तामसिक धन को लेना तो दूर, सुनने पर भी मेरे प्राण सूख जाते हैं।" देखो क्या वैराग्य था उनका, ऐसा वैराग्य मनुष्यों में सम्भव नहीं। जो भगवान की भक्ति नहीं करते उनका दान भी वे ग्रहण नहीं करते थे।

एक कहावत है "घर में हुई खटपट, चल बाबाजी के मठ" अर्थात् घर पर माँ-बाप, पत्नी के साथ झगड़ा हुआ और पहुँच गए मठ में। यह कोई वैराग्य नहीं है। पर इसमें भी कल्याण होता हैं। साधु-वैष्णवोंके दर्शन होते हैं। भगवद् नाम करने का अभ्यास होता है। मठ में ठाकुर सेवा, भगवद् नाम करते-करते चित्तशुद्धि होती है। तिलक धारण, महाप्रसाद, भगवद् कथा सुनने को मिलना यह भी परम भाग्य से मिलता है।" इसी प्रकार कितने ही सुन्दर-सुन्दर उपदेश सुनते-सुनते गाड़ी 'हावड़ा' स्टेशन आ पहुँची।

हम लोग सब श्रीपाँचूदा के घर पहुँचे, नीचे के कमरों में परिकर वृन्द ठहरे। ऊपर के एक कमरे में श्रील बाबाजी महाशय के ठहरने के लिये बन्दोबस्त किया गया था। मैं भी उनके साथ ऊपर गया। कमरे में श्रीतुलसीजी विद्यमान थीं। श्रीपाद आकर एक कुर्सी पर बैठे। पाँचूदा व उनकी पत्नी उनके लिए प्रसादी मरिच जल व गंगाजल ले आये। श्रीपाद ने आधा

पाकर मेरे हाथ में गिलास थमा दिया। मैं एकदम से सारा पी गया। रमणदा व और लोग खूब नाराज होकर मुझसे कहने लगे—सारा अधरामृत स्वयं ही पी गये, हमें नहीं दिया।" पाँचूदा ने उन्हें शान्त किया। नीचे सभी के लिए मरिच जल की व्यवस्था की गई थी।

श्रीपाद के संग हम लोग चार, पाँच जन गंगाजी स्नान करने गये। मेघलाल दादा के साथ मैं भी श्रीपाद को तेल लगाने लगा। उन्होंने मुझसे पूछा—' मेरे साथ पहली बार कलकत्ता आये हो ?" "नहीं, कुछ वर्ष पहले हृषिकेशदा के साथ आपको ढूँढ़ते हुए आया था। उन दिनों आप 'शील' बाबू के यहाँ रहते थे। सिंथि में आप उन दिनों नवरात्र अखंड नाम यज्ञ करने गये हुए थे। आपके दर्शन न पाकर हम लोग सिंथि पहुँचे थे। मेरे मझले भाई भी वहाँ थे। उन्होंने मुझे वहाँ से भगा दिया था। उसके बाद कलकत्ता आना न हुआ।

श्रीपाद ने पहले गंगाजी को प्रणाम किया फिर मस्तक पर गंगाजल का स्पर्श किया। उसके बाद वक्ष पर्यन्त जल में प्रवेश करके स्नान करने लगे। समस्त शरीर कम्पित होने लगा गंगाजी के स्पर्श मात्र से ही। न जाने कौन से भाव में विभोर हो गये। प्रायः २५ मिनट के बाद जल से निकल कर डोर-कौपीन, बहिर्वास धारण करके घाट पर बैठे, ब्राह्मण से चरणामृत लिया। वहाँ से रास्ते में एक मन्दिर पर प्रणाम करके माला जपते हुए पाँचुदा के घर लौट आये।

श्रीपाद आह्निक करने बैठे। आह्निक के समय सदा की भाँति क्रन्दन और हुँकार चलता रहा। प्रायः तीन बजे उन्होंने

प्रसाद पाया। थोड़ी देर विश्राम करके पुन: गंगाजी के घाट पर जा बैठे। हम लोग दो तीन जने केवल उनके साथ थे। धीरे-धीरे भक्त समागम होने लगा। इतने में तिनुदा ने आकर दण्डवत प्रणाम किया। श्रीपाद से पूछा—'हमारे यहाँ आप कब नाम यज्ञ की तारीख देंगे ?'

श्रील बाबाजी महाशय ने उत्तर दिया—'अच्छा कल ही तुम्हारे वहाँ अधिवास कीर्तन और परसों नाम कीर्तन होगा।' इतने में चारुदा, बलाइदा, माखनदा, नन्ददा व बहुत से भक्त अपने-अपने कार्यालय से छुट्टी होते ही श्रीपाद के दर्शन निमित्त आ पहुँचे। सभी भक्तों को लेकर श्रीपाद पाँचुदा के घर आ पहुँचे तो आरती होने लगी। श्रील युगल दादा भी अपनी दुकान बन्द करके आ पहुँचे। वे गृहस्थ होते हुए भी श्रीपाद का मधुमय संग प्राप्त करने के लिए रात को उन्हीं के पास रह जाते थे।

श्रील बाबाजी महाशय ने कीर्तन आरम्भ किया। रात के बारह बजे तक कीर्तन हुआ। प्रसाद पाकर सबने विश्राम किया। भोर होते ही तिनुदा श्रीपाद को ले जाने के लिए आ पहुंचे। तिनुदा के घर श्रीपाद श्रीगौर किशोर की अभिराम (सुन्दर) श्रीमूर्त्ति-चित्रपट दर्शन करके परम आनन्दित हुये। श्रीयुगलकिशोर, गोपालजी तथा श्रीशालग्राम जी को प्रणाम दण्डवत करके एक कुर्सी पर बैठे। तिनुदा की माताजी, भाई, बहन सबने आकर उन्हें दण्डवत प्रणाम किया। मुझे लगा इनके घर वाले श्रीपाद के अति प्रियजन हैं।

नाट मन्दिर में कीर्तन की तैयारी हो रही थी। बड़े-बड़े

चित्रपट, वृन्दा महारानी, मंगल कलश, खुन्ति झण्डियों से सजाया जा रहा था। नवद्वीप से श्रीअद्वैत काकाजी भी आये हुए थे। श्रीदिनेश चन्द्र भट्टाचार्य (सखी माँ के छोटे भाई) महाशय—तिनुदा के चाचाजी भी नाम यज्ञ के कारण आये हुये थे। श्रीपाद के संग उनका सख्य-भाव था। उन्हें श्रीबड़े बाबा का स्नेह यथेष्ट मिला हुआ था। श्री बड़े बाबा बहुत बार इस घर में आकर ठहरा करते थे। तिनुदा के पिताजी श्रीदीन-बन्धु वेदान्तरत्नजी (सखी माँ के बड़े भाई) ने श्री बड़े बाबा से मन्त्र दीक्षा ली थी। उनके देहान्त के बाद तिनुदा ही ठाकुर सेवा किया करते थे।

श्रील बाबाजी महाशय ने मुझसे कहा कि श्रीगौरकिशोर का वह सुन्दर चित्रपट बड़े बाबा के साथ ही रहता था। श्री बड़े बाबा स्वयं उन्हें सेवा के लिए दे गये थे। वह स्थान श्री बड़े बाबा की श्रीचरणांकित भूमि थी। वहाँ पर उन्होंने अनेक कीर्तन नृत्य गीत किये हुये थे। तभी तो उन लोगों की इतनी गाढ़ी प्रीति थी उनके परिकरों के प्रति। वे प्रसाद के बिना कुछ भोजन नहीं किया करते थे। सर्वदा ग्रन्थ-पाठ, कीर्तन, ठाकुर सेवा, उत्सव आदि में जीवन व्यतीत करते थे।

कलकत्ते में रहते हुए श्रीपाद को सप्ताह में एक दिन यहाँ अवश्य आना पड़ता था। श्रीपाद अपने साथ मुझे व दो चार प्रिय भक्तों को लेकर गंगाजी स्नान करके आये। आह्निक के समय मैं पंखा करने लगा। चारु दादा मेरे प्रति इशारा करते हुये श्रीपाद से बोले "इस छोकरे ने आपका संग लिया है देख रहा हूँ आपसे बहुत प्रेम है इसे। आपका आकर्षण ही ऐसा है

जिससे कोई भी दूर नहीं रह सकता। घर, द्वार, नौकरी, बन्धु, सगे-सम्बन्धी कुछ भी अच्छा नहीं लगता। मन कहता है आप के संग गोंद की तरह हर समय चिपक कर रह जाऊँ।" चारुदा सख्य भाव में इस तरह हास परिहास कर रहे थे। उनकी अपूर्व गुरुनिष्ठा थी, जब श्रीपाद के संग कीर्तन करते थे तब सम्पूर्ण भिन्न स्वरूप में होते थे। श्रीपाद के कीर्तन के प्रधान संगी श्रीचारुदा, बलाईदा, युगलदा व श्रीअद्वैत काकाजी होते थे। सभी तिनुदा के स्नेह एवं प्रीति से नाम यज्ञ के निमित्त आ जुटे थे। स्वयं श्रीगुरुदेव श्रीनाम यज्ञ का अधिवास कीर्तन करेंगे, अतः सभी भक्तों का समागम हुआ था।

मैं श्रीपाद के मुखारविन्द के दर्शन करते हुये उन्हें पंखा कर रहा था व आनन्द मग्न हो रहा था। श्रीपाद तिलक धारण कर रहे थे। तिलक धारण करने के पश्चात् उन्होंने मेरे हाथ में गोपी चन्दन देते हुए तिलक करने के लिये कहा। मैंने सुन्दर रूप से तिलक धारण किया। मेरे बड़े सुन्दर लम्बे-लम्बे केश थे, उन्हें बड़े यत्न से संवार कर दर्पण में मुख देखने लगा। तभी श्रील बाबाजी महाशय ने एक डिब्बी से 'श्रीजी' का प्रसादी सिन्दूर बिन्दु स्वयं लगाकर मुझसे बोले—

'आ तुझे भी श्रीजी का सिन्दूर पहना दूँ, सुन्दर दिखेगा।' यह कहते हुए सिन्दूर पहना दिया। चारुदा हँसकर तिनुदा से बोले—"तिनु जैसे तुम श्रीपाद के प्रिय हो उसी तरह यह लड़का भी श्रीपाद को अति प्रिय है, देख रहा हूँ। श्रीपाद के आन्हिक के बाद हम सब प्रायः साठ जने प्रसाद पाने बैठे।

चारुदा, युगलदा ध्वनि देने लगे। श्रीपाद ने भी एक बहुत सुन्दर ध्वनि दी।

वह अपूर्व ध्वनि आज तक मेरे हृदय पट पर अंकित है। चारों ओर भक्त मण्डली में खड़े होकर परिकर वृन्दों से वेष्टित श्रीपाद की प्रसाद भोजन लीला का दर्शन कर रहे थे, सभी की दृष्टि उनके मुखारविन्द पर थी—क्या अद्‌भुत दृश्य था। प्रसाद पाते-पाते स्थिर होकर नयन मूँदकर श्रीपाद ध्वनि देने लगे—

जारा एकबार, गौर नटवर, नयन कोनेते हेरे।
तारा सतीपना, राखिए आपना आसिते पारे कि घरे॥
शुनेछि पुराणे, राधिकार सने, ताँहार प्रेमेर कथा।
तिल आध जारे, ना देखिले मरे;से केन आसिबे हेथा॥
प्रेमे ऋणी हइया, एल पलाइया, यमुना हइया पार।
गोपकूल छाड़ि, एल नदेपुरी, द्विजकूले अवतार॥
इहा यदि जाने, ब्रजगोपी जने, एसेछे द्विजेर पुरी।
नागरालि पना,तबे जाबे जाना,भेंगे देबे भारि-भुरि॥
गोकुल नगरे, कलंक सागरे, भासाएछे काल बँधू।
देशे के ना जाने, चोरा-कानू बले, बिदेशे हयेछे साधू॥
राधा नाम जार, सर्बगुण सार, प्रेममयी प्रेम दासी।
'लोचन' ए छार, होते चाय तार, दासानुदासेर दासी॥

भावार्थ—गौर नटवर जिसे भी एक बार नयन कोने से देख लेते हैं भला क्या वह अपना सतीत्व रखकर, घर में वापिस आ सकता है, क्योंकि आधे क्षण भी उनके अदर्शन से प्राणान्तक कष्ट होने लगता है। पुराणों में राधारानी के साथ उनके प्रेम की कथा सुनी है कि वे (किशोरीजी) आधे क्षण भी

प्रियतम को देखे बिना नहीं रह सकती थी। वे (श्याम) यहाँ (नवद्वीप) में क्यों आये, निश्चय ही गोपीजनके प्रेम के ऋणिया होकर वे जमुना पार करके भाग आये और गोप कुल छोड़कर नदिया पुरी में द्विजकुल में अवतरित हुए। गोपीजन यदि जानती कि प्रियतम ब्राह्मणों की नगरी में भाग आये हैं तो उनकी सारी चतुरता को भंग कर देती; उन्हें भला क्या पता था कि गोपियों को कलंक सागर में डुबाकर, 'काला बन्धु', 'चोर कानु' यहाँ विदेश में आकर साधु बन गया है। सर्वगुणों की सार जो 'राधा' नामक व्रजगोपियों की मुकुटमणि स्वरूपा हैं ऐसी प्रेममयी की प्रेममयी दासी जनों के दासानुदासों की दासी होने की 'लोचन जी' कामना करते हैं।

श्रीपाद ध्वनि देते-देते भाव विभोर हो गए। समस्त शरीर थर-थर कंपित होने लगा, चारों दिशाएँ 'हरिबोल' ध्वनि से गूँज उठीं। श्रीपाद के मधुमय संग के आनन्द का मैं कैसे वर्णन करूँ !! सभी का प्रसाद पाना बन्द हो गया था। श्रीपाद भाव सम्वरण करके पुनः प्रसाद पाने लगे। तीन बज गये। चारुदा मुझसे बहुत स्नेह करने लगे श्रीपाद के प्रति बोलने लगे— 'हमें आपने बड़ो अवस्था में स्वीकार किया, चाहते हुए भी आपकी भरपूर सेवा नहीं कर पाते। तिनु, जीवन जैसे यह छोटे-छोटे बालक आपकी खूब सेवा करेंगे। श्रीपाद उनकी बात सुनकर हँसने लगे।

श्रीपाद के कुर्सी पर बैठने पर हम लोगों ने उन्हें सुगन्धित पुष्प मालाओं से विभूषित किया। तिनुदा ने प्रसादी पान लाकर उन्हें दिया। श्रीपाद पान चबाने लगे। जब चारुदा ने

उनके आगे हाथ फैलाया तो उन्हें उनका अधरामृत पान प्रसाद मिला। मैंने भी अपना हाथ आगे कर दिया और मुझे उनका प्रसादी पान मिल गया। भक्तजन आनन्द मग्न होकर उस मधुमय लीला के दर्शन कर रहे थे। श्रीपाद कहने लगे "तिनु, जाओ सबको प्रसाद दो। चलो चारु हम लोग जाकर विश्राम करें नहीं तो कोई प्रसाद नहीं पायेगा।"

श्रीपाद पलंग पर लेट गये। चारुदा, बलाइदा और मैं उनके पैर की तरफ एक कम्बल बिछाकर लेट गये। श्रीपाद लेटते ही सो जाते थे और ठीक एक घण्टे के बाद उठ जाते थे। रात्रि को सोते हुए चाहे दो बज जायें या तीन, चार बजे के अवश्य उठ जाते थे। उनके जैसा इस प्रकार निद्रा-संयमी पुरुष कहीं नहीं देखा। उनके सामने विभिन्न प्रकार के प्रसाद—राजभोग, रसगुल्ला, घृतान्न, सन्देश, विविध मिष्ठान्न रखा जाता था जो कि राजाओं के लिए भी एक ही समय एकत्रित करना कठिन है परन्तु श्रीश्री बाबाजी महाशय केवल रसा व अन्न (चावल) प्रसाद की मर्यादा रखने के निमित्त समस्त प्रसाद केवल उँगली से स्पर्श करके कणिका मात्र ग्रहण करते थे। बढ़िया से बढ़िया प्रसाद देखकर प्रायः हम लोगों के मन में प्रबल लालसा उठती है परन्तु एक दिन के लिए भी कभी श्रीपाद की जिह्वा-लालसा अपने जीवन में देखने को नहीं मिली। इस प्रकार के संयमी लालसा को जीतने वाले पुरुष बहुत कम ही होते हैं।

किंचित् विश्राम के बाद शौचादि से निवृत्त होकर श्रीपाद नाम जप कर रहे थे। मेरी नींद खुल गई पर चारुदा खर्राटे

भरते हुए खूब सो रहे थे। श्रीपाद ने मुझसे न बताने का इशारा करके चारुदा के माथे पर स्याही की बिन्दी लगा दी, चारुदा को पता ही नहीं चला। फिर एक तिनका लिए चारुदा के नाक में 'फुरफुरि' करने लगे। चारुदा नाक मलते हुये नींद में कहने लगे 'यह छोकरे जरा सोने भी नहीं देते।' यह कहते हुए जब आँखें खोलीं तो देखा कि सामने श्रील बाबाजी महाशय। वे लज्जित होकर बाहर चले गये। श्रीपाद हँसते हुए मुझसे बोले, 'सोचा था उसे पता नहीं चलेगा, पर पकड़ा गया।' इसी तरह श्रीपाद के बालकवत् आचरण कई बार देखने को मिलते थे।

संध्या के समय श्रीपाद के श्रीचरणाश्रित रामबाबू, ब्रजेन बाबू आदि बहुत से भक्तों का आगमन हुआ। श्रील विश्वरूप गोस्वामी जी भी कीर्तन का समाचार पाकर दौड़े आये थे। वे स्वयं अति सुन्दर पदों की रचना किया करते थे। प्रायः वे अपना समय श्रील बाबाजी महाशय के संग व कीर्तन आनन्द में व्यतीत करते थे। तिनुदा ने उन्हें सन्मान पूर्वक आसन देकर प्रसाद पवाया। जो भी भक्त आते सभी चारुदा की खोज करते थे। उनके संग सभी की प्रीति थी।

सन्ध्या आरती के पश्चात् श्रीपाद खड़े होकर कीर्तन करने लगे। मधुमय कण्ठ से वे निताइ गौर राधे श्याम नाम कीर्तन कर रहे थे। बाकी लोग उनके पीछे गा रहे थे। भावावेश में कभी-कभी भुजा उठाकर नृत्य भी कर रहे थे। मधुर नाम-ध्वनि से अपूर्व आनन्द की तरंग उठ रही थी। चारों ओर असंख्य लोग स्थिर दृष्टि से उन्हें दर्शन करते हुये कीर्तन सुन

रहे थे। सड़क पर जनता की भारी भीड़ खड़े-खड़े कीर्तन सुन रही थी। रात के एक बजे तक कीर्तन हुआ। प्रसाद पाकर सभी ने विश्राम किया। श्रीनाम कीर्तन चलने लगा। श्रीविश्वरूप गोस्वामी मृदंग बजा रहे थे और श्रीराधाचरण दास बाबाजी राग 'बेहाग' सुर में नाम कर रहे थे। सभी लोग परम आनन्द में मस्ती के साथ नाम कर रहे थे। कुछ देर बाद तिनुदा नाम करने लगे मधुर स्वर में। नाम सुनते-सुनते मैं सो गया।

प्रातः उठकर देखा चारुदा प्रभाती सुर में नाम कर रहे थे। वे एक बहुत ही सुन्दर 'पदावली' गान कर रहे थे—"श्रीगुरु वैष्णव, तोहाँरि चरण, शरण ना कैनु आमि। विषय विषम, विष भाल जानि, खाइछु हइया कामी, सेइ विषे मोरे, जारिया मारिल, बड़इ बिपाक हैल। जनमे जनमे एमन कतेक, आत्मघाती पाप कैल॥ सेइ अपराधे, ए भव संसारे बाँधिल ए माया जाले। तोमा ना भजिया, आपना खाइया, आपनि डूबिनू हेले॥ आर कतकाल ए दूःख भूंजिब, भोगदेह नाहि जाय। तोमा ना भजिया, कातर हइया, निवेदिछि तुँअ पाय॥ ओ रांगा चरण, शरण केवल, बिचारिआ एइ दाय। उद्धार करिआ लह दीनबन्धु, आपन चरण नाय॥ तोमार सेवन, अमृत भोजन, कराइया मोरे राख। ए राधामोहन खते बिकाइल, दास गणना ते लिख॥

भावार्थ—हे श्रीगुरु वैष्णवगण आपके चरणों में शरणागति न लेकर मैंने विषयरूपी विष का स्वेच्छा से पान किया है। अब उस विष से जर्जरित हो रहा हूँ। जन्म-जन्म इसी प्रकार

मैंने आत्महत्या रूपी पाप किया है। अपने कर्मों का फल भोगते हुए इस देह का कब अन्त होगा ! हे प्रभु ! अब मुझसे और सहन नहीं हो रहा। अतः मैं आपके श्रीचरणों में निवेदन करता हूँ कि आपके श्रीचरणों की शरणागति ही मेरे लिये एकमात्र उपाय है। हे दीनबन्धु आप मुझे अपनी चरणरूपी नौका का सहारा दें। श्रीराधामोहन जी की प्रार्थना है कि आप मुझे अपने दासों की गिनती में गिनकर अपने सेवा रूपी अमृत का पान कराकर जीवन दान दें।

चारुदा करुण क्रन्दन करते हुए यह प्रार्थना पद गान कर रहे थे। उनके साथ सभी श्रोताओं की अश्रुधारा बह रही थी। गौर गुणगान, निताइ गुणगान, ठाकुर के गुणगान तो प्रायः सभी करते हैं पर इस प्रकार श्रीगुरुदेव के निकट मर्मस्पर्शी कातर प्रार्थना करते हुए और किसी को न देखा था। एक श्रील बाबाजी महाशय से सुना था और अब चारुदा से।

श्रीपाद हाथ में मालाझोली लिए नाम जपते हुये धीरे-२ बरामदे में टहल रहे थे, मुझे देखकर बोले, "जाओ, चारु कीर्तन कर रहा है, जाकर सुनो। जाकर देखा चारुदा का वक्ष-स्थल अश्रुधारा से प्लावित हो रहा था। श्रीगुरु चरणों में विनती, प्रार्थना आत्मसमर्पण अपूर्व था। उनके जैसा श्रीगुरु-निष्ठ भक्त मैंने कभी नहीं देखा। आज वे अप्रकट हो चुके हैं। उनके प्रिय मित्र बलाइदा भी अप्रकट हो चुके हैं। उन जैसे श्रीगुरुनिष्ठ प्रेमिक भक्तों के संग बिना जीवन धारण अभिशाप के समान है।

श्रील बाबाजी महाशय के साथ कई बार चारुदा व बलाइ

दा के घर जाने का सौभाग्य मिला था। उनके यहाँ श्रीपाद ने कई बार कीर्तन नाम यज्ञ आदि किया था। उन लोगों की सेवा परिचर्या को भुलाया नहीं जा सकता। उनका प्राण-मन-जीवन-यौवन सर्वस्व श्रीपाद के चरणों में समर्पित था। इस प्रकार गुरुनिष्ठ भक्त हम गुरु भाइयों में भी कम देखने में आते हैं।

नगर कीर्तन की तैयारी होने लगी। मधुर मृदंग खोल-करताल बजने लगे। श्रील बाबाजी महाशय ने श्रीनिताइ चाँद, श्रीगौरकिशोर को परिकरों के सहित आह्वान कर कीर्तन आरम्भ किया—"प्रकट अप्रकट लीलार दुइ तो विधान, आबार बल हरिनाम आबार बल, प्रेम दाता निताइ बले मधुर हरे कृष्ण नाम आबार बल इत्यादि। श्रीविश्वरूप गोस्वामी व हरे कृष्ण दादा मृदंग बजा रहे थे। तिनुदा ने श्रीपाद को आजानु-लम्बित सुगन्धि पुष्प मालाओं से सुशोभित किया। सभी को फूलमाला व चन्दन से सुशोभित किया गया। असंख्य भक्त आने लगे। प्रायः दो सौ व्यक्ति श्रीपाद के पीछे-पीछे कीर्तन करने लगे। क्रमशः भीड़ बढ़ने लगी।

श्रीपाद के संग सभी नृत्य करने लगे। गोस्वामीजी से मृदंग लेकर मदनदादा बजाने लगे। मदनदा तथा हरेकृष्णदा का मृदंग वादन श्रीपाद को बहुत ही प्रिय था। कीर्तन एस० सि० आड्डि महाशय के घर पहुँचा। श्रीआड्डि महाशय के घर के आँगन में खड़े होकर श्रीपाद 'पद' गान करने लगे। उनके पीछे युगलदा, तिनुदा, विश्वरूपदा के साथ मैं भी गाने लगा। वह पद इस प्रकार था—

प्राण राधारमण, रमणी मनमोहन, श्रीवृन्दावन वनदेवा ।
अभिनव रास, रसिकवर नागर, नागरी गण कृत सेवा ।।
व्रजपति दम्पति, हृदय आनन्दन, नन्दन नवघन श्याम ।

आँखर देने लगे "माँ यशोदार नीलमणि, विशुद्ध वात्सल्य प्रेमार वशे—दण्डे दस वार खाए नवनी । श्याम नव जलद, नन्द-हृदि आनन्दद, व्रज-तरुणी लोचन नयनाभिराम ।"

नन्दीश्वरपुर, पुरट पटाम्बर, रामानुज गुणधाम ।।

आँखर—बलरामेर छोटो भाई, आमार प्राण कानाइ; आदर करे सदा डाके—का, का कनइया—आरे मेरे भईया;

श्रीदाम, सुदाम, सुबल सखा सुन्दर

आँखर—श्याम बरज (व्रज) शशी, श्रीदामेर उच्छिष्ट भोजी, सुबलेर मरम सखा, श्याम त्रिभंग बाँका ।।

यह पद गाते ही श्रीपाद आविष्ट होने लगे । सारा शरीर थर-थर काँपने लगा । रोमावली काँटों की तरह खड़ी हो गई । सात्त्विक भाव श्रीअङ्ग पर उदय होने लगे । हुँकार देकर नृत्य करने लगे । विश्वरूप गोस्वामी जी नृत्य करते हुए गिर पड़े और लोटपोट होने लगे । बहुत देर बाद सब लोग शान्त हुये । श्रीपाद कीर्तन करने लगे—

श्रीदाम, सुदाम, सुबल सखा सुन्दर, चंद्रक चारु अवतंश ।
गोवर्धनधर, धरणी सुधाकर, मुखरित मोहन वंश ।।

आँखर—वाम करे गिरि धरा, व्रजवासी रक्षाकरा; गोप-वेश वेणुकर, नव कैशोर नटवर, वेणु बादन पर, धीर समीरे, यमुनातीरे वेणु बाजाए रे, त्रिभंग वंकिम-ठामे, यमुना पुलिन

वने वेणु बाजाए रे। ओइ वेणुर रबे चौदह भूवन आकर्षित, श्यामेर मोहन मुरली रोले यमुना उजान चले, उत्ताल तरंग छले, नेचे नेचे उजान चले; श्यामेर मोहन मुरली रोले, मकर-मीन नाचते लागल; आज सचल अचल, अचल सचल, तरल कठिन, कठिन तरल; पवनेर गति स्थिर हय, नव नव फूल-फले, शुष्क तरु मुंजरे; योगी, योग भूले, मुनी जनार ध्यान टले; धाय कानने व्रज-कामिनी; प्राण वल्लभ कृष्ण बले, कूल-मान वाम पदे ठेले, धाय कानने व्रज कामिनी।

इन पदों को सुनकर सभी लोग आश्चर्य चकित हो रहे थे। श्रीपाद कभी मनगढ़न्त शब्द उच्चारण नहीं करते थे। उन्हें जो भी प्रत्यक्ष दर्शन होते थे उन्हीं का धारावाहिक रूप से कीर्तन करते थे। श्रीपाद उन्मत्त होकर नृत्य करने लगे। सारी जनता उनके साथ नृत्य करने लगी।

भाव शान्त होने पर एक और 'पद' कीर्तन करने लगे—श्रीनन्दनन्दन, गोपीजन वल्लभ, श्रीराधानायक नागर श्याम, सो शचीनन्दन, नदीया पुरन्दर…………

आँखर देने लगे—"नन्देर नन्दन जेइ, शचीसुत हइल सेइ; नन्द सुत बलि जारे भागवते गाय रे, सेइ कृष्ण अवतीर्ण चैतन्य गोसाँइ रे; आमार निताइ केंदे-केंदे बले 'एबार गोबिन्द, गौरांग हल, तोमरा जान ना कि कलिजीव !! राधा-भाव-कान्ति लये, गोविन्द गौरांग हल; श्रीगौरांग-रहस्य, आवेशे निताइ बले—'सो शचीनन्दन, नदीया पुरन्दर, सुरमुनिगण मन-मोहन धाम।' 'जय निज कान्ता, कान्ति कलेवर, जय निज प्रेयसी भाव विनोद।'

श्रीगौरांग स्वरूप रहस्य एवं गौर अवतार के मूल कारण आँखर में गाने लगे—

आमार शरीर गोरा, राधाभाव द्युति चोरा;
तीन वांछा पूराइते, आस्वादिए पियाइते;
चिर अर्नपित बितरिते, आचरि धर्म शिखाइते;
राइ-कानु एकाकृति, गौर वरण, नाटूआ मूरती;
नित्य मिलने, नित्य बिरह, महारास बिलासेर परिणती;
नटनेते उत्तपत्ति, गौर वरण, नाटूआ मूरती;
ब्रज तरुणीगण लोचनमंगल, नदीया वधूगण नयन आमोद
मधुर गौरांग हेरे, एबार सबाइ मत्त मधुरे;
सुरधूनीर कूले कूले, बाहु तुले निताइ बले—
गौरांग रहस्य; भज प्राणेर शचीदुलाले ।।

भज प्राणेर शचीदुलाले कहते ही प्रचण्ड नाम कीर्तन आरम्भ हुआ। चारों ओर कोई नृत्य कर रहा था, कोई धरती पर लोटपोट हो रहा था। चारों तरफ मानो प्रेम की वर्षा होने लगी थी। कुछ भाव सम्वरण होने पर श्रीपाद 'प्रेमदाता निताइ बले गौर हरि हरि बोल' नाम ध्वनि लेते हुए प्राय: दोपहर के दो बजे लौटे।

'गौर एल घरे···· पद व 'आए रे तोरा लूटबि के आए' पद कीर्तन करके नाम समाप्त किया। हरिलूट, दधिमंगल इत्यादि के पश्चात् थोड़ी देर विश्राम करके श्रीपाद गंगाजी स्नान कर आये। श्रीपाद आह्निक करने बैठे। भोग आरती के बाद पंगत होने लगी पर श्रीपाद के निमित्त सभी प्रतीक्षा कर रहे थे। चारुदा कहने लगे 'कीर्तन का खोल-करताल

बजना तो बन्द हुआ पर पेट के भीतर जो खोल-करताल बज रहा है, उसका क्या होगा।' उनकी बात पर सभी हँसने लगे। श्रीपाद को यह बातें सुनाई दीं। वे शीघ्र आह्निक समाप्त कर के प्रसाद पाने आ गये। श्रीपाद के साथ ही चारुदा व मेरा आसन लगा था प्रसाद पाने का। प्रसाद पाने का पद शुरू हुआ 'भज मन....'

चारुदा जैसे बड़ी मुसीबत में पड़ गये। जब तक पद कीर्तन समाप्त न हो तब तक कोई प्रसाद नहीं पा सकता था। चारुदा नें चुपके से एक डेला प्रसाद अपने मुँह में ठूँस दिया और धीरे-धीरे उसे निगलने लगे। जब दूसरी बार मुँह में देने लगे तो कोई-कोई बोल उठा कि तब तक 'भज मन ...' पद समाप्त नहीं हुआ था। चारुदा गम्भीर स्वरमें बोल उठे—रहने दे तेरा 'भज मन', मारे भूख के पेट को नाड़ियाँ तक हजम हो गई। कौन कितना भजन करता है मैं सब जानता हूँ।

श्रीपाद उनके इस व्यवहार से हँसने लगे। प्रायः चार बजे प्रसाद पाना आरम्भ हुआ। परमानन्द से चारुदा, युगलदा, ध्वनि देने लगे। युगलदा ने ध्वनि दी—'विमल हेम जिनि तनू अनूपम रे, ताहे सोहे नाना फूल दाम, कदम्ब केसर जिनि एकटि पूलक रे, तार माझे बिन्दु बिन्दु घाम ॥ जिनि मदमत्त हाथी; गमन मंथर अति भावावेशे ढुलि-ढुलि जाए। अरुण वरण छबि, जेन प्रभातेर रबि, गौर अंगे लहरी खेलाए ॥ चलिते ना पारे गोरा चाँद-गोसाँइ गो, बलिते ना पारे आध बोल। भावेते अवश हईया, हरि हरि बोलाइया, आचण्डाले धरि देय कोल ॥ ए सुख संपद काले गोरा ना भजिनु हेले, हेन

पद ना करिनु आस। श्रीकृष्ण चैतन्य चन्द्र, ठाकुर श्रीनित्या-नन्द; गुण गाए बृन्दावन दास।

श्रील बाबाजो महाशय भाव विभोर हो गये। चारुदा ध्वनि देने लगे—

"हरि ! हरि ! विफल जनम गोंआइनु। मनुष्य जनम पाइया, राधाकृष्ण ना भजिया, जानिया सुनिया विष खाइनु ॥ गोलकेर प्रेमधन, हरिनाम संकीर्तन, रति ना जन्मिल केने ताय। संसार विषानले, दिवानिशि हिया ज्वले; जुड़ाइते ना कैनु उपाय ॥ ब्रजेन्द्र नन्दन जेइ, शचीसुत हइल सेइ, बलराम हइल निताइ। दीन-हीन जत छिल, हरिनामे उद्धारिल, तार साक्षी जगाइ-माधाइ ॥ हा हा, प्रभू ! नन्दसुत, वृषभानु सुता युत, करुणा करह एइवार। नरोत्तमदास कहे, ना ठेलिह रांगा पाय, तोमा बिना के आछे आमार ॥"

सब लोग प्रसाद पाकर उठने ही लगे थे कि श्रीपाद ने एक छोटी-सी पर अति सुन्दर ध्वनि दो—

आर कि एमन दशा हब ! नदीया वासीर दुयारे-दुयारे (द्वारे) फेला भात चाँटि खाब ॥ नदीयार बालक जन टुकि भरि मुड़ि खाय। हाँसिते खेलिते, भूम्िते लोटए, काँखते मन धाय ॥ सर्वानन्देर मनेर वासना शुनिबा यदि केऊ। नदीया-वासीर दुयारे दुयारे डाकिया बेड़ाब फेउ ॥

सब लोग हँसते-हँसते उठ गये। पाँच बज रहे थे। संध्या के सात बजे तक प्रसाद वितरण चलता रहा।

श्रीपाद थोड़ी देर विश्राम करके माला में नाम जप करने लगे। मेरे मनमें एक बात जाननेकी कौतुहलता होने लगी। मैंने श्रीपाद से पूछा—'सभी कहते हैं प्रसाद पाते समय मौन रहना चाहिये पर आप लोग तो उच्चस्वर से ध्वनि देते हैं। ऐसा क्यों?' श्रीपाद ने हँसते हुये उत्तर दिया—'भगवान् को सर्वदा स्मरण करना, उनका गुणगान करना मनुष्य का श्रेष्ठ कर्त्तव्य है। ईश्वर ने केवल भोजन करने के लिए जिह्वा नहीं दी। जिस जिह्वा पर भगवद् गुणगान नहीं है वह तो मेढ़क की जिह्वा है। वृथा वार्तालाप से काल रूपी सर्प आकर उसे निगल लेता है। अत: भक्त स्नान, दान, भोजन गमन में सर्वदा नाम कीर्तन करते रहते हैं।' मेरे मन में जो गलत धारणा थी वह मिट गयी, मेरा मन प्रसन्न हो गया।

इतने में श्रीआड्डि महाशय आकर श्रीपाद से हाथ जोड़कर विनती करने लगे कि उन दीन की कुटिया पर पधार कर उन को सेवा करने का अवसर प्रदान करें। बहुत प्रार्थना करने पर श्रीपाद ने दो दिन रहने की सम्मति दे दी। उस रात तिनुदा के घर रहकर प्रात:काल श्रीआड्डि महाशय के घर पहुँचे।

वहाँ पर पहुँचते ही उन्होंने प्रभाती सुर में कीर्तन आरम्भ किया। श्रीविश्वरूप गोस्वामी व हरेकृष्ण दा मृदंग बजाने लगे। श्रील बाबाजी महाशय के गुरुभ्राता श्रीबसन्तदास बाबाजी महाशय भी उपस्थित हुये। वे पूर्वाश्रम में ख्याति प्राप्त पुलिस इन्सपेक्टर थे। श्री बड़े बाबा से दीक्षा लेकर उन्होंने भागवत

परमहंस वेश धारण किया हुआ था। कीर्तन में वे नृत्य करते हुए प्रायः आविष्ट हो जाते थे।

श्रील बाबाजी महाशय प्रभाती कीर्तन कर रहे थे— श्रीकृष्ण चैतन्य जय प्रभु नित्यानन्द, प्रभु नित्यानन्द आमार प्राण गौर चन्द्र' इत्यादि। प्रायः चार घण्टे तक श्रीमन् महाप्रभु, निताइ चाँद व उनके परिकरों का गुणगान व विनती के पदों का कीर्तन किया, अश्रु धाराओं से उनका मुखमण्डल व वक्षस्थल सिक्त हो रहे थे। मैं भी रो रहा था,सभी लोग क्रन्दन कर रहे थे। चारों ओर मानो अश्रु की वर्षा हो रही थी। सभी लोग नीरव-निस्तब्ध होकर कीर्तन सुन रहे थे। सभी की दृष्टि श्रीपाद के मुखमण्डल पर थी। उनके क्रन्दनरत मुखारविन्द के दर्शन से सभी क्रन्दन कर रहे थे।

भाव कुछ शान्त होने पर मैं सोचने लगा कि एक व्यक्ति को रोते देखकर इतने लोग रो रहे हैं। ऐसा तो मैंने कभी नहीं देखा। कितनी व्याकुलता पूर्ण वह कीर्तन था। श्रील बाबाजी महाशय के शरीर को अश्रु-कम्प, पुलक-हँसी अष्ट सात्विक भावों ने घेर रखा था। जिनको श्रीपाद के भाव प्रेम विभोर स्वरूप का दर्शन मिला है, वे ही समझेंगे मेरी बात को। उनके विषय में कुछ लिखना बौने का चन्द्रमा पाने के सदृश है। मैंने जैसा देखा है वैसे ही वर्णन कर रहा हूँ। उन घटनाओं को स्मरण करते हुए भी मैं विवश हो जाता हूँ।

प्रायः बारह बजे तक कीर्तन हुआ। फिर खड़े होकर अनेक समय तक मातन कीर्तन हुआ। श्रीबसन्त दादाजी महाशय

विभिन्न मुद्रा में नृत्य करने लगे। श्रीविश्वरूपदा भी नृत्य करने लगे। नाम समाप्त होने पर श्रीपाद दूसरी मंजिल पर जाकर बैठे। बहुत से लोग उन्हें दण्डवत करके चले गये, फिर भी श्रीपाद के चरणाश्रित शताधिक भक्त आड्डि महाशय के अनुरोध पर महाप्रसाद पाने के लिए रुक गये।

आड्डि महाशय ने छः सात घोड़ा गाडियों का बन्दोबस्त कर रखा था गंगा स्नान के लिए। बारह बज गये थे। अतः श्रीपाद परिकरों के संग मरिच जल पाकर गाड़ी से गंगा स्नान करने गये। श्रीविश्वरूप गुसाँई, मैं और चारुदा उन्हीं के साथ आ पहुँचे थे, हम लोग उतर कर श्रील बाबाजी महाशय को तेल लगाने लगे। कीर्तन का भावावेश तब तक श्रीपाद में विद्यमान था। उनका सदा हास्यमय प्रफुल्ल मुखमण्डल न देखने पर चारुदा का हृदय विदीर्ण हो जाता था। श्रीपाद का भाव सम्वरण न होने पर चारुदा मुझसे तेल लगाने को कहकर चले गये। कुछ देर बाद देखा चारुदा केले खरीद कर लाये। श्रीपाद के सामने आकर कहने लगे—

'पेट में बहुत जोर से हरिबोल ध्वनि उठ रही थी। उसे बन्द करने का एक उपाय आविष्कार किया है। जेब में एक तुलसी पत्ता था, उसी से इनका भोग लगाया।' यह कहते हुए केले खाने लगे तो श्रीपाद हँस पड़े। चारुदा मेरे और विश्वरूप दा के हाथ में केले थमाकर बोले—'लो इन्हें खत्म करके गंगा स्नान करते हैं। डरो नहीं सभी का भोग लगाया गया है—छिलके समेत'।

श्रील बाबाजी महाशय हँसते हुये बोले—'हाँ,हाँ ! रामदास

के संगी हो न !' सुनकर सभी हँसने लगे। चारुदा ने स्वयं एक चुटकी नसवार लेकर श्रीपाद के सेवा के निमित्त उनके आगे डिब्बी रखी, श्रीपाद हँसते हुए थोड़ी लेकर उनके साथ कितने ही प्रकार से हास परिहास करते हुए गंगा स्नान कर आये। तट पर आकर बहिर्वास पहन कर चादर ओढ़े वहाँ के पण्डित जी से चरणामृत लेकर गाड़ी पर बैठे। तब प्रायः एक बज चुका था। जल्दी-जल्दी आड्डि महाशय के घर पर पहुँच कर आन्हिक करने बैठे। कुछ देर बाद खबर आई कि ठाकुर जी का भोग लग चुका है, उनका आन्हिक प्रायः ढाई बजे समाप्त हुआ। वे प्रायः चार बजे तक आन्हिक करते थे। उस दिन आड्डि महाशय ने मध्याह्न से पूर्व आन्हिक समाप्त करने का अनुरोध किया था। फिर भी ढाई बज गये।

युगलदा भी बहुत देर तक आन्हिक करते थे। ठाकुरजी का ध्यान, स्मरण, मनन में बहुत देर लगती थी। वे गृहस्थी थे फिर भी प्रायः श्रील बाबाजी महाशय के पास दौड़े आते थे। ध्यान, पूजा एवं नाम संकीर्तन उनके जीवन का प्रधान अवलम्बन था। उनके निकट स्त्री, पुत्र श्रील बाबाजी महाशय से अधिक प्रिय नहीं थे, समय पाते ही उनके निकट चले आते थे।

उनकी देरी देखकर श्रीपाद ने आवाज दी—'युगल ! जल्दी आन्हिक समाप्त करो।' युगलदा शीघ्र ही प्रसाद पाने आये। युगलदा को आते देखकर चारुदा परिहास करते हुए बोले, 'आइये वैष्णव गुसाँई ! सभी जानते हैं सुवर्ण वणिक बड़े भक्त होते हैं। उन्हें देखकर ही हम निताइ गौर का भजन करते हैं,

उन लोगों के आन्हिक-पूजा, ठाकुर-सेवा, आचार-विचार की हमें नकल करनी चाहिए।' उन दोनों में परस्पर सख्य भाव था।

श्रील बाबाजी महाशय के साथ प्रसाद पाकर सब लोगों ने विश्राम किया। इन दिनों पाँचुदा श्रीपाद के साथ ही रह रहे थे। उस दिन संध्या के समय श्रीपाद को अपने घर पर ले जाना था। संध्या आरती के बाद प्रायः साढ़े आठ बजे सब लोग घोड़ागाड़ी से पाँचुदा के घर पहुँचे।

उस दिन कहीं पर कीर्तन का कार्यक्रम नहीं था फिर भी अपने-अपने नाम जप सत्संग में रात के बारह बज गये। प्रसाद पाकर सभी अपने-अपने निर्धारित स्थानों पर विश्राम करने लगे। मैंने ऊपर के कमरे में श्रील बाबाजी महाशय के पलंग के नीचे कम्बल बिछाया विश्राम करने के लिए परन्तु रमणदा, हरेकृष्णदा व भगवानदा मुझसे बोले, 'नीचे आकर बिस्तर बिछाओ। श्रीपाद के पास केवल एक ही सेवक रहेगा।' उस समय मैं एक पंखा लेकर श्रीपाद को हवा कर रहा था, पाँचुदा उनके श्रीचरणों की सेवा कर रहे थे।

मैंने उन लोगों से कहा 'मैं नहीं जाऊँगा यहाँ से, श्रीपाद को सारी रात पंखा करूँगा, आप लोग जाकर सो जाइये।' यह सुनकर वे कुछ उत्तेजित होकर कहने लगे, 'श्रीपाद को विश्राम भी नहीं करने दोगे? चलो नीचे चलो।' मैंने भी जिद्द करते हुए कहा, 'मैं नहीं जाऊँगा।' और तभी श्रील बाबाजी महाशय बोले, 'कोई बात नहीं, रहने दो।' सब एकदम शान्त

हो गये। श्रील बाबाजी महाशय लेटते ही सो गये। रात के दो बज गये थे। मैंने सोचा, सोकर क्या करना। पाँचुदा से बोला, 'आज आप और मैं, दोनों सारी रात श्रीपाद को पंखा करेंगे।'

बहुत अच्छा ! सारा जीवन खा-पीकर, सोकर ही बीत जाता है, आज क्यों न गुरुसेवा ही करलूँ। वे सर्वस्व त्याग-कर श्रीगुरु चरणों में निश्चय अनुराग रखते थे। तथा श्रीगुरु-सेवा को ही जीवन का सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य समझते थे—'सोए बिना वे श्रीगुरुदेव को पंखा करेंगे', सुनकर मेरा हृदय आनन्द से भर गया।

साढ़े चार बजे, श्रीपाद उठते ही हम से बोले—'तुम लोग विश्राम करने नहीं गये ?' 'नहीं, हम लोग आपको पंखा कर रहे थे' मैंने उत्तर दिया। पाँचुदा कुछ देर बाद जमीन पर गमछा बिछाकर सो गये। श्रीपाद की आवाज सुनकर वे जग गये, अवाक् होकर मुझसे पूछा, 'तुमने सारी रात पंखा किया, मैं तो सो गया था। मेरे भाग्य में सेवा कहाँ !' श्रीपाद पलंग से उतर कर शौच चले गये। मुझसे बोले 'जाओ थोड़ी देर लेट जाओ।' पास बिछाये हुए कम्बल पर मैं लेट गया पर नींद नहीं आई।

पाँचुदा श्रीपाद के साथ गमछा आदि लेकर चले गये। थोड़ी देर लेटकर मैं उठ गया। श्रील बाबाजी महाशय को खोजते हुए जाकर देखा श्रीपाद शौच के पश्चात् हाथ मिटा रहे थे तो सुगन्ध आ रही थी। श्रीगुरु सेवा के निमित्त पाँचुदा ने मिट्टी में 'सेण्ट' मिलाकर रखा था। उस प्रीति पूर्ण सेवा

परिपाटी को देखकर मैं मुग्ध हो गया। ऐसी सेवा देखना तो दूर सुना भी नहीं था। मन ही मन सोचने लगा—'इसे कहते हैं गुरुसेवा !' पाँचुदा बहुत बड़े व्यापारी थे, बहुत धन कमाते थे। परन्तु उनकी धन सम्पत्ति, घर-परिवार सब कुछ श्रीगुरु सेवा में समर्पित थी। श्रीपाद हँसते हुए बोले, 'क्यों मयना ! क्या बात है ? जाओ जाकर सो जाओ।'

उनके आदेश अनुसार मैं पुनः लेट गया, नीचे भगवानदा प्रातःकालीन प्रभाती नाम कीर्तन प्रारम्भ कर रहे थे। सभी ने उसमें योगदान किया। केवल मैं ही नहीं गया था, लेटा हुआ था। थोड़ी-थोड़ी नींद भी आ रही थी, दिन निकल आया था। इतने में ही एक व्यक्ति आकर मुझसे डाँट-डपट करने लगा। कहने लगा,—'बड़े ब्रह्मचारी, साधु बने फिरते हो, श्रील बाबाजी महाशय को क्या समझ रखा है ? ब्राह्मण सुबह उठकर गायत्री जप करते हैं, सो तो करते नहीं, दिनरात श्रीपाद के साथ चिपके रहते हो और बढ़िया से बढ़िया प्रसाद पाते हो। कोई आचार-विचार नहीं मानते, लोम-वस्त्र पहन कर शौच नहीं जाते हो, हम लोगों की तरह लोम-वस्त्र तो छूते तक नहीं।'

मैं चुपचाप सुनता गया। वे मुझे धमकाते हुए कहने लगे, आज रविवार है। आज तुम्हें श्रीपाद से मन्त्र-दीक्षा लेनी ही पड़ेगी, नहीं तो तुम हमारे साथ नहीं रह सकते। दीक्षाहीन मनुष्य का तो मुख दर्शन भी नहीं करना चाहिये।' तब मैंने उनसे कहा, 'मैं दीक्षा नहीं लूँगा। गुरुदेव स्वयं आकर मुझे दीक्षा देंगे। आप लोगों की तरह सर मुड़वाकर, वैरागी बनकर

नहीं फिरूँगा। मैं अपने बाल नहीं कटवाऊँगा, मन्त्र भी नहीं लूँगा। आप जो कुछ कर सकते हैं, करिये। मेरी बात सुनकर वे बहुत क्रोधित हुए, और नीचे चले गये।

मैं उठ बैठा। मेरे मन में ग्लानि आ गई और क्रोध भी। इतने में श्रील बाबाजी महाशय ने आकर मुझसे पूछा—'क्यों, क्या हुआ है तुम्हें ?' 'कुछ नहीं' मैंने उत्तर दिया। 'तब चुप-चाप क्यों बैठे हो' उन्होंने पुनः पूछा। 'रात भर सोया नहीं इसलिये' मैं बोला। अच्छा तो 'चलो आज शीघ्र गंगा स्नान कर आते हैं।' यह कहते हुए वे मुझे घोड़ागाड़ी पर बैठाकर गंगाजी ले गये। मार्ग में वही व्यक्ति दिखाई दिया जिन्होंने मुझे डाँटा था। माला जपते हुये जा रहे थे। मैंने व्यंग भरी हँसी हँसकर चुपके से अपना बाँए हाथ का अगूँठा दिखा दिया। वे गम्भीर होकर चले गये। पर श्रील बाबाजी महाशय को मेरी इस चंचलता का पता नहीं चला। श्रीपाद पाँचुदा के घर पहुँच कर आन्हिक करने बैठे।

उस दिन कलकत्ते से दस-बारह व्यक्ति दीक्षा लेने आये थे। श्रील बाबाजी महाशय का आन्हिक समाप्त होने पर उनके सन्मुख ठाकुरजी को लाया गया। खोल करताल बजने लगे। श्रीपाद एक-एक करके सबको दीक्षा देने लगे। मैं कुछ दूरी पर बैठा सबके साथ नाम कीर्तन कर रहा था एवं दीक्षा प्रदान लीला देख रहा था। श्रीपाद मुझसे कभी दीक्षा की बात नहीं करते थे और न ही मेरा मन मानता दीक्षा लेने को। मैं अपने मन को यही समझाता था कि, इतने बड़े महापुरुष मुझसे स्नेह-

प्रीति करते हैं, मुझे अपने साथ रखते हैं। वह तो मेरा परम सौभाग्य था, अतः मुझे उससे और अधिक क्या चाहिए था।

मैं कभी-कभी बैठकर सोचा करता था कि श्रीपाद के अन्य आश्रितजनों में से मैं एक हूँ। हाँ, उन भक्तवृन्द की तरह मुझे तब गान कीर्तन आदि नहीं आता था और मैं बहुत छोटा भी था। मुझे वैष्णवोचित भाषा बोलनी नहीं आती थी। प्रसाद को कभी-कभी भात व 'रसा' को 'झोल' कह बैठता था। इसी कारण सब मुझे डाँटते थे। पर फिर भी श्रील बाबाजी महाशय अपने अपार करुणामय स्वभाव से मुझ बालक को कितना स्नेह किया करते थे। जब सब लोग पूजा-आन्हिक आदि करते थे, मैं भी उनके पास गायत्री जप करने बैठ जाता था। जप से पहले खूब अच्छी तरह अपने बालों को सँवारता था। यह उन्हें अच्छा नहीं लगता था। मैं 'भेक' (वैष्णव संन्यास) न लेते हुए भी कौपीन धारण करता था धोती भी उन लोगों की तरह पहना करता था।

भगवद् प्रेरणा से यह सब कुछ स्वतः ही मेरे स्वभाव में आ गया था। घर छोड़ने के समय माँ की सफेद धोती के दो टुकड़े कर, एक पहना था, दूसरा ओढ़ा था। मन्त्र दीक्षा न लेते हुए भी श्रीपाद का प्रियपात्र बनकर रहना, यह सब उन लोगों का मेरे प्रति बैर भाव का कारण बन गया था। ऊपर से उस दिन मैंने उनमें से एक को अगूँठा भी दिखा दिया था।

जब हम सब पाँचुदा के घर रहते थे, तब श्रीपाद मुझे बुलाकर अपने साथ कीर्तन पर ले जाते थे। उनके पास बैठकर

कीर्तन सुनता थोड़ा-थोड़ा कीर्तन भी करता था। उन्हीं के संग प्रसाद भी पाता था। एकदिन श्रीपाद सुबह मुझसे बोले, 'मयना मैं कलकत्ता जा रहा हूँ। लौटते हुए मुझे बारह-एक बज जायेंगे, तुम यहीं रहो।' मैं रो पड़ा और बोला 'अभी तो केवल छः बजे हैं। छः घण्टे तक आपको देख न पाऊँगा। श्रीपाद मुझे सान्त्वना देते हुए बोले, 'ऊपर श्रीचैतन्य भागवत रखा है, पढ़ना और सबके साथ गाड़ी से गंगा स्नान कर आना, मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा। मैं उनकी बातों से आश्वस्त होकर चुप हो गया।

मेघलालदा को साथ लेकर श्रीपाद कलकत्ता चले गये। आठ बजे मैं सबके साथ गंगा स्नान करने गया। लौटते समय सभी नाना प्रकार के हास-परिहास कर रहे थे, भक्तों के घर कब कौन-कौन से उत्तम से उत्तम प्रसाद बने थे, उसी की चर्चा चल रही थी। रास्ते में एक दुकान पर बकरी को मार कर टाँगा हुआ था। सभी की दृष्टि उस पर पड़ी। दुर्भाग्यवश मैं हँसी-हँसी में बोल पड़ा—हमारे गांव में देवी पूजा में मांस का भोग लगता है, क्या यहाँ भी ऐसा होता है ? और क्या कहना। मेरे ऊपर मार की वर्षा होने लगी। गाड़ी पाँचुदा के घर के सामने पहुँची।

सबने मिलकर मुझे बाल पकड़ कर उतारा और खूब मारने लगे। कहने लगे, 'अब हम तुम्हें हमारे साथ नहीं रहने देंगे। हमारे साथ आओगे तो अच्छा नहीं होगा। बाबाजी महाशय के आने पर उन्हें हम तुम्हारी शरारत बतायेंगे। दूर हो जाओ हमारी नजरों से।' मैं हताश हो गया मन की वेदना

से और मार की वेदना से भी। परन्तु अधिक दुख यह था कि मुझे श्रीपाद का अमृतमय संग नहीं मिलेगा, उनके साथ रहने का सौभाग्य नहीं मिलेगा। सोचा मेरा भाग्य विपरीत हो गया।

कलकत्ते में किसी को विशेष रूप से पहचानता भी नहीं था। कौन देगा मुझे आश्रय। वहाँ एक चौराहा था। उसी के किनारे बैठकर सिर झुकाये सिसक्-सिसक् कर रोने लगा। मेरे पास पैसे भी नहीं थे। इतने बड़े शहर में, 'मैं' कहाँ जाता। मैं केवल श्रील बाबाजी महाशय को पहचानता था, और किसी को नहीं। अकस्मात् मेरे दुर्भाग्य के दिन आ पड़े थे। मैं खूब रोने लगा। आते-जाते अनेकों लोगों के मुझसे रोने का कारण पूछने पर मैंने उन्हें कोई उत्तर नहीं दिया। दोनों घुटनों के बीच मुँह छुपाकर रो रहा था।

इतने में किसी ने मेरे सामने बैठते हुये मेरे सिर पर हाथ रखा और कहा, 'उठो ! यहाँ बैठे-बैठे क्यों रो रहे हो ? चलो चलो प्रसाद पाने चलो।' मैंने देखा जलती धूप में श्रील बाबाजी महाशय मांथे पर गमछा ओढ़े मेरे सामने खड़े थे। देखते ही हर्ष विषाद से उन्हें आलिंगन करते हुए खूब जोर-जोर से रोने लगा। श्रीपाद ने स्नेहवश मेरा मुख पकड़े सान्त्वना देते हुए कहा—

'मैंने सब सुना है। उसकी इतनी हिम्मत जो कि तुम्हें मार कर भगा दिया !! क्या खुद ही मालिक बन बैठा है। चलो मेरे साथ। देखूँ किसकी गर्दन पर कितने सिर हैं ?' श्रीपाद, की आश्वास सान्त्वना भरी बातों से मैं और भी सिसक-२ कर

रोने लगा। श्रीपाद, स्नेह व करुणा से आतुर होकर अपने गमछे से मेरे आँसू पोंछते हुए पुनः कहने लगे—'जिस प्रकार उन्होंने तुम्हें भगा दिया, मैं भी जाकर उन्हें उसी प्रकार भगा दूँगा। इतनी स्पर्धा उनकी !! तुम मेरे पास रह रहे हो; मेरे ऊपर भी वे अपना प्रभुत्व चलाते हैं !

श्रीपाद को यथेष्ठ क्रोध आया हुआ था मुझे साथ लेकर पाँचुदा के घर पहुँचते ही उन्होंने सबको बुलाया, 'रमण ! तुम सब यहाँ आकर सुन जाओ मेरी बात। इतनी स्पर्धा तुम्हें कहाँ से मिली यदि मैं तुम सबको यहाँ से भगा दूँ तो ?' रमण बोल पड़े, 'उसने दीक्षा तो ली नहीं, बकरी के मांस को प्रसाद कहता है, रसा को 'झोल', अन्न प्रसाद को भात कहता है।' श्रीपाद यह सुनकर और क्रोधित हो उठे। कहने लगे—

'तुमने अपनी गलतियों के बारे में कभी सोचा भी है ? मेरे आने से पहले तुम कैसे साधु थे ? तब तो मछली खाकर हाथ में एकतारा लिए गेरुआ वस्त्र पहने साधु बने फिरते थे। क्या उन दिनों को भूल गये ? याद करो मेरे पास आने से पहले तुम क्या थे ? तुम लोगों की तरह वैष्णवोचित भाषा इसे नहीं आती। इसी कारण तुमने इस भोले-भाले ब्राह्मण के लड़के के साथ इस प्रकार निष्ठुर व्यवहार किया, और भगा भी दिया ? श्रीमन् महाप्रभु का धर्म क्या मारना पीटना है ? वैष्णव वेश धारण करते हुए भी क्या बन गये हो ?'

'इस धर्म की शिक्षा है—तृण से भी नम्र रहना; वृक्ष के समान सहिष्णु होना, अमानी को भी मान देना, सर्वदा हरि कीर्तन करना, वह सब आचरण कहाँ गया ? एक बालक,

अपनी माँ, भाई, बहन, स्वजन बन्धु-बान्धव प्राय: सत्तर अस्सी जनों के परिवार की माया ममता त्यागकर, घर-संसार छोड़कर मेरे पास आया है। मैं उसे थोड़ा-बहुत स्नेह करता हूँ। और उसी से तुम लोगों को ईर्ष्या होने लगी है! याद करो अपने पूर्व जीवन के बारे में, तुम लोग क्या थे।' मैंने देखा वे सिर झुकाये सबके सब रो रहे थे। मेरा पक्ष लेते हुए श्रीपाद ने उन्हें कठोर शासन किया। मेरे मन में पश्चाताप होने लगा। गलती तो मेरी थी। वे सब मुझसे उम्र में बहुत बड़े थे, बहुत दिनों से साधु बने थे। अत: मैंने उनके चरण पकड़ कर क्षमा माँगी रमण दा' मुझे पकड़कर रोने लगे। इस दृश्य को देखकर श्रीपाद धीरे-धीरे वहाँ से चले गये।

उस घटना के पश्चात् प्राय: ४० वर्ष तक श्रीरमण दा का संग मुझे मिला। तब से उन्होंने मुझसे कभी अप्रीति नहीं की। श्रीपाद सर्वदा हम लोगों की मंगल कामना से अपना स्नेह व अमूल्य उपदेश किया करते थे। एक दिन कहने लगे, 'वैष्णव संग बहुत दुर्लभ है। यदि वे कभी शासन करते हैं या कठोर दुर्वाक्य कहते हैं तो भी उसी में अपार कृपा होती है। अधिकतर लोगों को सत्संग, वैष्णव-संग प्राप्त नहीं है। संसार में केवल सगे-सम्बन्धियों का, बन्धु-बान्धवों का संग ही प्रिय लगता है। अत: उन्हें ही पकड़कर रहते हैं।

यह प्रेम तो स्वार्थ का होता है। स्वार्थ में जरा भी बाधा आई, कि सभी विमुख हो जाते हैं। तथापि श्रीगुरु संग, वैष्णव संग नहीं करते। उनकी सेवा करने की लालसा नहीं होती; केवल उनके दोष-अनुसन्धान

करके निन्दा ही करते हैं। देखो श्रीचैतन्य चरितामृत ग्रन्थ में कैसी महान् वाणी का उल्लेख किया गया है—'सबारे करिबेन उद्धार गौरांग सुन्दर। व्यतिरिक्त वैष्णव-निन्दुक दुराचार ।। निन्दाय नाहिक कार्य, शुधू पाप लाभ। ए कारणे निन्दा छाड़े महा-महाभाग ।। अनिन्दुक हइया जे सकृत कृष्ण बले ! सत्य-सत्य कृष्ण तारे उद्धारिबेन हेले ।।

अर्थात् गौरसुन्दर सभी का उद्धार करेंगे। केवल वैष्णव-निन्दक व दुराचारी को छोड़कर। निन्दा से कोई लाभ नहीं है। केवल पाप की प्राप्ति होती है। अतः बड़े से बड़े भाग्यवान व्यक्ति भी इसका परित्याग कर देते हैं। अनिन्दक होकर जो व्यक्ति श्रीकृष्ण भजन करता है प्रभु उसका उद्धार अवश्य ही करते हैं। इस महान् वाणी का तात्पर्य यदि कोई हृदय में धारण करले तो चित्तशुद्धि हो जाती है। पर लोग अपने स्वभाव को कहाँ छोड़ते हैं।'

श्रीपाद आन्हिक करने बैठे तो मैं पूर्ववत् उन्हें पंखा करने लगा। पाँचुदा की पत्नी ने मुझे स्नेहवश उस घटना के बारे में पूछा तो मैंने हँसकर टाल दिया। आन्हिक के पश्चात् श्रीपाद के संग मैंने भी प्रसाद पाया। श्रीपाद विश्राम करने लगे तो पाँचुदा प्रसाद पाने गये। वे चाहे कितनी ही देर क्यों न हो श्रीपाद की सेवा करने के बाद ही प्रसाद पाया करते थे।

परम आनन्द से श्रील बाबाजी महाशय के स्नेह, वात्सल्य से परिपूर्ण मेरा जीवन बीत रहा था। घर की याद तक नहीं आती थी। ऐसा निर्मल, पवित्र, निरंकुश स्वर्गीय प्रेम था श्रील बाबाजी महाशय का जिसने इस संसार के सभी आकर्षणों को

भुलाकर, मुझे प्रभु का नाम कीर्तन सुनाकर, लीला-स्थलियों का दर्शन कराकर मेरे जीवन को कृत-कृत्य कर दिया था। ऐसा प्रेम इस जगत् में कभी किसी से नहीं मिला था। पिता-माता का अपार स्नेह, बन्धु-बान्धवों का पवित्र प्रेम जैसे मानों मूर्त्तिमान होकर श्रील बाबाजी महाशय के भीतर एकाधार से प्रकट हुआ था। वे प्रेम-स्वरूप थे। हाय मैंने उनका दर्शन करके भी अनादर किया है। उन्हें छोड़कर दूर चला गया। तथापि वे हमारे लिए कितनी करुणा, कितनी व्यथा व कितना स्नेह पूर्ण हृदय लिये प्रतीक्षा करते थे। हमारे अनन्त, असीम दुर्दैव। उनकी करुणा उनसे भी महान् थी। इसके प्रत्यक्ष प्रमाण-स्वरूप हम लोग ही तो हैं।

परम आनन्द से दिन बीत रहे थे। 'हुगली' में आड्डि महाशय के घर अखण्ड अष्टप्रहर नाम कीर्तन होना था। अनेक धनी भक्त श्रीपाद के पास आये थे। श्रीपाद के गुरुदेव श्रीभैरव चन्द्र गोस्वामी भी आये थे। श्रीरामनवमी पर वहाँ अष्टप्रहर नाम कीर्तन का बन्दोबस्त किया गया था। जब श्रील बाबाजी महाशय राम बागान में रहते थे तब दिन रात नाम संकीर्तन में ही बीतता था।

श्री श्रीबन्धुसुन्दर, 'जय निताई' आदि का साथ छोड़कर घूमते थे उसी समय श्रीपाद को भैरवचन्द्र जी ने महामंत्र नाम प्रदान किया था। श्रील बाबाजी महाशय उन्हें श्रीगुरु मानकर अपार तथा आन्तरिक श्रद्धा करते थे। श्रीपाद के प्रति श्री-भैरवचन्द्रजी का अपूर्व वात्सल्य था। श्रीपाद के उन्हें दण्डवत् करते ही वे उन्हें हृदय से लगाकर, उनके मस्तक पर हाथ

फेरकर स्नेह करते थे व अश्रु धाराओं से सिक्त हो जाते थे। उन्हीं के घर सर्वप्रथम अष्टप्रहर नाम कीर्तन करने का निश्चय किया गया। बाद में 'हुगली' जायेंगे, यह कहने पर 'हुगली' से आये हुए भक्तों ने कीर्तन की तिथि परिवर्तन कर घर चले गये। श्रील भैरवचन्द्र गोस्वामी जी भी अपने गांव 'सिंगुर' चले गये।

अत: दूसरे दिन श्रील बाबाजी महाशय के संग हम लोग खोल करताल लेकर सिंगुर रवाना हो गये। स्टेशन से घर बहुत दूर था। हम सब पैदल आ पहुँचे। घर के पास पहुँचने पर श्रीदादा महाशय (श्रीभैरवचन्द्र गोस्वामी) चीत्कार कर के सबको बुलाने लगे—अरे सब कहाँ हो, जल्दी आओ, अरी सुनती हो, जल्दी आकर देखो कौन आया है। वे आनन्द से उन्मत्त हो गये। खुशी के मारे उनकी धोती भी खुली जा रही थी। हाथ में लेकर ही भागदौड़ कर रहे थे और घर के सभी सदस्यों को आवाज देकर बुला रहे थे। उनके पुत्र कन्या आदि दौड़ते हुए आ पहुँचे। श्रील बाबाजी महाशय ने उनके चरणों पर मस्तक रखकर दण्डवत् किया। उन्होंने मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

श्रीपाद को ऐसा करते देखकर सभी ने उन्हें दण्डवत् किया। श्रील दादा महाशय श्रीपाद का हाथ पकड़ कर उन्हीं के सेवित विग्रह श्रीमहाप्रभु के सामने लाकर रोते हुए प्रभु से कहने लगे—"गौर तुम दीन की कुटिया में रहते हो। मेरा राम आया है। तुम ही उसका आदर सत्कार करना। श्रील बाबाजी महाशय ने महाप्रभु को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया।

हम लोग भी दण्डवत् करके वहीं पर वट वृक्ष के नीचे बैठ गये। श्रीदादा महाशय रोते हुए कहने लगे, 'मेरे प्रभु कंगाल हैं। टूटे फूटे घर में रहते हैं।' मुझसे तुम लोगों की सेवा कैसे हो पायेगी सुनकर श्रीपाद, कहने लगे, 'आप स्थिर होकर बैठिये, हम लोग सब ठीक कर लेंगे। श्रीपाद के आदेशानुसार उसी वृक्ष के नीचे आसन बिछाकर उन्हें बिठाया गया। शशीदा ने हुक्का तैयार करके उनके हाथ में थमा दिया।

वे भी 'बहुत अच्छा', 'बहुत अच्छा' कहकर हुक्का पीते हुए बातचीत करने लगे। इतने में उनकी पत्नी (दादीजी) आकर सामने खड़ी हुई। वे बहुत ही दुबली और घोर श्याम वर्ण की थीं। नाक पर नथ पहनी हुई थी। श्रीदादा महाशय ने श्रीपाद की ओर देखते हुए हँसते-हँसते कहा, 'वह देखो राम जैसे साक्षात्…….।' श्रीपाद ने दादीजी के चरणों में दण्डवत् किया। दादाजी के परिहास पर हम सब हँस रहे थे। श्रीपाद भी मन्द-मन्द हँसने लगे।

ग्रामवासी सब आने लगे। उसी दिन नाम यज्ञ का अधिवास था। अतः सभी तैयारी होने लगी। श्रीदादा महाशय के कुछ शिष्य भी आये हुए थे। वे सब दरिद्र, साधारण व्यक्ति थे। उनमें से कोई चावल, चिड़वा, तो कोई थोड़, केले का फूल, कोई सैजना की फलियाँ ला रहे थे। सब सामग्री प्रभु के आगे रखकर प्रणाम कर रहे थे। कोई एक आना, कोई चार आना कोई दो आना दादाजी के आगे रखकर प्रणाम कर रहे थे। दादाजी भी परम आनन्द सहित भेंट अपनी अंटी में रखते हुये बड़ी प्रसन्नता से इधर उधर घूम रहे थे। शालकिया से पाँचुदा

भी आये हुए थे। श्रीपाद के उन्हें इशारा करते ही उन्होंने सौ रुपये दादाजी के हाथ पर रखकर विनीत निवेदन किया, 'बाबा, यह उत्सव के लिए।'

इतने सारे रुपये एकसाथ पाकर वे खुशी से डगमगाते हुए कहने लगे—तेरे आने से ही इतने रुपये मिलते हैं महाप्रभुजी की सेवा के लिये। इतने रुपये तो मुझे देखने को भी नहीं मिलते। प्रभु ने मिला दिया। अच्छा ही हुआ, श्रीमहाप्रभु जी की सेवा कर पाऊँगा और तुम लोगों की भी। अधिकतर समय केवल दाल, चावल और भुनी हुई मिर्च का ही प्रभु को भोग लगाता हूँ।'

श्रीपाद के संग बहुत से वैष्णव, भक्त आये हुए थे। उनके नाम मुझे स्मरण हैं। श्रीप्रियनाथ काका, भगवानदा, छोटे रमणदा, जानकीदा, उपेनदा, हरेकृष्णदा, श्रीविश्वरूप गोस्वामी कृष्णकमलदा आदि कितने ही भक्त आये थे। श्रीपाद के आगमन समाचार से बहुत दूर-दूर के गाँव से भी लोग आकर उपस्थित हो रहे थे। 'अधिवास' की तैयारी हो चुकी थी।

श्रीनरोत्तम काकाजी ने आरती कीर्तन किया। तत्पश्चात् श्रील बाबाजी महाशय ने अधिवास कीर्तन प्रारम्भ किया। श्रीमदन दादा व जानकी दा खोल बजा रहे थे। अधिवास कीर्तन के बाद ठाकुरजी के मंच को घेर-घेर कर 'भज निताइ गौर राधे श्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' यह नाम कीर्तन होने लगा। रात के प्रायः एक बजे प्रसाद पाकर सबने विश्राम किया।

प्रातः पाँच बजे श्रीप्रियनाथ काका व छोटे रमणदा ने

प्रभाती सुर में नाम प्रारम्भ किया। श्रीदादा महाशय हम लोगों के साथ घूम-घूम कर नाम कर रहे थे और अश्रुधाराओं से प्लावित हो रहे थे। धीरे-धीरे गाँव के बहुत से लोग आने लगे। श्रीपाद ने पाँचुदा से कहा कि जितने भी भक्त आयेंगे उन सभी के लिए प्रसाद का बन्दोबस्त किया जाये। पाँचुदा 'जो आज्ञा' कहकर दूर बाजार से दाल, चावल, घी, तेल, साग-सब्जी जो भी सामग्री की आवश्यकता थी, ले आये। पाँचुदा की गुरुभक्ति अतुलनीय थी। श्रीपाद के प्रत्येक आदेश का वे 'जो आज्ञा' कहकर पालन करते थे। श्रीगुरु आदेश पालन ही उनका एकमात्र धर्म था। धन के विषय में उन्हें कोई संकोच नहीं था।

श्रीदादा महाशय जी के सबसे छोटे बेटे निताइ केवल ५/६ वर्ष के थे। उसके साथ मेरी मित्रता हो गई। उसे मैंने मुँह से चिड़ियों की आवाज निकालना सिखा दिया। ग्राम के अन्य बालक भी आकर्षित होने लगे। सबको एकत्रित करके एक छोटा सा बालदल बन गया। सभी को सिखा देने पर वे सब मेरा कहना मानने लगे। सभी बालक मेरे साथ कीर्तन में नाचने लगे, नाम करने लगे। दिन ढलते ही दूर-दूर के गाँवों से लोग कीर्तन सुनने आ रहे थे। आरती के पश्चात् रात के बारह बजे तक श्रील बाबाजी महाशय ने कीर्तन किया। प्रात: काल नाम यज्ञ समाप्त हुआ। श्रीदादा महाशय रोते हुये यज्ञ-स्थली पर लोटपोट करने लगे।

पूर्ववत् नगर कीर्तन निकला। श्रीपाद के संग सभी कीर्तन करते हुए ग्राम परिक्रमा कर लौट आये। 'नगर भ्रमिए आमार

गौर एल घरे, धेये गिए शची माता गौर कोले करे' यह पद गाते हो श्रीदाद महाशय श्रीपाद को आलिंगन करते हुए उच्चस्वर से रोने लगे। 'आए रे तोरा लूटबि के आए, दयाल निताइ अमिया बिलाय रे' इस पद के समय श्रील बसन्त काका व श्रीदादा महाशय मनोरम नृत्य करने लगे। अन्त में 'गौर हरि बोल' ध्वनि से नाम समाप्त हुआ।

यथाविधि विश्राम करके सबने स्नान-आन्हिक आदि किया। मैं और निताइ श्रीपाद को पंखा करने लगे। श्रीपाद मुझसे कहने लगे, 'देखा तुम्हारे दादाजी को! श्रीमन्महाप्रभु से कितना प्रेम है! मेरे प्रति उनका अपार वात्सल्य स्नेह है। जब मेरे मन में दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा जागृत हुई थी तब उन्होंने मुझे 'महामन्त्र' और बीजमन्त्र प्रदान किया था। उसके बाद श्रील बड़े बाबाजी महाशय ने मुझे दीक्षा दी थी। तुम्हारे इस दादाजी ने मुझे नाम देकर कहा था, 'नाम करो' नाम से सब कुछ प्राप्त होता है। नाम करते-करते मार्ग में तुम्हें तीन जने मिलेंगे—लाभ, पूजा व प्रतिष्ठा, इन से बचकर चलना।

मैंने श्रीजगद्‌बन्धु को सखा रूप में पाया, इन्हें पाया पिता जैसे, और बड़े बाबाजी महाशय को बड़े भाई समान पाया। इन सम्बन्धों के बिना इन सबको मैं ठाकुर-देवता या महापुरुष बुद्धि नहीं कर सकता। आजकल भगवान् व अवतारों का युग आ गया है। कितने ही अवतार बनते जा रहे हैं उसकी कोई गिनती नहीं है। दास बनना कोई नहीं चाहता, आजकल भक्ति-मान् लोग भक्त को ही भगवान् बना देते हैं। भक्त तो भगवान्

के अनन्य दास होते हैं, भगवान् भी भक्त के आधीन होते हैं। इस भाव को कोई नहीं समझना चाहता।

शास्त्रों के द्वारा सभी अवतार प्रमाणित हो चुके हैं। शास्त्रों में उनका पूर्ण रूप से दिग्दर्शन कराया गया है। श्रीबन्धुसुन्दर का मधुमय संग मुझे बचपन से ही मिला था। सारी रात जागकर मैं उनके साथ ताश खेला करता था। उनके प्रति 'सखा' से भिन्न दूसरा भाव मैं नहीं रख सकता। उन्हीं के आदेश से गान-कीर्तन किया करता था। उनका प्रेम, एवं कृपा मेरे जीवन का सब कुछ है।

उसके बाद 'सिगुंर' के यह बाबा मिले जिन्हें मैं पिता के समान मानता हूँ। वे भी मुझे पुत्रवत् स्नेह करते हैं। उनके पुत्र-कन्या मुझे 'रामदादा' कहकर पुकारते हैं। उसके बाद श्रील बड़े बाबा का संग मिला। प्रथम दर्शन में ही उन्होंने मुझसे कहा, 'भाई राम! जरा 'नाम' सुनाओ तो।' तब से उनके प्रति मेरा वैसा ही भाव बना रहा। उन्होंने मुझे दीक्षा दी—कृष्ण मन्त्र, निताइ-गौर मन्त्र, सब कुछ दिया। पर मैंने उन्हें कभी भगवान् जैसे नहीं देखा। उन्हें मैंने प्रभु के अत्यन्त प्रिय, भक्त के रूप में ही देखा।

कुछ लोगों द्वारा उन्हें भी भगवान् एवं अवतार बनाने की चेष्टा की गई। देखो श्रीमन्महाप्रभु के अवतार के विषय में श्रीमद्भागवत् आदि पन्द्रह पुराणों एवं महाभारत में प्रमाण हैं, फिर भी अनेक लोग उन्हें भगवान् न मानकर एक भक्त या महापुरुष ही मानते हैं। उनकी लीलाओं का पाठ करने से पता चलता है कि उन्होंने पतितों का उद्धार किया, सबको प्रेम

प्रदान किया एवं पाषाण तक को द्रवित कर दिया। श्रीवृन्दावन को जाते समय मार्ग में उन्होंने बाघ, हाथी, हिरण शूकर आदि पशु पक्षियों का स्वभाव बदल कर (उनके हृदय में गोपीभाव जागृत करके) सबको कृष्ण-२ बुलवाकर नचाया। ऐसी अचिन्त्य महिमा है गौरसुन्दर की।

ये लीलाएँ पढ़कर भी अनेक लोग उन्हें भगवान् स्वीकार नहीं करते आजकल नये-२ भगवान् बनाने की बाढ़ आ गई है। परन्तु देखो भक्तों की महिमा कितनी गरिमाशाली है। जिस समुद्र को स्वयं भगवान् राम ने वानरों द्वारा पुल बनवाकर पार किया, उसे महावीर हनुमानजी राम नाम लेकर एक छलाँग में ही पार कर गये।

प्रह्लाद की भक्ति के बल से उनके वचनों की रक्षा करने के लिये श्रीभगवान् को स्फटिक स्तम्भ से नृसिंह रूप में आविर्भूत होना पड़ा। अर्जुन के प्रेम से अनादि के आदि श्रीगोविन्द जी घोड़ों की लगाम पकड़कर रथ के सारथी बने।

समस्त अवतारों के मूल कारण हैं, स्वयं अवतारी श्रीगोविन्द। अपनी नर लीला में वे द्वारका के राजा बने। अतुलनीय ऐश्वर्य था उनका। शत-शत ब्रह्मा उनकी स्तुति-वन्दना करते थे, अष्टसिद्धि, नवनिधि सेवा में तत्पर रहती थीं। दीन दरिद्र बाल सखा सुदामा जी उनके दर्शन करने गये। उस दरिद्र ब्राह्मण के लिये प्रभु राजसिंहासन छोड़कर दौड़े आये, एवं उन्हें गले लगाया, अपने सिंहासन पर बैठाया। सुदामाजी ने संकोचवश भेंट स्वरूप लाये हुए दो मुट्ठी चिड़वे की पोटली अपनी बगल् में छुपा ली। श्रीकृष्ण तो सदा भक्त के प्रेम के

वशीभूत हैं। अन्तर्यामी प्रभु ने पोटली छीन ली और एक मुट्ठी चिड़वा खा लिया।

देखो भक्त की कितनी महिमा है। भक्त भगवान् से भी बड़ा है—यह कोई नहीं समझता। कुछ विभूतियाँ दिखाने से ही क्या सब भगवान् बन जाते हैं!! इस प्रकार श्रीपाद हम लोगों को कितने ही सिद्धान्त सुनाने लगे।

प्रसाद पाने का समय हो गया था दोपहर दो बजे थे। श्रीपाद के साथ सभी ने नाम ध्वनि देते हुए महाप्रसाद पाया। श्रीदादा महाशय को प्रसाद पाने के लिये बहुत विनती करने पर भी वे राजी नहीं हुए। श्रीपाद के हाथ में प्रसाद देते हुए उन्होंने कहा—'तुम सब प्रसाद पाओ, मैं जी भरकर दर्शन करूँ। तुम तो मेरी सन्तान हो। तुम सबके भोजन से ही मेरा पेट भरेगा। आज मेरे सौभाग्य की सीमा नहीं।' कहते-कहते वे रोने लगे। सन्ध्या पर्यन्त सभी भक्तों को उन्होंने प्रसाद पवाया। श्रीशशीदा ने उन्हें प्रसाद पवाकर विश्राम करवाया। उस दिन श्रीदादा महाशय ने हम लोगों को अन्यत्र जाने नहीं दिया। अगले दिन श्रील बाबाजी महाशय के संग हम सब कलकत्ता पहुंचे।

श्रीपाद को उस दिन किसी भक्त के घर जाना था। अतः आन्हिक आदि करने के बाद प्रसाद पाकर जाने की तैयारी करने लगे। चार बजे उन्होंने सबसे कहा—'आज मैं नहीं लौटूँगा, 'चोरबागान' में एक भक्त के घर जा रहा हूँ। कल सुबह नौ-दस बजे तक लौट आऊँगा। सन्ध्या के समय 'हुगली' जाना है—अष्टप्रहर अखण्ड नाम संकीर्तन होगा।' यह कहकर

वे सेवक श्रीमेघलालदा के साथ घोड़ागाड़ी पर बैठे। मेरे सजल नेत्रों से उन्हें देखते ही उन्होंने मुझे पुकारा—'मयना, आओ मेरे साथ।' पाँच बजे हम लोग 'चोरबागान' में तुलसी के घर पहुँचे। श्रीपाद को देखते ही, तुलसी, उनकी बड़ी दीदी, उनके पिताजी व अन्य सभी ऐसे दौड़ आये जैसे कि उनके अति ही प्रियजन उनसे मिलने आये हों।

वहाँ पर वात्सल्यमयी'चुनोगली' की माँ को भी मिला। घर के सभी लोग श्रील बाबाजी महाशय को साथ लेकर ऊपर ले आये। श्रीपाद को एक कुर्सी पर बिठाया और उनके श्रीचरण धोकर सभी ने पान किया व चरणामृत शीशी में भरकर रख लिया। अकस्मात् मेरी दृष्टि साथ वाले मकान की खिड़की पर पड़ी। देखा एक अवगुण्ठनवती स्त्री अपलक दृष्टि से श्रील बाबाजी महाशय के दर्शन कर रही थी व अश्रुधाराओं से उनका मुखमण्डल प्लावित हो रहा था। उनकी व्याकुलता ने मुझे मुग्ध कर दिया। बाद में सुना वे प्रसिद्ध धनी लाहा घराने की बहु थीं। श्रीपाद से उन्होंने दीक्षा तो ली थी परन्तु श्रीगुरु सेवा का सौभाग्य उन्हें कभी नहीं मिलता था। दर्शन भी बहुत कम मिलते थे। श्रीपाद पार्षदों के संग कभी-कभी कीर्तन करने जाते थे उनके घर। बहुत बड़ा परिवार था। अत: श्रीपाद के सेवा के अनुकूल वातावरण नहीं होता था।

कीर्तन के पश्चात् सब लोग दण्डवत् प्रणाम करते थे। किंचित मात्र बाल भोग का प्रसाद पाकर श्रीपाद चले आते थे। वहाँ उनका मन बिलकुल नहीं लगता था। उस स्त्री की निरन्तर अश्रु पान व व्याकुलता को देख मैं समझ गया उनकी

श्रीगुरु में कितनी प्रीति, निष्ठा थी जो दर्शन मात्र से ही इतनी विह्वल हो रही थीं। उनका यह वृत्तान्त श्रीपाद ने स्वयं मुझे बताया।

सन्ध्या के सात बजे थे। माखनदा, चारुदा, नन्ददा, युगल दा, बलाईदा, प्रभृति आ जुटे। परस्पर प्रसंग करते हुए समय बीत गया। रात के बारह बजे सबने प्रसाद पाया। सभी भक्त घर लौट गये। श्रीपाद पलंग पर विश्राम करने लगे। मेघलाल दा व मैं नीचे चटाई बिछाकर सो गये। प्रातःकाल पाँचुदा गाड़ी लेकर आ पहुँचे। किंचित् मरिचजल प्रसाद पाकर श्रीपाद वहाँ से रवाना हुये। हावड़ा पुल पर गाड़ी रोककर श्रीपाद गंगाजी में स्नान करके प्राय: दस बजे पाँचुदा के घर आ पहुँचे।

श्रीपाद आन्हिक करने चले गये। मैं बैठे तिलक लगा रहा था। उसी समय एक बालक ने आकर मुझसे पूछा—'श्रील बाबाजी महाशय कहाँ हैं ?' मैंने उत्तर दिया 'ऊपर के कमरे में हैं।' बालक की आयु प्राय: पन्द्रह या सोलह वर्ष की थी। उसका शरीर गठा हुआ तथा बलिष्ठ था। श्रीपाद के शरण में रहने के लिए आया हुआ था। उसने अपना नाम 'किशोरी' बताया। मैंने कौतूहल पूर्वक उससे पूछा—'इतनी छोटी अवस्था में तुम साधु बनने क्यों आये हो ?' मेरी आयु भी उस समय सत्तरह या अट्ठारह वर्ष की ही थी। बालक ने हँसते हुए मुझसे पूछा, 'आप क्यों छोटी उम्र में साधु बने हैं ?'

मैं हँसते हुए उसे ऊपर श्रीपाद के पास ले गया। श्रीपाद उससे अति प्रीतिपूर्ण व्यवहार करने लगे। तभी से किशोरी श्रीपाद के आश्रय में रहने लगा। बाद में उसने दीक्षा ले ली व

श्रील बाबाजी महाशय की सेवा में रहकर अपना जीवन धन्य करने लगा। मैंने तब तक भी दीक्षा नहीं ली थी। फिर भी श्रीपाद की निरन्तर करुणाधारा से सिंचित होता रहता था।

संध्या के समय हम लोग 'हुगली' आ पहुँचे। श्रील बाबाजी महाशय ने अधिवास कीर्तन किया। चारुदा, बलाइदा, युगल दा, ब्रजेनदा, माखनदा, तिनुदा आदि कितने ही भक्त आ जुटे। कीर्तन में आनन्द की बाढ़ आ गई। प्रसाद पाकर सभी ने विश्राम किया। प्रातः होते ही समस्त नगरी नाम ध्वनि से मुखरित होने लगी। नाम से आनन्द की जो तरंगें उठने लगीं उसका वर्णन करना असम्भव है। संध्या के समय श्रीपाद स्वयं नाम करेंगे। यह सुनकर दूर-दूर से भक्तों का समागम होने लगा। श्रीपाद ने रात के एक बजे तक श्रीनाम महिमा का कीर्तन किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल श्रील बाबाजी महाशय ने श्रीमन् महाप्रभु जी का आह्वान कीर्तन करके 'प्रेमदाता निताइ बले गौर हरि हरि बोल', यह नाम लेकर नगर कीर्तन को निकले। दो तीन घरों के आगे से नाम करते हुए गंगाजी के तट पर आ पहुँचे। गंगाजी के किनारे जो चौड़ी सड़क गई है उसी पर नाम लेकर चले। गंगाजी के दर्शन मात्र से उन्हें लीला उद्दीपन होने लगा, वहीं पर खड़े होकर गाने लगे—

सुरधुनीर (गंगाजी) कूले कूले, जाय निताइ हेले दुले। हेमदण्ड बाहु तुले, "गौर हरि बोल" बले, जाय निताइ हेले दुले। कुछ देर तक मातन कीर्तन होने लगा। श्रीपाद दोनों

भुजा उठाकर नृत्य करने लगे। संग के प्राय: पाँच सौ भक्तों ने भी नृत्य करना आरम्भ किया। हरेकृष्ण दादा व मदनदा अपूर्व मृदंग बजाते हुये नृत्य कर रहे थे। इस प्रकार नृत्य करते हुये प्राय: एक मील तक चले। मार्ग पर जो भी मिलते वे ही कीर्तन में सम्मिलित हो जाते।

रास्ते पर घोड़ागाड़ी व मोटरें सब रुक गईं थीं। लोग गाड़ी से उतर कर कीर्तन में सम्मिलित हो रहे थे। मार्ग के दोनों ओर ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं के ऊपर से महिलायें फूलों की वर्षा करती हुईं हरि ध्वनि व मंगल ध्वनि कर रहीं थीं कोई-२ द्वार पर खड़ी होकर ताली बजाकर नाम कीर्तन करती हुई भाव-विभोर हो रही थीं। कितने ही भक्त आविष्ट होकर सड़क पर लोटपोट हो रहे थे। उस दिन कीर्तन में जो आनन्द व उन्मादना थी वह अवर्णनीय है।

श्रीपाद के संग तिनुदा व बलिष्ठ वपुधारी (बलवान) बलाइदा भी खूब नृत्य कर रहे थे। इस प्रकार प्राय: एक मील तक चलने के बाद एक मन्दिर में आ पहुँचे। मन्दिर में अपूर्व सुठाम गौरसुन्दर का श्रीविग्रह विराजमान था। वहाँ पर बहुत देर तक कीर्तन करके पुनः नृत्य करते हुए चलने लगे। प्राय: एक बजे कीर्तन करते हुए लौट आये। 'श्रीगौर एल घरे, आमार निताइ एल घरे' इत्यादि कीर्तन होने लगा। 'दधि-मंगल', 'हरिर लूट' इत्यादि के बाद प्राय: ढाई बजे कीर्तन समाप्त हुआ। स्नान, आनूह्निक के बाद प्रसाद पाते-पाते चार बज गये। कितने ही दीन-दरिद्र प्रसाद पाने लगे। इस प्रकार

परम आनन्द पूर्वक महोत्सव सम्पन्न हुआ। उस दिन वहीं पर रहकर दूसरे दिन पाँचुदा के घर लौट आये।

एक दिन श्रील बाबाजी महाशय मुझसे कहने लगे— 'श्रीपानीहाटि' का उत्सव होने वाला है। जिस वृक्ष के नीचे प्रभु निताइ बैठे थे, वह वृक्ष आज भी है, निकट ही उनके प्रिय परिकर श्रीराघव पंडित जी का घर भी है। मेरे साथ जाने पर सब दर्शन कर सकते हो। श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीनिताइ चाँद का यति धर्म छुड़वाकर उन्हें गृहस्थी बनाया था व उन्हें गौड़देश जाकर आचण्डाल सभी जीवोंको नाम प्रेम वितरण की आज्ञा दी थी।

श्रीनीलाचल धाम (पुरी धाम) में 'गम्भीरा' में बैठकर दोनों प्रभुओं ने विचार (युक्ति) किया जीव उद्धार के निमित्त। फिर गौरसुन्दर ने निताइ चाँद को गौड़मण्डल भेज दिया। उस दिन मैंने कीर्तन किया था, तुम्हें याद नहीं? अच्छा तो सुनो—'कितनी दया है उनकी जीव के प्रति। एक दिन प्रभु गौरसुन्दर निताइ चाँद को एकान्त में अपने पास बिठाकर उनके दोनों हाथ अपने हाथ में लिये जीव के प्रति सदय होकर मधुर स्वर से कहने लगे—जाओ निताइ, सुरधुनी (गंगाजी) के तट पर हरिनाम वितरण करो।' गौरसुन्दर जीव के दुःख से दुखित होकर रुदन करते हुए कह रहे थे—निताइ मेरी बात मानो, जीव को कोई विधि-विधान नियम न बताना, नहीं तो वे हरिनाम नहीं करेंगे।

प्रभु कहे नित्यानन्द, जगजीव हइल अन्ध
केह तो ना पाइलो हरिनाम।

एइ निवेदन तोरे, नयने देखिबे जारे
कृपा करि लवाइओ नाम ॥
जतो पापी दूराचार, निन्दूक पाषण्डी आर
केह जेनो वंचित ना हय ।
शमन बलिया भय, जीवे जेनो नाहि हय,
सबे जेनो हरिनाम लय ॥
कुमति तार्किक जन, पडुआ अधमगण,
तारा जन्मे जन्मे भकति विमुख ।

(तारा तर्कनिष्ठ अभिमानी बले, वंचित करो ना निताइ)

कृष्ण प्रेम दान करि, बालक पुरुष नारी,
खण्डाइओ सबाकार दुख ॥
संकीर्तन प्रेम रसे, भासाइया सब देश,
पूर्ण करो सबाकार आश ।
हेनो कृष्ण अवतारे, उद्धार नहिल जारे,
कि करिबे बलराम दास ॥

श्रीमन्महाप्रभु कहते हैं, हे निताइ दादा, संसार के सब जीव (विषय भोगों में) अंधे हो रहे हैं, किसी ने भी हरिनाम रूपी धन प्राप्त नहीं किया । आपसे मेरा यही निवेदन है कि जिसे भी आप नेत्रों से देखो, उसी पर कृपा करके हरिनाम कराओ । जितने भी पापी, दुराचारी, निन्दक, पाषण्डी लोग हैं, किसी को भी हरिनाम से वंचित न रखना । यमराज का भय, जिससे दूर हो जावे और सब हरिनामामृत का पान करें । कुमति, तार्किक लोग, विद्यार्थी, अधम लोग जो कि जन्म-२ से भक्ति विमुख हैं, उन्हें भी हे निताई चाँद, वंचित न रखना ।

बालक, पुरुष एवं नारीगण सबको कृष्णप्रेम प्रदान करके, उनका दुःख दूर करना।

समस्त देश को संकीर्तन प्रेम की तरंगों में डुबाकर, सबकी आशा पूर्ण करना। ऐसे कृष्ण अवतार में (पतित पावन प्रेम दाता, श्रीकृष्ण के अवतार स्वरूप भगवान् गौरसुन्दर के अवतार में) भी जिसका उद्धार नहीं हुआ—बलरामदास जी कहते हैं—उसका क्या किया जाय (अर्थात् वह जीव तो अत्यन्त ही अभागा है)।

श्रील बाबाजी महाशय यह 'पद' कहते हुए अश्रुधारा से प्लावित हो रहे थे। पुनः कहने लगे, 'जिस वृक्ष के नीचे नाम प्रचार लीला प्रारम्भ हुई थी हम लोग वहीं पर तो जायेंगे। वह तिथि तो आने वाली है, जाकर दर्शन करना तब।' मैंने पूछा, 'पाँच सौ वर्ष हो गए, क्या अब तक वह वृक्ष विद्यमान है !!' हाँ है। उस वृक्ष के नीचे बेदी बनवाई गई है। उत्सव में लाखों लोग आकर दर्शन करते हैं। वहीं से सर्वप्रथम 'मालसा' भोग का प्रचलन आरम्भ हुआ है।'

श्रीपाद आगे कहने लगे, 'श्रीरघुनाथ गोस्वामी का नाम तो सुना होगा ?' मैंने उत्तर दिया, 'जी हाँ, छः गोस्वामियों में से एक गोस्वामी हैं।' उन्होंने पूछा, 'तब तो उनकी जीवनी भी पढ़ी होगी ?' 'थोड़ा बहुत जानता हूँ' मैंने उत्तर दिया। श्रीपाद कहने लगे—'श्रीरघुनाथदास जी बहुत धनी थे। उन दिनों उनके स्टेट (जमींदारी) की आमदनी बारह लाख की थी। सप्तग्राम में उनका घर था। बचपन से ही वे

श्रीमन्महाप्रभु व नित्यानन्द प्रभु के भक्त थे। मन ही मन उन्होंने उनके श्रीचरणों में आत्मसमर्पण किया था।

श्रीनिताइ चाँद जब पानिहाटि में नाम प्रचार के निमित्त आये थे तब श्रीरघुनाथदास उनके दर्शन करने गये। प्रभु के निकट पहुँचते ही श्रीनित्यानन्द उन्हें आलिंगन करते हुए बोले—अरे चोर ! इतने दिन के बाद तू पकड़ा गया है, आज मैं तुझे दण्ड दूँगा। मेरे संगी सभी भक्तों को तुझे आज चिड़वा प्रसाद पवाना होगा।'

श्रीरघुनाथदास जी ने इससे पहले कई बार श्रीमन्महाप्रभु की कृपा लाभ करने की चेष्टा की थी, परन्तु विफल रहे। अन्ततः प्रभु की अभिन्न शक्ति श्रीनित्यानन्द जी की शरण लेनी पड़ी। इसी कारण प्रभु ने उन्हें चोर कहकर पुकारा। श्रीनित्यानन्द जी के आनुगत्य के बिना गौरसुन्दर की भक्ति असम्भव है। प्रभु के आदेश मात्र से ही श्रीरघुनाथदास ने अपने सेवकों द्वारा यथासम्भव दूध, दही, चिड़वा, चीनी, केला सन्देश मँगवाया। चिड़वा धोकर बड़े-बड़े 'मालसा' (मिट्टी के बरतन) में रखा गया। उसमें दूध के संग अन्य सभी सामग्री मिलाकर भोग लगाया गया। चारों ओर लाखों की संख्या में भक्तगण कीर्तन कर रहे थे।

नाम ध्वनि से आनन्द की तरंगें उठ रहीं थीं। श्रीनित्यानन्द प्रभु के स्मरण मात्र से ही स्वयं प्रभु गौरसुन्दर ने अलक्षित रूप से श्रीधाम नीलाचल से आकर भोग स्वीकार किया। किन्हीं-२ भाग्यवान् भक्तों को दर्शन मिला। एवं सभी भक्तों को प्रभु की पहनी हुई 'द्रोनी' पुष्पों की सुगन्ध प्राप्त हुई थी।

सभी भक्तोंने प्रभु का अधरामृत 'मालसा' में पाया। श्रीरघुनाथ दासजी को पहले श्रीनित्यानन्द प्रभु की कृपा प्राप्त करनी पड़ी। उन्हीं की कृपा से श्रीगौर कृपा प्राप्ति सम्भव है अन्यथा नहीं। तब से 'मालसा भोग' प्रारम्भ हुआ तुमने देखा होगा हम लोग अष्टप्रहर अखण्ड श्रीनाम यज्ञ के पश्चात् यही मालसा भोग लगाते हैं। मैं बड़े उल्लास से बोल पड़ा। 'मालसा भोग मुझे बहुत अच्छा लगता है, बहुत ही स्वादिष्ट होता है।' श्रीपाद हँस पड़े और कहने लगे, 'क्या तुझे ही केवल अच्छा लगता है मुझे नहीं! देखा नहीं मैं सबसे पहले थोड़ा सा मालसा भोग पाकर फिर अन्य प्रसाद पाता हूँ।'

इसी प्रकार उनके मुख से हम लोग भगवत् प्रसंग श्रवण कर रहे थे कि उस समय 'हीरु' व 'क्षीरु' नाम के दो उत्कल-वासी बालकों ने आकर श्रीपाद के चरणों में दण्डवत् किया लोटपोट होते हुए रोने लगे। वे रोते हुए केवल एक ही प्रार्थना कर रहे थे—'प्रभु माया का बन्धन छुड़वाकर हमें अपने श्री-चरणों में आश्रय प्रदान कीजिये।' उनके उस व्याकुल आर्तनाद को सुनकर श्रीपाद करुणा से विगलित होकर कहने लगे, 'उठो, स्थिर होओ। क्या 'कटक' से आ रहे हो? कल की गाड़ी से रवाना हुए हो, सारी रात जागते हुए आये हो। जाओ पहले स्नान करके थोड़ा सा शरबत प्रसाद पाओ।'

श्रीपाद उन्हें भेजकर स्वयं ऊपर आये, मैं भी उनके साथ आया। श्रीपाद मेरी ओर देखते हुए बोले, 'देखा! कितनी आर्ति, कितनी व्याकुलता। इन दोनों की केवल एक ही प्रार्थना है—माया से मुक्त होकर प्रभु के शरण में रहना। मनुष्य का

यथार्थ प्रार्थना यही है। मेरे पास जितने लोग आते हैं, उनमें से अधिकतर लोग चाहते हैं—बीमारी ठीक हो जाये, नौकरी लग जाये, व्यापार ठीक चले। इस प्रकार की कामना-वासना लेकर; संसार में सुख दुख तो आते ही रहते हैं। कभी हानि, कभी लाभ। 'दुख' कोई नहीं चाहता, फिर भी दुःख आता है।

इसी प्रकार सुख भी कभी-कभी बिना बुलाये आता है। चाँदनी के बाद अन्धकार—यह तो परम सत्य है। ससार में किसी को निरन्तर सुख की प्राप्ति नहीं होती। फिर वासना में सुख कहाँ? संसार में शोक, दुःख तो है ही। देखो, प्रायः बेटा बड़े होकर बहू के वश में आकर अपने माता-पिता से अलग हो जाते हैं, उनकी खबर तक नहीं लेते। पुत्र के प्रति इतनी ममता का यह फल मिलता है। लाड़ली बेटी बड़ी होती है, बहुत रुपये खर्च करके उसका विवाह किया जाता है। कुछ दिनों के बाद विधवा होकर घर लौट आती है, सारी उमर उसी की सेवा करनी पड़ती है

इस प्रकार की घटनायें घटती रहती हैं। आजकल सम्मान प्राप्त करके कितने लोग अहंकार से फूल जाते हैं, लोग उनकी प्रशंसा करते हैं, भक्ति करते हैं, कल वे ही लोग उनकी निन्दा करने लगते हैं। यह तो प्रसिद्ध है, 'तुल्य निन्दा स्तुति मौनी' संसार में रहने पर सभी सहन करने पड़ते हैं। भाग्यवान वही है, जो श्रीगुरुचरणाश्रय लेकर हरिनाम करता है। कितने जन्मों की सुकृति से जीव की यह अवस्था आती है। इसके बिना सभी को बन्धन की दशा में रहना पड़ता है। श्रीकृष्ण भजन व श्रीगुरुसेवा के बिना माया जाल से मुक्त होना असम्भव है।

महत् कृपा बलवान है, महत्-कृपा बिना कुछ भी सम्भव नहीं है।

इसी प्रकार कितनी गूढ़ सिद्धान्त-पूर्ण कथा श्रीपाद सुना रहे थे। उसदिन कई लोगोंने दीक्षा लेनी थी। श्रीपाद ने स्नान-आन्हिक के पश्चात् पाँचुदा द्वारा हीरु तथा बीरु को भी बुलवाया। हीरु व बीरु को मन्त्र दीक्षा देकर श्रीपाद ने उन्हें अपने श्रीचरणों का आश्रय देकर अपनी श्रीअंग-सेवा में नियुक्त किया। ऐसा लगने लगा कि जैसे उनके साथ उन दोनों का जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध रहा होगा। मुहूर्त काल में ही वे उनके अपने हो गये। मुझे लगा जो श्रीगुरुदेव के नित्य किंकर होते हैं, उनके नित्य सेवक होते हैं उन्हें ही इस प्रकार कृपा लाभ होती है। एक मैं ही अभिमानी था जिसने उनके पास रहते हुए भी, अपार स्नेह प्रीति लाभ करते हुए भी मन्त्र दीक्षा नहीं ली थी। वे मुझे देते भी नहीं थे। मेरी प्रतिज्ञा थी कि मैं स्वयं श्रीगुरुचरणों में शरणागत होकर दीक्षा नहीं लूँगा; श्रीगुरुदेव स्वयं मुझे बुलाकर अयाचित् रूप से मन्त्र प्रदान करेंगे।

दो एक दिन बाद श्रील बाबाज़ी महाशय परिकरों के साथ श्रीपानीहाटि में श्रीरघुनाथदास गोस्वामी के दण्ड महोत्सव पर गये। उसी वट वृक्ष के नीचे जाकर वे साष्टांग दण्डवत प्रणाम कर कीर्तन करने बैठे। चारों ओर लाखों जनता की बहुत भीड़ थी। लोगों का समुद्र जैसे उमड़ रहा था। जो भी वहाँ पहुँच रहे थे, उत्सुकता से कह रहे थे, 'वह देखो श्रीपाद बाबाज़ी महाशय सभा के मध्यस्थल पर शोभा पा रहे हैं।'

कुछ देर बाद ही कीर्तन प्रारम्भ हुआ। कीर्तन में ऐसी

उन्मादना की सृष्टि हुई जो सभी श्रीपाद के संग रोदन कर रहे थे। मानों रोने का मेला लग गया हो। उनका कीर्तन करते हुए क्रन्दनरत श्रीमूर्ति को देखकर मानो पत्थर भी पिघल रहा था। सारा कीर्तन तो मुझे अभी स्मरण नहीं है परन्तु उसकी एक पंक्ति आज भी मेरे हृदय पटल पर अविचल अंकित है—'एई तो सेई वट वृक्ष............' उसका भावार्थ इस प्रकार है—

यह तो वही वटवृक्ष है, पर कहाँ है मेरे निताइ गुणमणि ? आज तो वही तिथि है, आप अवश्य आये हो यहाँ। हे गंगे ! आप ही बताओ कहाँ हैं मेरे गौरसुन्दर ! कहाँ हैं उनके दास रघुनाथ !!' इस प्रकार विलाप कीर्तन से मानो पत्थर भी पिघलने लगे थे। प्रायः पाँच बजे तक कीर्तन हुआ। कीर्तन के बाद हम सबने वहीं किसी भक्त के घर जाकर किंचित् मालसा भोग प्रसाद ग्रहण किया। वहीं पर उनके गुरुभ्राता श्रीअमूल्य-धन राय भट्टजी से भेंट हुई। उनके संग प्रीतिपूर्ण सत्संग होने लगा।

इसी तरह एकबार श्रीपाद के संग 'बराह नगर' में श्रीमन् महाप्रभु के आगमन उत्सव पर गया था। उस समय वह स्थान जंगल से पूर्ण था। श्रीमन्महाप्रभु जिस स्थान पर आकर बैठे थे वह स्थान चिंहित् किया गया था। जीर्ण भग्न दशा थी तब, टूटे-फूटे कमरे में श्रीमन्महाप्रभु विराज रहे थे। चारों ओर पोखर, साँप, मेंढ़क, जंगलपूर्ण स्थान था। श्रीपाद कुछ देर वहाँ पर कीर्तन करके पास ही एक जमींदार बाबू के घर ठहरे थे।

आज बराह नगर पाठवाड़ी की वह दशा नहीं है। श्रीपाद को जब से श्रीपाठवाड़ी की सेवा प्राप्ति हुई है। तब से उसकी उन्नति हुई है। आज वहाँ पर श्रीमन्दिर, विशाल नाट मन्दिर, ग्रन्थ मन्दिर, वैष्णव खण्ड आदि का निर्माण हुआ है। प्रतिदिन हजारों भक्त दर्शन करने आते हैं।

एक दिन श्रील बाबाजी महाशय ने मुझसे कहा, "बसन्तपुर के एक भक्त के घर नाम यज्ञ है। बहुत गरीब होते हुए भी वे भिक्षा द्वारा हरिसभा में नाम यज्ञ उत्सव की व्यवस्था किया करते हैं। प्रेमी भक्त हैं वे। मेरे साथ चलोगे वहाँ ?" 'आप जायेंगे तो अवश्य जाऊँगा।' मैंने उत्तर दिया। एक दो दिन के बाद मैं कुछ अस्वस्थ हो गया। मुझे बुखार चढ़ गया। उसी दिन संध्या के समय अधिवास कीर्तन था। अतः श्रीपाद मुझे वहीं छोड़कर परिकरों के संग बसन्तपुर चले गये। बाहर घोर वर्षा थी फिर भी श्रीपाद नहीं रुके।

क्रमशः मेरे लिये उन्हें छोड़कर रहना असहनीय हो पड़ा। बार-बार सबको नब्ज दिखाने लगा—कि बुखार उतरा या नहीं। रात को बुखार उतर गया। जानकी भी नहीं गया था श्रीपाद के साथ। मैंने उससे विनती की मुझे श्रीपाद के पास ले जाने की। 'तुम्हें तो बुखार चढ़ा था, पैदल चल सकोगे' ? जानकी ने पूछा। 'पैदल चलने की चिन्ता नहीं, बुखार तो उतर गया है।' मैं बोला। 'अच्छा ! तो ठीक है, कल सुबह हम दोनों बसन्तपुर रवाना हो जायेंगे।

यद्यपि दो दिन के बाद ही श्रील बाबाजी महाशय को लौट आना था तथापि मेरे लिए उस समय इतने कम समय भी उन्हें

छोड़कर रहना असम्भव था। इसका एकमात्र कारण उनकी अपार करुणा। उनके स्नेह प्रीति ने मुझे संसार के सभी आकर्षणों से मुक्त कर दिया था। संसार के सभी सुख उपभोग को तुच्छ करके मेरा गृह त्याग का यही मुख्य कारण था।

मनुष्य बहुत कुछ कर सकता है। बड़ी-बड़ी उपाधि, प्रमाण पत्र हासिल कर सकता है। यथेष्ट धन कमाकर बड़ी-बड़ी इमारतें खड़ी कर सकता है। स्त्री-पुत्र-कन्या के निमित्त लाखों रुपये जमा करता है। बड़े-बड़े उद्यान बनवाकर उसमें अपनी प्रतिमूर्त्ति स्थापित करता है परन्तु संसार की माया से मुक्त होकर अनासक्त होकर श्रीकृष्ण-भजन-अनुरागी हजार चेष्टा से भी नहीं बन सकता। यह एकमात्र महत् कृपा से ही सम्भव है। श्रीगुरु चरणाश्रय व उनकी निष्कपट सेवा से ही श्रीकृष्ण भजन करने का सौभाग्य अनायास प्राप्त होता है। एकमात्र श्रीगुरु पादपद्म की अपार करुणा से ही मनुष्य को भक्तिमार्ग का सन्धान मिलना सम्भव है। इसके बिना यह भक्ति सदा के लिए सुदुर्लभ है।

श्रीगुरु मुख से ही मैंने सुना है, माया का बन्धन कोई नहीं तोड़ सकता। संसार की यह नश्वर आसक्ति को त्यागने में मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंग व देवता लोग भी असमर्थ हैं। उदाहरण के लिए—पशु मेला में जैसे गाय भैंस आदि को छोटी-छोटी रस्सी से बाँधकर एक लम्बी मोटी रस्सी में बाँध दिया जाता है। उस लम्बी रस्सी को दो पेड़ के साथ बाँधते हैं। जब कोई खरीददार आता है तो अपने मन पसन्द पशु का

उचित मूल्य चुकाकर उसे उस मोटी रस्सी से खोलकर, उसे मुक्त करके अपने साथ ले जाता है।

उसी प्रकार मनुष्य भी माया की रस्सी से बँधा रहता है। महत् जन श्रीगुरुदेव हैं, वे कृपा मूल्य देकर, संसार से मुक्त कराके जीव को अपने साथ ले जाते हैं। एकमात्र श्रीकृष्ण इच्छा से, श्रीगुरु कृपा से ही इस भुवन मोहिनी माया के बंधन से मुक्ति मिलती है। उनकी कृपा के अतिरिक्त, काय-मन-वचनोंसे उनकी शरणागति के बिना किसी भी साधना के द्वारा इस मृगतृष्णा रूपी संसार से छुटकारा पाना सम्भव नहीं है।'

मैं और जानकी सुबह जल्दी उठकर, हाथ मुँह धोकर बसन्तपुर रवाना हो गये। बर्षा हो रही थी उस समय, हमारे पास छाता भी नहीं था। भीग रहे थे, पर श्रीपाद के दर्शन उत्कण्ठा से हृदय आनन्द से भरपूर था। 'हावड़ा' से गाड़ी में बसन्तपुर स्टेशन पहुँचे। भारी वर्षा हो रही थी। स्टेशन से बसन्तपुर गाँव तीन मील दूर था। खेतों के बीच से जाना पड़ता था। पर चारों ओर पानी से डूबा हुआ था दोनों सोचने लगे कैसे पार किया जाय। जानकी तो लौटने को तैयार हो गया। पर मैं राजी नहीं हुआ। पानी कहीं तो कमर तक खड़ा था, और कहीं-कहीं तैरकर जाना पड़ता था।

मैंने जानकी से कहा, 'मुझे खूब तैरना आता है, तुम्हें आता है, तो चलो तैरकर पार हो जाते हैं।' दोनों पानी में कूद पड़े और काफी दूर तक पहुँच गये। बारह बजे से चार बजे तक कभी तैरकर और कभी पानी में चलकर हम दोनों बसन्तपुर पहुँचे। दोनों बहुत थक गये थे। आगे और नहीं

चला जा रहा था। फिर भी हमें श्रीपाद के पास पहुँचना ही था। धीरे-धीरे उनके पास जा पहुँचें। श्रीपाद नाम-माला जपते हुए बरामदे में टहल रहें थे। उनके दर्शन पाते ही दोनों आनन्द पूर्वक उनके श्रीचरणों में गिर गये। सारा शरीर पानी से भीगा हुआ था। हमें देखकर श्रीपाद आनन्द से विस्मित व अभिभूत हो गये।

हमारे गीले कपड़े, हाथ पैर ठण्डे, श्रान्त-क्लान्त-दशा को देखकर श्रील बाबाजी महाशय करुणा से आप्लुत हो गये। तुलसी व उसकी दीदी दौड़े आये हमें देखकर कहने लगे, 'अभी कुछ ही देर पहले श्रीपाद कह रहे थे कि तुम लोग आओगे। चारों ओर पानी में कैसे पार होकर आना होगा—चिन्ता कर रहे थे।' तुलसी की दीदी बोली—'आज न जाने क्यों आन्हिक के बाद श्रील बाबाजी महाशय ने दो गिलास प्रसादी शरबत अलग से रख दिये। हमारे माँगने पर भी उन्होंने नहीं दिया। कहने लगे 'वे आयगे तो उन्हें देना।' अब समझ में आया उन्होंने ऐसा क्यों कहा था।'

दोनों ने उनका अधरामृत प्रसादी शरबत पाया। 'भीगे कपड़े उतार कर यह चादर लो' यह कहते हुए श्रीपाद ने मुझे अपनी चादर पहनने को दी। जानकी को मेघलाल दादा ने धोती पहनने को दी। श्रीपाद एक कुर्सी पर बैठे थे। हम दोनों उनके चरणों में बैठ गये। श्रीपाद पूछने लगे, 'सुबह से कुछ खाया है या नहीं? तुम्हें बुखार था, तभी तो साथ नहीं लाया।' उसी दिन रात को बुखार उतर गया था, सुबह तो बिल्कुल नहीं था, हम से रहा नहीं गया, तभी तो दोनों निकल

पड़े।' मैंने उत्तर दिया। श्रीपाद कहने लगे, 'आज दिन भर वारिश में भीगे हो। सारे खेत पानी से भरे पड़े हैं, तुम लोग आये कैसे ? मैं तो पालकी में आया। उस समय भी काफी पानी था। रात भर वर्षा के कारण चारों ओर पानी भर गया है। दो दिन की तो बात थी, क्या रहा नहीं गया !!' मुझ से कुछ कहा नहीं गया, चुप करके सिर झुकाये बैठा रहा।

श्रीपाद कहने लगे, 'मैं भी बन्धुसुन्दर को छोड़कर नहीं रह सकता था। तुम्हारे जो अद्वैत काकाजी हैं न, वे भी मेरे बिना नहीं रह सकते थे। जब तक अपने साथ न ले जाऊँ, मेरा पीछा ही नहीं छोड़ता था। नव अनुराग है न !' फिर तुलसी की दीदी से कहा, 'देखो, कहीं यह दोनों 'छोकरे' बीमार न पड़ जाएँ। इन्हें गरम-गरम प्रसाद दो, और गरम पानी पीने के लिए दो।'

दीदी हम दोनों को प्रसाद पवाने भीतर ले गईं। तिनुदा, विश्वरूपदा हमें देखकर कहने लगे, 'इतने पानी में तैरकर क्या तुम्हें आना चाहिए था ?' हम दोनों चुप रहे, प्रसाद पाने लगे। प्रसाद पाते ही थकावट महसूस होने लगी, जाकर सो गये। आठ बजे नींद खुली, सारी थकावट जा चुकी थी। श्रीपाद ने आकर हाथ पकड़ कर उठा दिया और कहा, 'लो थोड़ा बहुत प्रसाद पा लो। कल नगर संकीर्तन व महोत्सव है। कल प्रसाद पाने में देर होगी।' हम दोनों फिर से उनके साथ प्रसाद पाकर सो गये।

दूसरे दिन यथाविधि नगर कीर्तन हुआ। स्नान-आन्हिक के बाद हरिसभा में सब लोगों ने प्रसाद पाया। केवल तिनुदा

और श्रीपाद ने भीतर बैठकर प्रसाद पाया। प्रसाद पाते समय कई लोग नाम ध्वनि देने लगे। चारुदा ने उस दिन जो मधुर ध्वनि दी थी वह आज तक मुझे स्मरण है। वह इस प्रकार थी—

कि लागि आइलि भवे।
एमन जनमे, हरि ना भजिलि, केमन मानुष तबे॥
मानुष आकार हइले कि हय, करह भूतेर काम।
नहिले बदने, केन ना बलह, श्रीगोबिन्द नाम॥
पाखीरे जे नाम लओयाइले लय, शुक शारी आदि यत।
तुमि जे इहाते आलस्य करह, ए हय केमन मत॥
दिवस रजनी, आबोल-ताबोल, पचाल पाड़िते पार।
ताहार भितरे, कखन केन कि गोबिन्द बलिते नार॥
भजिब बलिया कहिया आइलि भूलिलि कि सुख पेये।
डुबिलि आबार, संसार कूपेते, मजिबि नरके गिये॥
बदन भरिया हरि हरि बल, क्षति ना हइबे ताय।
कहे प्रेमानन्द, तबे ये नितान्त, एड़ाबे कृतान्त दाय॥

भावार्थ—

क्यों आया संसार में, करना क्या है तूने।
जनम पाकर भी, हरि भजन न किया, फिर मनुष्य कैसे बने॥
मनुष्य जैसा आकार है, पर करते, भूतों जैसा काम।
नहीं तो मुख से क्यों नहीं लेते श्रीगोविन्द का नाम॥
शुक, सारी, को सिखाने पर वे रटते हैं यही नाम।
पर तुम क्यों इससे आलस करते, नहीं लेते हरि नाम॥
इधर-उधर की बातों में तू दिन भर नहीं थकता।

उसी बीच एकबार क्या तू 'हे गोविन्द' नहीं कह सकता ।।
'गोविन्द भजन करूँगा' कहकर आया था संसार में ।
कौन से सुख में भुलाकर तुझको डुबो दिया फिर नरक में ।।
नहीं घटेगा तेरा कुछ भी, नाम हरि का लूट ।
'प्रेमानन्द' आनन्द मगन, यम ,यातना जाएगी छूट ।।

उसी दिन कलकत्ता लौटना था। चारों ओर वर्षा का पानी ठहरा हुआ था। बड़ी कठिनाई से हम लोग रात के आठ बजे पाँचुदा के घर पहुँचे। उत्कलवासी जो दो भाई आये थे उनमें से 'बीरु' को भी बुखार चढ़ा था। अत: वे भी बसन्तपुर नहीं जा पाये थे। वे भी मुझसे बहुत प्रीति करते थे। उनकी एक मात्र वासना थी श्रीगुरु सेवा। पर उन्हें प्राय बुखार रहने से सेवा नहीं कर पाते। अत: श्रीमेघलालदा व उपेन दादा श्रीपाद की सेवा में रहते थे। श्रील बाबाजी महाशय परिकरों के संग श्रीआड्डि महाशय के घर कीर्तन करने चले गये। बीरु उस दिन बहुत अस्वस्थ था। उसे १०५ डिग्री बुखार था अत: उस दिन मैं उसके पास रहा। कुछ देर बाद ज्वर के प्रकोप से मूर्छित हो गये।

अगले दिन सुबह उसने मुझे इशारे से अपने पास बुलाया। मैं उनके निकट गया। धीरे-धीरे मुझसे कहने लगा, 'हाय, हाय ! मैं श्रीगुरुसेवा से वंचित होकर जी रहा हूँ। मुझे श्रील बाबाजी महाशय का वह चित्र लाकर दो।' मैंने दीवार से चित्र उतार कर उसे दिया। चित्र को दोनों हाथों से पकड़ कर 'आ:' कहते हुए अपने हृदय से लगा लिया। 'जय श्रीगुरु' कहकर उसने आँखें बन्द कर लीं। मुझे लगा जैसे उसे नींद आ

गई हो। फिर भी मन में शंका हो गई। धीरे-धीरे उसे स्पर्श किया, तो देखा उसका शरीर एकदम ठण्डा पड़ा हुआ था। दौड़कर पाँचुदा को बुला लाया। और लोग भी आये। यह दृश्य देखकर सभी की आँखें भर आई।

पाँचुदा गाड़ी लेकर श्रीपाद के पास पहुँचे उन्हें खबर देने। सारा वृत्तान्त सुनकर श्रीपाद नाम माला जपते हुए उसी गाड़ी से उसी समय बीरुके पास आ पहुँचे। बीरु ने तब तक भी अपने दोनों हाथों से श्रील बाबाजी महाशय का चित्र हृदय से लगा रखा था। 'जय श्रीराधारमण' कहते-कहते श्रीपाद के नयनों से अश्रुधारा बहने लगी, और मृत बीरु के हाथ खुल गये।

मैंने चित्रपट पुनः दीवार पर टाँग दिया। श्रीगुरुदेव को अपने हृदय में धारण करके प्राण त्यागते देखकर सभी आश्चर्य चकित रह गये। इस प्रकार की गुरुनिष्ठा बहुत कम दिखाई पड़ती है। श्रीपाद बहुत देर तक उदास रहे। श्रीआड्डि महाशय के घर से सभी भक्त आ पहुँचे। सभी भक्तों ने मिलकर हरि-नाम करते हुए उसका अन्तिम संस्कार किया। प्रायः चार बजे सबने प्रसाद पाया। इस घटना से सभी मुग्ध व स्तम्भित हो चुके थे।

संध्या के समय आरती के पश्चात् हम लोग श्रीपाद के निकट जाकर बैठे। बहुत देर तक चुप रहने के बाद अपने बड़े गुरुभ्राता श्रीनवद्वीप दादा की गुरुनिष्ठा के विषय में बताने लगे—श्रील नवद्वीप दादा बड़े बाबा के शिष्य होते हुए भी थी उन्हें बड़े भाई जैसे मानते थे। उनकी श्रीगुरुनिष्ठा अतुलनीय थी। एक दिवस की घटना बता रहा हूँ—हम लोग श्रीबड़े

बाबा को 'झाँझपीटा' मठ में स्नान से पूर्व तेल लगा रहे थे। अचानक बोल उठे, 'नवद्वीप ने मुझे खट्टे बेर खिला दिये', 'नवद्वीप दादा तो साक्षीगोपाल धाम में हैं, यहाँ कहाँ', हम लोगों ने उत्तर दिया। बाबा बोले, 'अच्छा कल' जब वह यहाँ आयेगा तो पूछना।'

अगले दिन श्रीनवद्वीप दादा के आने पर उनसे हम लोगों ने पूछा, श्रीबड़े बाबा ने भी कहा, 'कल नवद्वीप के बेर खिलाने पर आज भी मेरे दाँत खट्टे हैं।' यह सुनते ही श्रीनवद्वीप दादा एक कमरे में जाकर फूट-फूट कर रोने लगे। कारण पूछने पर उन्होंने अपने आपको धिक्कारते हुए बताया कि पूर्वदिन शौच जाते हुए पेड़ के नीचे एक पका हुआ बेर देखकर मन ही मन श्रीगुरुदेव को भोग लगाया था। इतनी दूर से उस तुच्छ वस्तु का भोग लगाने पर उन्होंने वह स्वीकार किया।

'हाय मैं कितना मूर्ख हूँ, मेरे कारण उनके दाँत खट्टे हो गये, धिक्कार है मेरे जीवन को' यह कहते हुए वे रो पड़े। और एक दिन की घटना है—पुरी धाम में ठाकुरजी की रसोई दीदी (सखी माँ) करती थीं। एक दिन सुबह श्रीनवद्वीप दादा आलू, बैंगन, सैंजना की फली इत्यादि लेकर स्वयं रसोई करने बैठे। पूछने कहा, 'आज आठ बजे ही मैं श्रीराधाकान्त देवजी को भोग लगाऊँगा।

दादा (बड़े बाबा) कटक से आने ही वाले हैं। आते ही कहेंगे—'मुझे भूख लगी है।' ललिता सूखी मिर्च और मसाला अच्छी तरह पीसकर मुझे दे तो!' यह कहकर उन्होंने उबले हुए आलू व बड़ी से व्यंजन प्रस्तुत किया। आलू, बैंगन और

सैंजना की फली मिलाकर उसमें खूब सारा मिर्च डालकर आठ बजे से पहले ही श्रीराधाकान्त देव को भोग लगाकर प्रसाद ढककर रख दिया। फिर ललिता सखी से कहा, 'अब तुम जैसे नित्य नियम के अनुसार भोग लगाते हो लगाओ।'

ठाकुरजी का भोग नियम अनुसार ग्यारह बजे लगा करता था। ललिता सखी हँसते हुए बोली, 'नवद्वीप दादा न जाने आपको क्या ख्याल आया। कर्ता (बड़े बाबा) तो अभी कटक में हैं, उनके आने का कोई समाचार तो आया नहीं। जब भी आते हैं उनके साथ ५०/६० भक्तों का साथ होता है।' कहते-कहते ही 'जय नित्यानन्द राम' कहकर श्रीबड़े बाबाजी महाशय आकर उपस्थित हुए। दीदी दौड़कर आईं और उनके दण्डवत् करते ही बड़े बाबा बोले—

'ललिता मुझे भूख लगी है। कल रात से प्रसाद नहीं पाया हूँ। पर तुम्हारे यहाँ तो भोग लगते-लगते ग्यारह बज जायेंगे। अब थोड़े ही प्रसाद मिलेगा। ललिता सखी बोली—मैंने आसन बिछा रखा है। आप बिराजिये, और प्रसाद पाइये।' 'प्रसाद में बड़ी और आलू का रसा, और आलू, बैंगन, सजना फली का सब्जी हो तभी प्रसाद पाऊँगा।' बड़े बाबा ने कहा। सखी बोली, 'ऐसा ही होगा, आप प्रसाद पाइये।' यह कहकर उन्होंने बड़े बाबा के आगे वही प्रसाद लाकर रखा। बड़े बाबा बड़े ही आश्चर्य चकित हुये और पूछा, 'क्या नवद्वीप यहाँ है? उसके बिना मेरे मन की बात और कौन जान सकता है!!'

ललिता सखी ने उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया। बड़े बाबा अति प्रसन्न होकर प्रसाद पाने लगे। श्रीगुरुदेव के मन

की बात शिष्य के मन में तत्क्षण प्रतिबिम्बित हुई, ऐसी गुरु-निष्ठा जगत् में दुर्लभ है।' श्रीपाद पुनः कहने लगे—'एक दिन बड़े बाबा के साथ श्रीनवद्वीप दादा का तर्क छिड़ गया। श्रीनवद्वीप दादा का कहना था, 'श्रीगुरुदेव सर्वोपरि तत्व है, निताई-गौर, राधा-गोविन्द से भी श्रेष्ठ हैं।' श्रीबड़े बाबा का कहना था 'श्रीकृष्ण चैतन्य ही परम तत्व है।' इसी तर्क में श्रीबड़े बाबाजी महाशय ने उनसे कहा—

'जाओ, मैं तुम्हारा मुख दर्शन नहीं करूँगा।' 'ठीक है।' 'मैं भी अपना प्राण त्याग दूँगा, अपना मुँह नहीं दिखाऊँगा।' यह कहकर श्रीनवद्वीप दादा मुँह छिपाकर पीछे मुड़कर तत्क्षण श्रीधाम वृन्दावन चल दिये। वहाँ पर भ्रमर घाट पर आसन लगा लिया। उन दिनों श्रीगोविन्द दादा वहाँ रहते थे। उनसे श्रीनवद्वीप दादा ने कहा, 'भाई, वह देखो दादा (बड़े बाबा) आये हैं। वे बहुत शान्त हैं, उन्हें आसन पर बिठाकर पंखा करो।' उन्होंने तो कहा था, कि मेरा मुख नहीं देखेंगे, सो मैं चला। देखो, देखो मुझे सब लेने आये हैं। देखो रासमण्डल में कितना सुन्दर नृत्य हो रहा है।' यह कहते-कहते उन्होंने शरीर त्याग दिया।

इधर 'पुरी' धाम में समुद्र के किनारे श्रीबड़े बाबा बालू पर लोटपोट करते हुए बालकवत् रोते-रोते कहने लगे, 'हाय ! नवद्वीप मुझे छोड़कर चला गया। अपने ही कारण मैं आज उसे खो बैठा, उनके मधुमय संग से वंचित हो गया।' देखो कैसी गुरुनिष्ठा थी। इसी प्रकार श्रीपाद कितने ही अमृतमय

प्रसंग सुनाते थे। रात बहुत हो चुकी थी, प्रसाद पाकर सब लोग विश्राम करने गये।

प्रातःकाल प्रभाती नाम कीर्तन प्रारम्भ हुआ। उस दिन श्रीपाद को 'रथ यात्रा' के लिए भिक्षा करने जाना था। मुझसे कहने लगे, 'इस बार मैं तुम्हें श्रीपुरी धाम ले जाऊँगा। तुमने तो श्री श्रीजगन्नाथ दर्शन नहीं किया होगा। देखना कैसा आनन्द धाम है। कुछ दिन मैं रथ यात्रा की भिक्षा संग्रह कर लूँ, उसके बाद सब लोग मिलकर पुरी धाम जायेंगे। 'पुरी' में छः महीने से वर्षा नहीं हुई है। सभी वस्तुओं का दाम बढ़ गया है। पचास रुपये मन चावल। कितनी भयानक अवस्था। देखो, ठाकुरजी क्या करेंगे वे ही जानें।'

पुनः कहा—तुम सब यहीं रहो, मैं 'फणी' को लेकर आज ही भिक्षा करने जाऊँगा। दो चार दिनके बाद लौट आऊँगा। श्रीपाद श्रीफणी काका व मेघलाल दादा को साथ लेकर चले गये।

श्रीपाद के दर्शन बिना मेरा मन विकल हो उठा। दो दिन के बाद श्रीपाद लौट आये। उस रात को ठहर कर पुनः चले गये। इसी प्रकार वे कभी-कभी आकर फिर चले जाते। एक दिन कलकत्ता में कीर्तन था, वहाँ जाकर मैं उनके दर्शन कर आया। इधर पाँचुदा के घर 'राघव की झालि'* जमा हो

---

* गौड़ देश से श्रीमन्महाप्रभु के भक्त उनके श्रीधाम पुरी अवस्थान काल में प्रतिवर्ष श्रीधाम पुरी को यात्रा किया करते थे और अपने साथ झलियों (डलिया) में तरह-तरह की सामग्री

रही थी। सभी सामग्री पुरी धाम में श्रीमन्महाप्रभु के लिए ले जानी थी।

श्रीपाद भिक्षा करके लौट आये थे। श्रीपाद के संग प्रायः पाँच सौ भक्त पुरी जा रहे थे। अत: गाड़ी 'रिजर्व' की गई। प्राय: चार बजे सब सामान स्टेशन पर ले जाकर मालगाड़ी में चढ़ाया गया। श्रीपाद स्टेशन पहुँचे हुए थे। हजारों की संख्या में लोग उनके दर्शन करने आये हुए थे। श्रीपाद रिजर्व डिब्बे के सामने प्लेटफार्म पर खड़े हुए थे। असंख्य लोग उन्हें फूल-माला पहनाकर दण्डवत् कर रहे थे। बहुत से विदेशी लोग इस अपूर्व दृश्य से आश्चर्य चकित होकर श्रील बाबाजी महाशय का दर्शन कर रहे थे।

'रथ यात्रा' के उपलक्ष्य में श्रील बाबाजी महाशय पुरी-धाम जा रहे हैं, इस समाचार से बहुत से लोग पहले से ही अपनी-अपनी टिकट 'बुक' करवा कर गाड़ी पर चढ़ बैठे थे। सारी गाड़ी उन्हीं के भक्तों से भरी हुई थी। श्री एस० सि० आड्डि महाशय ने एक पुजारी के हाथ एक टोकरा पूरी-साग भिजवा दी थी। प्रसाद सावधानी से अलग रखा गया ताकि अमनियाँ झालि की सामग्री से स्पर्श न हो जाय।

ले जाते थे जो प्रभु को प्रिय थी। उनमें से प्रिय पार्षद श्री-राघव की झालि विशेष प्रसिद्ध थी। श्रीपाद भी प्रतिवर्ष उसी लीला का अनुसरण करते हुए तरह-तरह की झालियाँ पुरी ले जाया करते थे।

प्रबल हरि ध्वनि के साथ प्रायः आठ बजे गाड़ी चलने लगी। 'खड़गपुर' में कुछ देर रुकी। हम सबने वहीं प्रसाद पा लिया। बालेश्वर, कटक, भुवनेश्वर आदि स्टेशनों पर श्रीपाद के भक्तवृन्द उनके दर्शन करने आये थे। सुबह जब गाड़ी पुरी के पास पहुँची तो श्रीजगन्नाथ मन्दिर का शिखर दर्शन होने लगा। भक्तवृन्द हरि ध्वनि करने लगे। श्रीपाद मुझे दर्शन कराते हुये बोले। वह देखो, श्रीजगन्नाथ मन्दिर शिखर, बड़े उल्लास पूर्वक मैंने दर्शन किया, मन में सोचने लगा, यदि मुझे श्रील बाबाजी महाशय नहीं मिलते, यदि वे मुझे इतना स्नेह नहीं करते तो मुझे श्रीजगन्नाथ जी के दर्शन लाभ कभी न होते। उनकी अपार करुणा का स्मरण कर मेरे आँखों में आँसू आ गये।

श्रीपाद समझ गये मेरे मन की बात और मन्द-मन्द हँसने लगे। गाड़ी स्टेशन पर पहुँच गई थी। चारों दिशायें हरिध्वनि से गूँज उठीं। कितने ही भक्त निशान (पताका) खुन्ति, खोल, करताल लेकर नाम करते हुए श्रीपाद के स्वागत के लिए आये हुए थे। सब सामान गाड़ी से उतार कर बैलगाड़ियों में लादा गया।

ठाकुरजी को लेकर श्रीकृष्णकमल दादा व श्रीनरोत्तम काका आगे-आगे चलने लगे। श्रील बाबाजी महाशय भाव-विभोर होकर नाम कीर्तन करते-करते पीछे-पीछे चलने लगे। भक्तवृन्द उनका अनुगमन करते हुए कीर्तन कर रहे थे। श्रीपाद के श्रीअंग में पुलकावली, नयनों में अजस्र अश्रुधारा थी, कण्ठ गद्‌गद् व कभी-कभी आवेग से रुद्ध हो रहा था। उनके मुखोद्-

गीर्ण नाम से चारों दिशायें प्रतिध्वनित हो रही थीं। कभी-कभी श्रीअंग प्रकम्पित हो रहा था।

नाम ध्वनि से सभी का हृदय व्याकुल हो उठा, दर्शन उत्कण्ठा से प्राण रोने लगे। श्रीपाद 'झाँझ पीटा' मठ (आश्रम) में पहुँचकर (नित्यलीला प्रविष्ट) **श्रीगुरुदेव (बड़े बाबा)** से कीर्तन में कितने ही व्याकुलता भरी प्रार्थना, विनती करने लगे। पुनः कीर्तन करते हुए श्रीजगन्नाथ मन्दिर पहुँचे। वहाँ पर भाव विह्वल होकर नृत्य करने लगे। समस्त शरीर थर-थर काँप रहा था। एक-एक बार गिर रहे थे, फिर उठकर कीर्तन कर रहे थे।

उसी समय 'गम्भीरा' मन्दिर से कीर्तन करते हुए वैष्णव-गण आकर उपस्थित हुए। श्रीपाद व उनके परिकरों को फूल माला व चन्दन देकर, कीर्तन करने लगे। गम्भीरा मन्दिर पहुँच कर बहुत देर तक कीर्तन हुआ। श्रीमहान्त महाराज ने सभी को प्रसाद पाने का निमन्त्रण दिया था। स्नान, आन्हिक के पश्चात् सभी ने प्रसाद पाया। संध्या के समय नाम करते हुए आश्रम लौट आये। अगले दिन मैं उनके साथ श्रीजगन्नाथ के दर्शन करने गया। श्रीमन्दिर बन्द रहने पर मन्दिर परिक्रमा करके, सभी देव-देवियों को प्रणाम-दण्डवत् करके आश्रम लौट आया। संध्या के समय 'झालि समर्पण लीला' का दर्शन किया व अपूर्व कीर्तन सुना।

उन मधुमय लीलाओं का वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ। प्रत्यक्षदर्शी भाग्यवान् भक्तवृन्द ही इसके साक्षी हैं। अगले दिन श्रीपाद 'गुण्डिचा मार्जन लीला' कीर्तन करते हुए श्रीगुण्डिचा

मन्दिर गये। सहस्र-सहस्र भक्त एक हाथ में झाड़ू व दूसरे हाथ में जल पूर्ण घट लिए श्रीमन्दिर मार्जन कर रहे थे। कुछ भक्त जलपूर्ण कलश लिए 'हरि बोल' ध्वनि देते हुए मन्दिर प्रागण मार्जन कर रहे थे। आनन्द की सीमा नहीं थी।

तत्पश्चात् सभी ने 'इन्द्रद्युम्न' सरोवर में आकर स्नान किया। परमानन्द पूर्वक सभी हरि ध्वनि देते हुए सरोवर में तैरने लगे। स्नानादि के बाद 'आइटोटा' बगीचे में आकर आन्हिक-पूजा आदि किया। वहीं पर श्रीजगन्नाथ देव जी का महाप्रसाद यथेष्ठ परिमाण में लाया गया। बालू के ऊपर ही प्रायः दो तोन हजार भक्त प्रसाद पाने बैठ गये। श्रीमहाप्रसाद का अपूर्व सुगन्ध व स्वाद था। परम आनन्द से सभी ने महाप्रसाद पाया।

अगले दिन श्रीजगन्नाथ देव को रथ पर विराजमान किया गया। उनके संग श्रीबलराम व सुभद्राजो को भी पृथक्-पृथक् रथों पर बिठाया गया। रथारोहण के समय 'जय जगन्नाथ' ध्वनि से समस्त वातावरण गूँज उठा। साथ ही असंख्य—तुरी, भेरी, घण्टा आदि विभिन्न वाद्य बजने लगे। 'कालाबेठिया'* गण रथ की रस्सी पकड़ कर रथ को खींचने लगे। उनके साथ सभी यात्री, भक्त, साधु रथ की रस्सी पकड़े श्रीजगन्नाथजी को गुण्डिचा मन्दिर की ओर ले जाने लगे। चारों सम्प्रदाय के साधु, शैव, शाक्त, गाणपत्य व वैष्णव—सभी भगवान् श्रीजगन्नाथ जी के दर्शन कर रहे थे व परम आनन्द

---

* जगन्नाथ जी के रथ के खींचने वाले भील सेवक

से रथ की रस्सी खींच रहे थे।

श्रीजगन्नाथ जी का रथ चल रहा था रथ के आगे श्रील बाबाजी महाशय अपने परिकरों के संग मधुर नृत्य करते हुए, कीर्तन करते-करते चल रहे थे। उस आनन्दमय मधुर दृश्य व उस नृत्य महिमा का मैं क्या वर्णन करूँ! श्रीपाद के संग उनके गुरुभ्राता श्रीनित्यानन्ददास बाबाजी, नन्द काका, बिहारी काका, राधाचरण दास, विश्वरूपदा, निताइदा, उपेनदा, भगवानदा, युगलदा, चारुदा, बलाइ इत्यादि असंख्य भक्त नृत्य करते हुए जा रहे थे।

शृङ्गार मठ के गोस्वामी तथा अन्य गोस्वामी सन्तानगण भी उनके साथ नृत्य कर रहे थे। कीर्तन करते हुए श्रीपाद को जब यह पंक्ति की स्फुरना हुई, 'हेले दुले जाय गौर किशोरी, संगे निताइ अनंग मंजरी' अर्थात् श्रीगौरसुन्दर श्रीराधाभाव में विभोर होकर जगन्नाथ रूपी श्रीकृष्णचन्द्र को आनन्द मग्न होकर कुरुक्षेत्र से श्रीवृन्दावन ले जा रहे हैं, उनके संग अनंग-मंजरी स्वरूपा श्रीनिताइ चाँद भी जा रहे हैं, तो भक्तवृन्द गोपी भाव में अपनी-अपनी चादर को ओढ़नी जैसे ओढ़कर घूंघट लगाये चलने लगे। मानो रँगीली रसीली सखियों की टोली जा रही थी। कीर्तन के पीछे-पीछे झुण्ड के झुण्ड महिलायें भी भाव विभोर होकर जा रही थीं।

सूरज ढलने लगा, प्रायः पाँच बजे रथ श्रीगुण्डिचा मन्दिर के पास पहुँचा तो प्रचण्ड नामध्वनि व उन्मत्त नृत्य कीर्तन होने लगा। श्रीपाद, श्रीमन्महाप्रभु की महिमा कीर्तन करते हुए जब यह पंक्ति गाने लगे—

'गौर— स्थावर, जंगम, गुल्म लता, प्रेमजले डूबाले' तो प्रबल नृत्य कीर्तन होने लगा। प्राय: छ: महीने से समग्र उडीसा प्रदेश में सूखा पड़ा हुआ था। बिन्दुमात्र भी वर्षा नहीं हुई थी। आषाढ़ का महीना था। मैंने देखा आकाश में घने बादल घिर-घिर कर आने लगे। 'प्रेमजले डूबाले' गाते ही भीषण वर्षा होने लगी। सभी भीग गये। श्रीखोल के ऊपर छाता रखा गया। श्रीजगन्नाथदेव श्रीगुण्डिचा मन्दिर के द्वार पर पहुँचे।

प्राय: दो घण्टे लगातार भीषण वर्षा होने पर पुरी धाम का मुख्य मार्ग 'बड दाण्ड' जिस मार्ग पर रथ चलता है, वहाँ घुटने तक पानी हो गया। अविरल वर्षा में कीर्तन निरवच्छिन्न रूप से चलता रहा। चारों ओर पानी ही पानी था पर गुण्डिचा मन्दिर के सामने पानी नहीं था। वहीं पर बैठकर श्रीपाद कीर्तन करते रहे। कीर्तन में आनन्द का समुद्र उमड़ रहा था। उस आनन्द का वर्णन करना असम्भव है। कुछ ही देर बाद वर्षा रुकने पर पानी हट गया। कटक से भी वर्षा होने का समाचार आया।

इस अद्भुत घटना की चर्चा सारे शहर में होने लगी। नाम की शक्ति एवं श्रील बाबाजी महाशय के अलौकिक कीर्तन के प्रभाव के विषय में समाचार पत्रों में भी चर्चा हुई। श्रीपाद को यह समाचार सूचित करने पर वे हँसकर बोले, 'दैव वश घटे सभी बात। फकीर को क्या करामात!! भ्रमित बुद्धिवश इन बातों का कोई मूल्य नहीं है। श्रीमन्महाप्रभु जी की कृपा करुणा ने ही आज समग्र उड़ीसा प्रदेश को शीतल कर दिया।

इस बात को कोई नहीं समझता। श्रीपाद ने 'आइटोटा' बगीचे में आकर विश्राम किया।

श्रीजगन्नाथ जी, बलराम व सुभद्रा के संग गुण्डिचा मन्दिर में आठ दिन वास करके पुनः निज मन्दिर में लौट आते हैं। श्रीपाद प्रतिदिन संध्या के समय गुण्डिचा मन्दिर जाकर कीर्तन करते थे। अपूर्व पदावली की स्फुरणा होती थी उनके हृदय में। वह सब पदावली-कीर्तन पुस्तकों में प्रकाशित हो चुका है। इसी प्रकार परम आनन्द में नित्य कीर्तन आनन्द व महाप्रसाद सेवन में दिन बीतने लगे। एक दिन सुबह, बड़े ही सुन्दर एक मूर्ति वैष्णव आए। श्रीपाद ने सश्रद्ध प्रणाम दण्डवत् किया। उनका नाम था 'श्रीवासुदेव महाराज'। पुरी में उनका नाम, यश, प्रतिभा थी। उन्होंने स्नेहवश श्रीपाद को परिकरों के संग महाप्रसाद सेवन के निमित्त निमन्त्रण दिया। प्रायः तीन हजार भक्तों को एकसंग महाप्रसाद पवाया।

उन दिनों श्रीवासुदेव महाराज नित्य अकृपण रूप से आगन्तुक समस्त भक्तवृन्द को महाप्रसाद वितरण के लिये पुरीधाम में प्रसिद्ध थे। श्रीगुण्डिचा मन्दिर में कुछ दिन रहकर श्रीजगन्नाथ देव पुनः अपने श्रीमन्दिर लौट आये। श्रीपाद रथ के आगे-आगे पूर्ववत् कीर्तन कर रहे थे। श्रीजगन्नाथ देव बलराम व सुभद्रादेवी के संग रथ के ऊपर दो-तीन दिन रहकर दर्शन देते हैं। बाल-वृद्ध, पुरुष-नारी, नीच, धनी-दरिद्र, सभी निर्विचार होकर प्रभु के चन्द्रमुख का दर्शन करते हैं। दो-तीन दिन के पश्चात् प्रभु श्रीमन्दिर में विराजमान हुए।

श्रील बाबाजी महाशय के संग हम लोग प्रतिदिन मंगला

आरती दर्शन करके श्रीमन्दिर परिक्रमा करते थे। एक-एक दिन एक-एक भक्त श्रीपाद को परिकर सहित महाप्रसाद पाने का निमन्त्रण देते थे। श्रीपाद के संग हम लोग जाकर कीर्तन सुनते और श्रीजगन्नाथ जी का अपूर्व महाप्रसाद भी पाते। कुछ ही दिनों में 'टोटागोपीनाथ' के उत्सव का दिन आ गया। श्रीपाद के संग हम लोग 'श्रीहरिदास ठाकुर' मठ में जाकर रहने लगे। उत्सव का आयोजन वहीं से किया गया था।

मठ में प्रतिदिन श्रीनिताइ-गौर-अद्वैत प्रभु व श्रीहरिदास ठाकुर की समाधि दर्शन एवं परिक्रमा करते। वहाँ पर श्री-श्यामदास बाबाजी, श्रीगोविन्द दास बाबाजी (दोनों ही श्रीपाद के बड़े गुरुभ्राता) श्रीसनातन दा, हरिबोल दा व हरिदादा का मधुमय संग मिला। सभी मुझे बहुत ही स्नेह प्रीति करते थे। आज वे सभी नित्यलीला में प्रवेश कर चुके हैं। श्रीपाद कल-कत्ता से अति उत्तम चावल लाये थे श्रीगोपीनाथ जी को उत्सव में भोग लगाने के लिये। मठ से बहुत से भक्त प्रभु की सेवा की तैयारी में लग गये।

श्रील बाबाजी महाशय प्रातः नौ बजे कीर्तन करते-करते श्रीगोपीनाथ जी के मन्दिर में पहुँचे। मन्दिर में परम सुन्दर श्रीगोपीनाथ जी का व श्रीबलराम जी का श्रीविग्रह दर्शन करके परम आनन्द लाभ हुआ। श्रीपाद के संग श्रीअद्वैत काका, प्रियनाथ काका, चारुदा, बलाइदा, युगलदा आदि भक्तवृन्द कीर्तन करने लगे। उसके पश्चात् उन्मत्त नृत्य प्रारम्भ हुआ। भोग आरती दर्शन करके सभी वहीं पर प्रसाद पाने

बैठे। श्रीमहाप्रसाद की अलौकिक सुगन्ध से चारों दिशायें आमोदित हो उठीं।

प्रसाद पाकर सभी ने एक बगीचे में विश्राम किया। संध्या के समय नाम कीर्तन करते हुए 'श्रीहरिदास ठाकुर' मठ में लौट आये। ठाकुरजी की आरती दर्शन व परिक्रमा करके हम श्रीश्यामदास बाबाजी के पास बरामदे में कम्बल बिछाकर श्रीपाद के संग बैठे। श्रील बाबाजी महाशय के साथ हम सबने श्रीश्यामदास जी को दण्डवत् किया। उन्होंने मेरा परिचय लेते हुए पूछा—

'रामदास के पास कितने दिन हुए आये हो?' 'थोड़े ही दिन हुए हैं। श्रीपाद मुझे कृपापूर्वक श्रील जगन्नाथजी के दर्शन कराने अपने साथ लाये हैं। तभी तो इन उत्सवों के दर्शन हो रहे हैं। नहीं तो हमारे वंश में से कदाचित् ही कोई आया हो।' मैंने उत्तर दिया। सभी मृदुमंद हँसने लगे। मैंने उद्ग्रीव होकर श्रीपाद से निवेदन किया, 'श्रीहरिदास ठाकुर को समाधि है यहाँ। प्रभु की कौन-कौन-सी लीला यहाँ हुई, कृपा करके मुझे बताइये।'

श्रील बाबाजी महाशय कहने लगे, 'श्रीमन्महाप्रभु ने स्वयं श्रीहरिदास ठाकुर को समाधि दी थी। श्रीहरिदास के समान भक्त संसार में दुर्लभ है। दैन्य वश वे श्रीजगन्नाथ जी के दर्शन तक नहीं करने जाते थे। श्रीजगन्नाथ जी के सेवक से कहीं स्पर्श न हो जाये, इस डर से वे मन्दिर के निकट तक नहीं जाते थे। दूर से वे श्रीमन्महाप्रभु को दण्डवत् करते और प्रभु स्वयं उन्हें आलिंगन करते। श्रीहरिदास ठाकुर प्रभु से कहते,

'प्रभु आप मुझे स्पर्श न करें, मैं अस्पृश्य, यवन हूँ। प्रभु ! मुझ पर इतनी करुणा क्यों प्रभु।' प्रभु कहते, 'हरिदास तुम्हें आलिंगन कर मैं अपने को धन्य मानता हूँ, तुम दीनता छोड़ो।'

इन्हीं कारणों से हरिदास मन्दिर से दूर एकान्त में एक बगीचे में रहकर प्रतिदिन नियम पूर्वक तीन लाख हरिनाम जप करते थे।' मैंने पूछा, 'क्या वे 'हरि-हरि' इस नाम का जप करते थे ?' नहीं रे नहीं, महामन्त्र 'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे।' इस नाम का जप करते थे। एक लाख हरिनाम वे 'उपांशु' जप, अर्थात् स्वयं को सुनाई दे, ऐसे धीरे:धीरे जप करते थे। एक लाख मानस जप व एक लाख उच्चस्वर से संख्या रखते हुए जप करते थे। संख्या न रखने पर जप सिद्ध नहीं होता, समझे ?' मैंने पूछा, 'मैंने पुस्तक में पढ़ा है कि वे 'श्रीकृष्ण-चैतन्य' कहते हुए मर गये।'

—धत् ! वैष्णव कभी मरते नहीं हैं, देह त्यागते हैं। वैष्णवदेह अप्राकृत होता है। इस प्रकार देह त्याग साधारण मनुष्य के द्वारा सम्भव नहीं, तो सुनो—श्रीपाद कहने लगे, 'श्रीहरिदास ठाकुर पर धूप पड़ती थी। करुणामय प्रभु ने स्वयं एक दिन श्रीजगन्नाथ जी की प्रसादी वकुल वृक्ष की दाँतुन धरती पर गाड़ दी। उसी से विशाल बकुल वृक्ष उत्पन्न हुआ। श्रीहरिदास ठाकुर उसी की छाया में बैठे नाम संकीर्तन करते थे। वह वृक्ष अभी भी है, एक दिन दर्शन कराऊँगा। श्रीमन् महाप्रभु प्रतिदिन श्रीजगन्नाथ जी का दर्शन करके श्रीहरिदास का दर्शन करने आते थे।'

'देखो ! भगवान् की कैसी भक्त वात्सल्य लीला। भक्त के निमित्त भगवान् श्रीगौरसुन्दर स्वयं आते उन्हें दर्शन देने। एक दिन श्रीहरिदास कुछ अस्वस्थ हुए, प्रभु ने आकर हरिदास जी से पूछा, 'हरिदास, कुशल तो हो ?' हरिदासजी ने नम्रता से, दीनता पूर्वक उत्तर दिया, 'प्रभु मेरा मन व बुद्धि अस्वस्थ है। नाम संख्या पूरी नहीं हो रही है।' प्रभु बोले, 'हरिदास, तुम तो नाम-सिद्ध हो, इस वृद्धावस्था में इतनी साधना क्यों कर रहे हो।' श्रीहरिदास जी ने प्रभु से प्रार्थना की, 'प्रभु ! मेरी एक प्रार्थना आपको पूरी करनी होगी, आपकी अप्रकट लीला (अन्तर्ध्यान लीला) मुझे दर्शन न करनी पड़े।

आप मेरे पास आकर मेरे मस्तक पर अपने श्रीचरण रखेंगे, मेरे नयनभृङ्ग आपके मुखकमल का मधुपान करते रहेंगे इस प्रकार मेरे प्राण 'श्रीकृष्ण चैतन्य' नाम उच्चारण करते हुये चले जायेंगे।' प्रभु अत्यन्त व्यथित हुये। भक्तवांछा कल्पतरु नाम की लज्जा जो रखनी थी। भक्त जो भी माँगें भगवान् उसे देने को बाध्य हैं। अतः प्रभु को श्रीहरिदास की इच्छा पूरी करनी पड़ी।

अगले दिन श्रीहरिदास ठाकुर किंचित् अस्वस्थ रहे। श्रीमहाप्रभु जी उनके निकट पहुँचे। उनके मस्तक पर अपना श्रीचरण रखा। श्रीहरिदास जी के नेत्र रूपी भौंरे प्रभु के श्रीमुख कमल की रूपसुधा पान करते-करते उसी में डूब गए, और 'श्रीकृष्ण-चैतन्य बलि प्राण कैल उत्क्रामण'—श्रीकृष्ण चैतन्य कहते हुये प्राण छोड़ दिया।' इस पंक्ति के कहते ही श्रील बाबाजी महाशय हुँकार कर उठे। ओष्ठद्वय कंपित होने

लगे नेत्र से अजस्र अश्रुधारा बहने लगी। प्राय: दस मिनट तक उनकी यह अवस्था रही। कुछ सँभल कर पुन: कहने लगे—

'प्रभु ने श्रीहरिदास ठाकुर की देह उठाकर उसे अपने हृदय से लगा लिया, फिर अपने कन्धे पर रखकर उन्मत्तवत नृत्य करने लगे। भक्तवृन्द भी इस कारुण्य लीला के दर्शन कर आनन्द से नृत्य करने लगे।' प्रभु ने श्रीहरिदास को समुद्र तट में ले जाकर उन्हें स्नान कराया तथा भक्तों से कहने लगे, आज श्रीहरिदास के स्पर्श से समुद्र महातीर्थ हुआ।' तत्पश्चात् प्रभु ने स्वयं अपने हाथों से समुद्र तट पर हरिदास ठाकुर को समाधि दी, जो हमारे सामने विद्यमान है।'

'प्रभु की भक्त वात्सलय की बलिहारी। स्वयं श्रीजगन्नाथ मन्दिर के सामने जाकर आँचल बिछाये उत्सव के निमित्त महाप्रसाद की भिक्षा की। जिस बकुल वृक्ष को प्रभु ने प्रकट किया था, जिसके नीचे बैठकर श्रीहरिदास जी भजन करते थे, वह भीतर से एकदम खोखला है। इसका एक कारण है। एक बार श्रीजगन्नाथ जी के रथ के लिए इसी वृक्ष को काटने का निश्चय किया गया। सुबह जब मिस्त्री आया उसे काटने तो देखा गया वृक्ष खोखला पड़ा था। सभी आश्चर्यचकित रह गये। स्वयं प्रभु के हाथों वह वृक्ष रोपण किया गया था न। वह वृक्ष आज तक उस लीला का साक्षी स्वरूप विद्यमान है।

हम सब उस तिथि पर पुरी आकर श्रीहरिदास ठाकुर का 'विरह उत्सव' मनायेंगे। उस समय मेरे साथ रहना, कुछ दिनों के बाद हम लोग कटक जायेंगे श्रीबड़े बाबा का आश्रम

है वहाँ पर।' इस प्रकार श्रीपाद से श्रीहरिदास ठाकुर की अप्रकट लीला सुनकर परम आनन्द लाभ किया।

प्रसाद पाकर सभी ने विश्राम किया। अगले दिन भोर होते ही श्रीपाद के संग 'झाँझपीटा मठ' लौट आये। उस दिन श्रीगुरु पूर्णिमा का उत्सव था; श्रीसनातन गोस्वामी पाद की तिरोभाव तिथि भी थी। मठ में अनेक भक्त समागम होने लगा। श्रीगुरुदेव को श्रीजगन्नाथ जी की प्रसादी माला पहनाने के लिए, मुख में श्रीजगन्नाथ जी का प्रसाद अर्पण करने के लिए भक्तवृन्द उत्सुकता से व्याकुल होकर दौड़े-दौड़े पहुँच रहे थे। श्रीपाद प्रातःकाल से ही कीर्तन करने बैठे थे।

श्रीसनातन गोस्वामी जी की कथा कीर्तन करते-करते अश्रु-कम्प-पुलक आदि सात्विक भावों से विभोर हो रहे थे। भक्तों की संख्या बढ़ने लगी। समाज के बहुत से गणमान्य व्यक्ति अपने स्त्री, पुत्र, कन्या, परिवार के सदस्यों को लेकर श्रील बाबाजी महाशय के दर्शन व गुरु-पूजा करने के लिये आये थे। प्रायः ग्यारह बजे तक कीर्तन हुआ। उसके बाद आँगन में प्रचण्ड नृत्य-कीर्तन होने लगा।

उस दिन मैंने एक अनोखा दृश्य देखा था। उस दिन कीर्तन में बालक, वृद्ध-पुरुष-नारी सभी नृत्य कर रहे थे। संभ्रान्त वंश की महिलायें भी लज्जा, मान त्यागकर कीर्तन व नृत्य कर रही थीं। एक जज साहब अपनी पत्नी व पुत्र-कन्या के संग आये हुए थे। अकस्मात् देखा उनकी पत्नी दोनों भुजा उठाकर नृत्य करने लगी और उन्होंने उसे पीछे से पकड़ रखा था ताकि

वे गिर न जाँय। उनसे सम्भाला न गया तो उनकी बेटी ने उन्हें पकड़ा। उन्हें स्पर्श करते ही बेटी भी नृत्य करने लगी।

श्रील बाबाजी महाशय हाथ जोड़कर कंपित कलेवर एक किनारे खड़े थे, अश्रु धाराओं से उनका मुखमण्डल प्लावित हो रहा था। 'संकीर्तने नाचे कुलेर बहू' इस प्रवाद-वाक्य का प्रत्यक्ष दर्शन किया उस दिन। अन्त में जज साहब भी नृत्य करने लगे, उनकी पत्नी, कन्या तीनों ही नृत्य कर रहे थे। उनकी पत्नी के मुख से एक ही नाम उच्चारित हो रहा था—'भज गौरांग, कह गौरांग, लह गौरांगेर नाम रे।' कीर्तन की उन्मादना प्रायः बारह बजे तक चलती रही। वह महिला धरती पर गिर कर नीरव समाधिस्थ हो गईं।

श्रीपाद बाबाजी महाशय स्नान-आन्हिक् के पश्चात् एक कुर्सी पर आकर बैठे। भक्तवृन्द उन्हें सुगन्धित पुष्पों की प्रसादी माला पहनाने लगे, मुख में प्रसाद दिया, आरती करने लगे। प्रायः डेढ़ बजे तक यह लीला होने लगी। प्रसाद पाने का समय हो चुका था अतः उसकी व्यवस्था करने के लिये श्रीपाद ने आज्ञा दी। वह महिला तब तक भी समाधिस्थ थी। उनके पति व उनकी कन्या दोनों ने आकर श्रीपाद से यह समाचार निवेदन करने पर वे आश्चर्य चकित हुए। वे चलकर उनके पास पहुँचे, उनके मस्तक के निकट उच्चस्वर से 'गौर हरि बोल' कहते ही वह महिला आँखें खोलकर उठ बैठीं और आँचल से मस्तक ढक लिया। धीरे-धीरे उठकर श्रीपाद के चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया व लज्जा से नतमस्तक खड़ी रहीं। नृत्य करते हुए उन्हें अपने वस्त्रों की सुध तक नहीं थी। शमिज मात्र पहनी हुई थी। लज्जा ही एकमात्र नारी का आभूषण है,

उसे भी भूलकर वे 'हा गौरांग' कहते हुए नाम कर रही थीं। श्रीमन्महाप्रभु के संकीर्तन की महान् शक्ति का प्रत्यक्ष दर्शन किया। अतः इस घटना का वर्णन किये बिना मुझसे रहा नहीं गया।

सभी भक्तवृन्द को महाप्रसाद प्रचुर परिमाण में दिया जाने लगा। आनन्द की सीमा नहीं थी। प्रसाद पाते-पाते पाँच बज गये। कुछ देर विश्राम करके श्रीपाद आरती दर्शन करने गये। हम सबने भी उनके पीछे खड़े होकर दर्शन किया। इसी तरह परम आनन्द में दिन बीतने लगे।

श्रील बाबाजी महाशय को 'पुरी' से 'कटक' जाना था। अतः एक दिन श्रीजगन्नाथ जी के मन्दिर में अपार कीर्तन-आनन्द से सबको आनन्दित किया। श्रीमंदिर के प्रांगण में कीर्तन हो रहा था। पण्डा-पुजारीगण आकर उनके गले में प्रसादी माला, पट्टडोरी आदि पहनाने लगे। असंख्य लोग उनके मुख से कीर्तन सुनकर कृत-कृत्य हो गये।

कीर्तन समापन करके श्रीपाद झाँझपीटा मठ में चले गये। हम दो चार जने—श्रीअद्वैत काका, चारुदा, बलाइदा, मैं और बसन्त काका छुपकर 'आनन्द बाजार' गये। सभी मिलकर नून खुरमा, खाजा, गजा, पिठा, जगन्नाथवल्लभ आदि प्रसादी मिष्ठान्न जी भरकर खाने लगे। खूब पेट ठूँसकर खाया सबने, प्रसाद तब भी बचा हुआ था। चारुदा परिहास करते हुए मुझ से बोले—'जीवन, और तो खाया नहीं जा रहा, पर श्रीमहा-प्रसाद छोड़ देना भयानक पाप है। श्रीगुरुदेव का आदेश है—श्रीमहाप्रसाद की अवहेलना कदापि नहीं करना। पर क्या

उपाय करें तू एक काम कर, एक लोढ़ी ले आ ! उससे मेरे गले के भीतर सारा प्रसाद ठूँस दे। श्रीअद्वैत काका और हँसाते हुए बोले—'अरे इतने दिनों से श्रीपाद का संग करते हो, तुम्हें अपराध का जरा भी डर नहीं !!' मैंने पूछा—'क्यों काकाजी अपराध कैसे ?' 'लोढ़ी से प्रसाद ठूँसने पर नीचे से गोलमाल हो सकता है। मंदिर कलुषित होने पर पण्डा लोग मार-मार कर भगा देंगे। इससे तो अच्छा एक सींक लाकर धीरे-धीरे भीतर घुसा दो।'

यह सुनकर हँसते-हँसते पेट फटने लगा। चारुदा नें अपने कुर्ते के पाकिट में प्रसाद भर लिया, हम सबने पोटलियों में बाँध लिया। मठ में पहुँचने पर श्रीपाद ने पूछा, 'इतनी देर तक कहाँ थे ?' मैंने सारा वृत्तान्त सुनाया। श्रील बाबाजी महाशय हँसने लगे। रात के ग्यारह बज गये। सभी लोग प्रसाद पाने गये। हम लोग चुपचाप छत पर जाकर सो गये।

अगले दिन सुबह श्रील बाबाजी महाशय ने टोटागोपीनाथ जी के दर्शन करने की इच्छा प्रकट की। खोल-करताल बजने लगा—श्रीपाद ने परिकरोंके संग नाम-कीर्तन प्रारम्भ किया— 'भज निताइ गौर राधे श्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम ।।' श्रील बाबाजी महाशय यह नाम कीर्तन करते हुए श्रीजगन्नाथ मन्दिर पहुँच कर प्रभु के, षड़भुज महाप्रभु के दर्शन करके मन्दिर परिक्रमा की। 'श्रीगम्भीरा' मठ दर्शन करके श्रीहरि-दास ठाकुर मठ में आकर कुछ देर तक नृत्य कीर्तन करके श्रीटोटागोपीनाथ जी के दर्शन निमित्त चलने लगे। हम लोग प्रायः एक सौ जने नाम कर रहे थे। थोड़ी दूर तक चलने के

बाद कुछ लोगों ने आकर चिल्लाना शुरू किया—यह नकली नाम बन्द करो, महामंत्र कीर्तन करो।' नाम बन्द करवाने के लिए वे लोग कनस्तर बजाने लगे।

उन लोगों की यह सब बातें सुनकर हम लोग और भी जोर से नाम कीर्तन करने लगे। प्रचण्ड नृत्य-कीर्तन आरम्भ हो गया। चारुदा, बलाइदा, बसन्त काकाजी कहने लगे, 'चखाऊँ इन्हें अच्छी तरह मजा ? इनकी इतनी बड़ी स्पर्धा जो नाम पर रोक लगाने आये।' श्रील बाबाजी महाशय ने शान्त स्वर से कहा, 'तुम लोग नाम करो, दूसरों की बात सुनने का क्या प्रयोजन है श्रीगुरु-प्रदत्त नाममें तुम्हारी कहाँ तक निष्ठा है, इसकी परीक्षा लेने के लिए ही ठाकुरजी यह लीला कर रहे हैं। नहीं तो वे साधु होकर नाम से द्वेष नहीं कर सकते।' यह सुनकर हम सबका क्रोध शान्त हो गया। सभी परम आनन्द पूर्वक नाम कीर्तन करते हुए नृत्य करने लगे। वे भी नाम बन्द कराने में असफल होकर चले गये।

हम लोग श्रीटोटागोपीनाथ मन्दिर पहुँचे, वहाँ दर्शन, प्रणाम दण्डवत् करके पुनः श्रीहरिदास मठ दर्शन परिक्रमा की, फिर झाँझपीटा मठ लौट आये। दोपहर को श्रीहरिदास ठाकुर मठ में प्रसाद पाया। श्रीश्यामदास बाबाजी, श्रीगोविन्द दास बाबाजी के साथ हम सब बैठे हुये थे। कौतुहलवश मैंने श्रीपाद से पूछा, 'भज निताइ गौर राधेश्याम, नाम कितना मधुर है। फिर भी उन साधुओं ने 'नकली नाम, नकली नाम' कहकर क्यों विरोध किया ?' तो सुनो, श्रीपाद कहने लगे—

'आजकल सर्वत्र इस नामध्वनि का प्रचार हो रहा है।

अतः कुछ लोगों को यह अच्छा नहीं लग रहा था। यश, प्रतिष्ठा होने पर मनुष्यों को ईर्ष्या, द्वेष, आ ही जाता है। प्रभु के इस नाम को सर्वत्र बालक-वृद्ध, नारी, पुरुष अनायास आनन्द पूर्वक कर सकते हैं। जिन्हें नाम की यथार्थ महिमा का पता है, वे कभी प्रभु के किसी भी नाम से विरोध नहीं किया करते। श्रीमन्महाप्रभु की ही वाणी है—

अनेक लोकेर बांछा, अनेक प्रकार।
कृपाते कैल बहु नामेर प्रचार॥
खाइते शुइते यथा तथा नाम लय।
देश, काल, नियम नाहि सर्वसिद्धि हय॥
सर्व शक्ति दिला नामे करिया विभाग।
आमार दुर्दैव नामे नाहि अनुराग॥
(चैतन्य चरितामृत शिक्षाष्टक)

भावार्थ—"भिन्न-भिन्न लोगों को रुचि अनुसार प्रभु ने असंख्य नाम धारण करके कृपापूर्वक उनका प्रचार (भक्तों के, आचार्यों के माध्यम से) किया है। नाम ग्रहण करते हुये देश, काल, समय का कोई बन्धन नहीं है। खाते, सोते जहाँ-तहाँ (प्रभु के) नाम लेने पर ही सर्वसिद्धि प्राप्त होती है। प्रत्येक नाम में ही उनकी शक्ति निहित है, पर हाय! दुर्दैववश मुझे हरिनाम में अनुराग नहीं हुआ। और न ही रुचि उत्पन्न हुई।"

प्रभु के 'अनन्त' नाम हैं। जिसे जिस नाम में रुचि है, जिसे जिस नाम में निष्ठा है वह वही नाम ले सकता है। प्रभु के एक नाम पर निष्ठा कर दूसरे नाम की अवज्ञा, इससे बढ़कर और कोई अपराध नहीं है। कोई कृष्ण नाम लेता है। कोई श्याम-

सुन्दर तो कोई राधारमण, कोई कंसारि तो कोई वृन्दावन बिहारी, पार्थसारथी, द्वारकानाथ इत्यादि नाम से प्रभु को पुकारते हैं। पर यह सभी नाम श्रीकृष्ण के उद्देश्य से ही तो हैं। कोई कहता है निताइ, तो कोई नित्यानन्द। कोई भक्त पुकारता गौर, गौरांग, शचीनन्दन, निमाइ, पर यह सभी नाम श्रीगौरकिशोर के लिए ही तो हैं।

अत: किसी भी 'नाम' से द्वेष करने पर अपराध ही होता है। मूर्ख 'विष्णाय' कहता है, ज्ञानी पंडित व्यक्ति 'विष्णवे' कहता, परन्तु भावग्राही भगवान् दोनों के भाव को ही स्वीकार करते हैं। शुद्ध-अशुद्ध, हास-परिहास में भी श्रीनाम के उच्चारण होने मात्र से ही प्रभु उसका उद्धार अवश्य करते हैं। एक से एक बड़े-बड़े भक्तों ने नाम की इस महान् शक्ति का गुणगान कर गये हैं। 'निताइ गौर राधे श्याम' नाम का उच्चारण इतना ही सरल है कि बालक, यहाँ तक कि एक अबोध शिशु भी इसका अनायास उच्चारण कर सकता है। भगवान् के जितने भी अवतार हुए हैं, उनमें से निताइ चाँद, जैसे मार खाकर भी क्या किसी ने जीव को 'भगवद् प्रेम' प्रदान किया है?

'राम आदि अवतारे, क्रोधे नाना अस्त्र धरे, असुरेर करिल संहार। एबे अस्त्र ना धरिल, प्राणे कारे ओ ना मारिल, चित्त शुद्धि करिल सबार॥ यह उक्ति महान् पद कर्ताओं ने अपनी पदावलियों में लिखा है। पतितों के एकमात्र बन्धु श्रीनिताइ चाँद हैं। उन्होंने ब्रह्मादि देवताओं का दुर्लभ प्रेमभक्ति का पतितों को दान किया है उन्होंने जाति, कुल निर्विचार रूप से,

पतितों के द्वार-द्वार पर जाकर अयाचित भाव से श्रीहरिनाम प्रेम वितरण किया है।

गोलोक धाम का श्रेष्ठ धन, श्री 'युगलप्रेमधन' उसे भी जीव को प्रदान किया। जिसने जन्म जन्मान्तर पाप करने पर भी एकबार मात्र 'हा गौरांग' नाम लिया। एकबार मात्र गौर हरि बोल कहते ही उसे अपने हृदय में धारण करते हैं। मदिरा पान करने वाले कितने ही दुराचारी भी उनकी कृपा से वंचित नहीं रहे। जगाइ-माधाइ का वृत्तान्त तो जानते ही हो, अब तो कितने ही जगाइ-माधाइ उद्धार हो रहे हैं—'गौर हरि बोल' कहकर नृत्य करते हैं। उनको करुणा व प्रेमदातृत्व शक्ति की सीमा नहीं है।

श्रीगौरकिशोर ने एक दिन श्रीराघव पंडित से कहा, 'सुन, सुन, ओहे राघव, आमि निज गोप्य कहि। आमार द्वितीय नाइ, नित्यानन्द बहि॥ नित्यानन्द स्वरूपेरे जे प्रीति करए अन्तरे। सत्य, सत्य सेइ प्रीति करए आमारे।'

भावार्थ—श्रीराघव जी से प्रभु ने अपना अति गोपनीय तत्व कहा कि श्रीनित्यानन्द उनके अभिन्न स्वरूप हैं। श्रीनित्यानन्द जी में प्रीति सत्य-सत्य उन्हीं की प्रीति है। स्वयं भगवान् श्रीगौरसुन्दर ने जिन्हें इतनी ऊँची पदवी दी है, क्या हम उनकी अवहेलना कर सकते हैं!! उनकी महानता का वर्णन करते हुए प्रभु ने कहा है—'गोपीगणेर जेइ प्रेम कहे भागवते। एकला नित्यानन्द हइते पाइबे जगते॥ मूर्तिमान तुमि 'कृष्ण रस' अवतार। तोमार विग्रह कृष्ण बिलासेर घर॥

अर्थात् श्रीभागवत में जिस गोपी प्रेम का वर्णन है उसको

प्राप्ति एकमात्र श्रीनित्यानन्द प्रभु की कृपा से ही सम्भव है। प्रभु निताइ मूर्तिमान् श्रीकृष्ण रस हैं। उन्हीं के स्वरूप में स्वयं श्रीकृष्ण विलास (लीला) करते हैं।' हम लोग कलि जीव हैं, उनके चरणों के आश्रय बिना हम पतितों को और कौन आश्रय देगा।

अतः श्रीबड़े बाबाजी महाशय ने सर्वप्रथम निताइ चाँद का नाम लिया है। भज निताइ गौर राधे श्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' इस नाम का सिद्धान्त कितना सुन्दर है, यह किंचित् विचार करने पर ही समझ जाओगे। प्रथम निताइ चाँद का आश्रय लिया, फिर गौर नाम। यह गौर कौन है— श्रीराधे श्याम मिलित श्रीविग्रह। प्राप्त कैसे करोगे ? जप हरे कृष्ण हरे राम—अर्थात् महामंत्र जप से।

श्रीमन्महाप्रभु जी ने इस महामन्त्र को ही जपने को कहा है—'इहा गिया जप सबे करिया निर्बन्ध' अर्थात् नियम पूर्वक जप करो। गौड़ीय वैष्णव जगत् की सार (मुख्य) कथा ही इस नाम में है—भज निताइ गौर राधे श्याम। 'भज' शब्द का अर्थ है सेवा। गौड़ीय वैष्णव श्रीनिताइ गौर, राधाकृष्ण की ही सेवा करते हैं, भजन करते हैं। उनमें अधिकतर राधाकृष्ण या निताइ-गौर सेवा ही प्रचलित है। अन्य प्रकार सेवा भी कर सकते हैं—अपनी इच्छानुसार। जैसे कोई गौर-गदाधर सेवा, गौर-विष्णुप्रिया सेवा, कोई गौर-नरहरि सेवा भी किया करते हैं। अपनी-अपनी निष्ठा के अनुसार साधक साधन-भजन करते हैं। परन्तु निताइ-गौर सेवा का प्रचार सर्वाधिक है।

गौरसुन्दर को छोड़कर श्रीनिताइ चाँद नहीं रह सकते

श्रीनित्यानन्द को छोड़कर गौरसुन्दर का रहना असम्भव है। ब्रज लीला में श्रीकृष्ण विषय तत्त्व हैं एवं श्रीराधा आश्रय तत्त्व हैं। श्रीराधिका के आश्रय के बिना श्रीकृष्ण प्राप्ति सुदुर्लभ है। इसी प्रकार गौर लीला में श्रीगौरसुन्दर विषय तत्त्व हैं, श्रीनिताइ चाँद आश्रय हैं। आजकल केवल द्वेष, ईर्ष्या दिखाई पड़ती है। निताइ कहने से दोष समझते हैं, नित्यानन्द कहने पर कोई दोष नहीं, गौर कहने पर माथा चकरा जाता है, श्रीकृष्ण चैतन्य कहने पर दोष नहीं ! राधे गोविन्द कह सकते हो परन्तु राधेश्याम कहने पर जैसे भागवत ही अशुद्ध हो हो गया !!

इस तरह जो लोग प्रभु नाम का विरोध करते हैं, सत्य ही उनका दुर्भाग्य है। श्रील बड़े बाबाजी महाशय ने करुणा करके इस मधुर नाम को कृपा डोरी में पिरोया है, नूतन नाम एक भी नहीं है। चारों युगों में प्रभु का नाम, स्वरूप, गुण व लीला नित्य हैं। जिस प्रकार से भगवान् का स्वरूप नित्य है उसी प्रकार से उनका नाम भी नित्य है।

इस परम सत्य को जो लोग अनुभव नहीं करते, उन्हें समझाना व्यर्थ है। 'भज' धातु का अर्थ है सेवा। आजकल सेवा करना बहुत ही कठिन है। सेवा-अपराध से मुक्त होकर, पवित्र भाव से सेवा करना अति कठिन है। अतः प्रभु के नाम में सम्बोधन 'पद' लगाया गया है। 'हा राधे', 'हा निताइ', 'हा गौर', 'हा श्यामसुन्दर' इस प्रकार सम्बोधन करके उन्हें व्याकुलता पूर्वक पुकारना ही कलि जीव के लिए श्रेष्ठ सेवा है।

'जप हरे कृष्ण हरे राम', महामन्त्र जप करने के लिये कहा गया है। कितना सुन्दर सिद्धान्त है!

कोई यह नाम करे चाहे न करे, इससे हमें क्या। हम तो श्रीगुरु प्रदत्त नाम ही करेंगे। हमारे जीवन मरण का साथी, श्रेष्ठ अवलम्बन है यह नाम—भज निताइ गौर राधे श्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम। दूसरों की आलोचना से हमें क्या! जानते हो जब हाथी बाजार से निकलता है तो कुत्ते भौंकते रहते हैं पर हाथी पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसी तरह निर्भीकता से प्रभु का नाम करते रहो। नाम पर आक्षेप लगाना, विरोध करना महा अपराध है। 'आपकी तरह इस प्रकार सुचारु रूप से हमें और कौन समझा सकता है।' मैंने कहा। उनके श्रीमुख से नाम की व्याख्या सुनकर मन प्राण आनन्द से भर उठे।

ठाकुरजी का भोग लग चुका था। प्रसाद पाकर सभी ने विश्राम किया। अगले दिन कटक जाना था। मुंशी दादा संकीर्तन की एक टोली लेकर आये थे हम लोगों को ले जाने के लिए। श्रीपाद ने नाम को दण्डवत् किया। सभी भक्तवृन्द उस संकीर्तन दल के साथ चले गये। हम लोग पाँच-छः जने श्रील बाबाजी महाशय के साथ रहे।

उड़ीसा के पुलिस इन्सपेक्टर जनरल श्रीकृष्ण महापात्र, डिप्टी मजिस्ट्रेट श्रीराजकिशोर बाबू भी आये हुए थे। और भी बहुत से गणमान्य व्यक्ति श्रीपाद को ले जाने के लिए आये हुए थे। गाड़ी में पहले ठाकुरजी को विराजमान किया गया। फिर श्रीपाद के संग हम लोग श्रीराजकिशोर बाबू के घर

पहुँचे। उनकी श्रद्धा व प्रीति से प्रसन्न होकर श्रीपाद उस बार उन्हीं के घर ठहरे थे।

श्रीपाद के लिए एक पृथक् कक्ष में व्यवस्था की गई थी। परिकर वृन्द दूसरे कक्ष में ठहरे। श्रीपाद एक कुर्सी पर बैठकर नाममाला जप रहे थे। श्रीराजकिशोर बाबू आकर उनके चरणों में साष्टांग दण्डवत् करके व्याकुल होकर रोते-रोते कहने लगे, 'मुझे कृपा करके अपने चरणों में आश्रय दीजिये। मैं महापापी हूँ। ऐसा कोई भी पाप नहीं है जो मैंने न किया हो। आप पतित पावन हैं। इस पतित को आपके बिना और कौन आश्रय देगा!' उनकी दशा देखकर श्रीपाद के नेत्रों से झर-झर अश्रु बहने लगे। 'जय नित्यानन्द राम' कहकर हुँकार को, दोनों हाथों से उन्हें, (श्रीराजकिशोर बाबू) को उठाकर सजल नेत्रों से कहने लगे, 'निताइ चाँद कृपा करेंगे, डर किस बात का?'

श्रीपाद की बातें सुनकर श्रीराजकिशोर बाबू ने अपनी स्त्री, पुत्र-कन्या आदि को लेकर श्रीपाद के चरणों में दण्डवत्-प्रणाम किया। श्रीपाद के आगमन से चारों ओर हर्ष व उल्लास छा गया था परिवार के सभी सदस्य ठाकुर सेवा व श्रील बाबाजी महाशय की सेवा में समर्पित हो गये।

राजकिशोर बाबू के डिप्टी मजिस्ट्रेट होने से, एवं उनमें वैष्णवोचित दैन्य के कारण समाज के बहुत से उच्च-शिक्षित गणमान्य व्यक्ति उनके घर आये थे श्रील बाबाजी महाशय से कीर्तन सुनने के लिए। संध्या आरती के बाद प्राय: बारह बजे तक कीर्तन हुआ। कीर्तन में आनन्द की सीमा नहीं थी। प्रसाद

पाकर सभी ने विश्राम किया। श्रीपाद के कमरे में श्रीनन्द काकाजी, श्रीफणि काकाजी के साथ मैं भी था। प्रातःकाल श्रीपाद शौचादि के बाद हाथ में माला झोली लिये नाम करते हुए बरामदे में टहल रहे थे। मैं उनके पीछे-पीछे था।

हठात् मेरी दृष्टि ऊपर के बरामदे की ओर जा पड़ी। देखा श्रीराजकिशोर बाबू अपनी पत्नी, पुत्र, कन्या व परिवार के अन्य सदस्यों के सहित हाथ जोड़कर एकाग्र दृष्टि से श्रीपाद की अभिरमणीय श्रीमूर्ति का दर्शन कर रहे थे। श्रील बाबाजी महाशय एक-एकबार ऊपर की ओर देखते हुए एक-एक कदम चल रहे थे—फिर 'भैरवी' सुर में यह पद गाने लगे—

भजहुँ रे मन, श्रीनन्द नन्दन, अभय चरणारविन्द रे।
शीत, आतप, वात, वरिखन, ए दिन यामिनी जागि रे॥
दूर्लभ मानुष, जनम सतसंगे, तरह ए भव सिन्धु रे।
विफले सेविनु, कृपण दुरजन, चपल सुख लव लागी रे॥
ए धन यौवन, पुत्र परिजन, इथे कि आछे प्रतीत रे।
कमलदल जल, जीवन टलमल, भजहुँ हरिपद नित रे॥
श्रवण, कीर्तन, स्मरण, वन्दन, पाद सेवन दास्य रे।
पूजन सखीगण,आत्म निवेदन,गोविन्ददास अभिलाष रे॥

एक तो श्रीपाद का कोकिल जैसा कण्ठस्वर और प्रातःकाल में भैरवी सुर—सभी का मन प्राण हर लिया। कण्ठ से सुर उदारा, मुदारा (पंचम स्वर) तारा अतिक्रम करके स्वर लहरी ऊपर उठ रही थी। कण्ठ में तेज व बलिष्ठता के साथ-साथ कोमल, मधुर प्रेमसिंचन का अद्भुत समावेश मैंने अपने जीवन में और किसी में कभी नहीं देखा। प्रत्यक्षदर्शी मात्र ही इसकी

सत्यता को अवश्य स्वीकार करेंगे। भाव-विह्वल होकर श्रीपाद इस पद का गान कर रहे थे व अजस्र अश्रुधाराओं से सिंचित हो रहे थे।

राजकिशोर बाबू से और खड़ा रहना असम्भव रहा, सिर पर हाथ रखकर बैठे-बैठे रोने लगे। उनके साथ सभी लोग रो रहे थे श्रीपाद के भावविभोर होकर गाते हुए अश्रु प्रवाहित हो रहे थे—उनका श्रीअंग थर-थर कंपित हो रहा था, सम्भल कर पुनः गा रहे थे। भाव को सम्भाल कर धैर्य धारण की सामर्थ उनके जैसे और किसी की नहीं देखी। वह स्वर मैं कभी भूल नहीं सकता—आज भी मेरे कानों में वह स्वर लहरी बज रही है।

श्रीनन्द काकाजी ने आकर उनसे कहा, 'दादा स्नान करने चलो, आज राजकिशोर बाबू को दीक्षा देनी है। श्रीपाद का भाव शान्त होने पर हम लोगों ने उन्हें तेल लगाया। स्नान-आन्हिक के बाद श्रीपाद ने दीक्षा देने के लिए श्रीनन्द काकाजी को बुलाया। काकाजी ने—राजकिशोर बाबू, उनकी पत्नी, पुत्र-कन्या सभी को बुलाया—नाम प्रारम्भ हुआ। श्रीपाद दीक्षा देने से पहले प्रार्थना कीर्तन करते थे। गाने लगे—

'जगत् गुरु नित्यानन्द, एकबार आओ नित्यानन्द रूप में। मेरा कोई अधिकार नहीं है, एक बार आओ राधारमण (श्री बड़े बाबा—श्रीराधारमणचरण दास) एकबार आओ मेरे पागला प्रभु। पाप ताप सब मुझको देकर आप श्रीनिताइ गौर भजन कराओ।' यह कहते-कहते विचलित हो गये। उनके साथ उपस्थित सभी भक्त फूट-फूट कर रोने लगे। अपूर्व नामध्वनि

के बीच एक-एक को बुलाकर श्रीपाद मन्त्र देने लगे। राजकिशोर बाबू मंत्र पाकर भाव-विह्वल होकर आँसू बहाने लगे। कटक निवासी बहुत भक्तों ने उस दिन श्रील बाबाजी महाशय से दीक्षा ली। नाम समाप्त हुआ, श्रीपाद ने नन्द काकाजी व मुंशीदादा से प्रसाद पाने की व्यवस्था करने को कहा।

श्रीपाद के संग हम लोग प्रसाद पाने बैठे। श्रीनन्द काका जी घूम-घूम कर दर्शन कर रहे थे; मैंने उनसे प्रसाद पाने के लिए बुलाया, तो बोले, कि वे थोड़ी देर के बाद प्रसाद पायेंगे। श्रीपाद उनकी मन की बात जान गये, एक कटोरी में थोड़ा सा प्रसाद अपने पत्तल से लेकर काकाजी के हाथ में दे दिया। श्रीनन्द काकाजी ने वह प्रसाद श्रीराजकिशोर बाबू को दिया। उन लोगों ने वही प्रसाद थोड़ा-थोड़ा पाकर जलपान किया व श्रील बाबाजी महाशय सहित वैष्णव पंगत के दर्शन करने लगे। कटक वासी अनेक भक्तों ने भी उस दिन वहाँ पर प्रसाद पाया।

श्रीपाद विश्राम करने से पूर्व मुझसे बोले, 'आज श्रीकृष्ण महापात्र के घर कीर्तन होगा। पुजारी वहीं पर ही रसोई करेगा। सभी आज वहीं पर प्रसाद पायेंगे।' यह कहकर वे विश्राम करने चले गये। मैं उनकी चरण-सेवा करने लगा।

संध्या के समय श्रील बाबाजी महाशय के साथ 'काठजुड़ी' नदी के किनारे घूमने गया, वहाँ से श्रीरासबिहारी मठ दर्शन करने गया। रासबिहारी मठ में श्रीबड़े बाबा के श्रीविग्रह की सेवा है। दण्डवत् प्रणाम करके लौट आये। राजकिशोर बाबू के मकान के आगे छोटी बड़ी बहुत गाड़ियाँ खड़ी थीं। ठाकुर

जी को साथ लेकर खोल करताल लिए सब लोग रवाना हो गये। श्रीपाद के संग श्रीफणि काका, श्रीनन्द काका और मैं। श्रीकृष्ण महापात्र महाशय की गाड़ी से उनके घर पहुँचे। विशाल आयोजन था। शहर के जितने भी धनी व सम्मानित व्यक्ति थे सभी आये हुए थे। श्रीपाद से कीर्तन सुनने के लिए।

श्रीकृष्ण महापात्र ने 'श्रील' बाबाजी महाशय को भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया व उन्हें एक कुर्सी पर बिठाया। उनकी पत्नी, पुत्र, कन्या व परिवार के अन्य सदस्य सभी ने आकर श्रीपाद को दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीपाद कीर्तन-स्थल पर जाकर बैठे। उस विशाल जनसमागम में बड़े-बड़े प्रोफेसर, अध्यापक, संस्कृतज्ञ, पंडित व ज्ञानीपुरुष बहुत से आये हुये थे। श्रीपाद निताइ चाँद का गुणगान कर रहे थे।

'सुरधुनीर कूले कूले, जारे देखे तारे बले' अर्थात् गंगाजी के किनारे से जाते हुए 'निताइ चाँद' जिसे भी देखते हैं उसे ही कहते हैं—'गौर हरि बोल' बोलो। कीर्तन सुनकर ऐसा लग रहा था जैसे श्रीपाद को प्रभु नित्यानन्द के प्रत्यक्ष दर्शन हो रहे हैं व स्वयं निताइ चाँद ही उनके मुख से कीर्तन स्फुरण करा रहे हों। श्रीपाद के मुख से जितने भी निगूढ़ पद पदावली की स्फुरणा होती थी, वे स्वयं उन्हें प्रभु का दान, श्रीगुरुदेव की कृपा मानते थे। जीवन भर उन्हें कभी भी मैंने यह कहते हुए नहीं सुना कि 'कीर्तन मैंने किया है', या 'मैंने कीर्तन में इस प्रकार कहा है।'

यदि कदाचित् कोई उनसे कहता कि उनके किये गए कीर्तन में समस्त शास्त्रों का सार सिद्धान्तों से भरपूर है तो

उत्तर देते—'मेरा अपना कुछ भी नहीं है सब 'दाता' का दान है। 'निताई चाँद' कृपा करके दान करते हैं, बुलवाते हैं, तो बोलता हूँ।"

संसार में देखा जाता है, यदि कोई हमारी थोड़ी सी भी प्रशंसा कर दे तो हम उस पर बड़े प्रसन्न हो जाते हैं, उसके साथ प्रीति करने लगते हैं, उसकी सेवा करने में तत्पर हो जाते हैं। परन्तु इस मृत्युलोक की स्तुति या निन्दा श्रील बाबाजी महाशय को कभी भी विचलित अथवा अशान्त न कर सकी, सारे संसार में उनकी प्रतिष्ठा होते हुए भी देखा है कि जो व्यक्ति उन्हें अश्रद्धा करता, जो उनकी निन्दा करता था उससे वे अधिक स्नेह करते थे। शान्त रहकर, हँसते हुए उसकी सारी निन्दा सहन करके सदा उसी की मंगल कामना करते थे।

मैंने स्वयं अपनी आँखों से ऐसी घटनायें देखी हैं—जिन्होंने उन्हें कठोर वचनों से, असहनीय निन्दा करके आघात पहुँचाया, उन्हीं को करुणा से विगलित होकर उनके सभी अपराधों को क्षमा किया है। अवर्णनीय पाशविक अपराध व नारकीय पाप भी क्षमा करके उन्हें श्रीचरणों में आश्रय देकर भक्ति का दान दिया। केवल यही नहीं,वे उनकी कृपा से महाभक्त बने व उनमें पतितपावनत्व की शक्ति भी प्रदान की। ऐसे असंख्य दृष्टान्त आँखों के सामने हैं। यह मेरी अतिशयोक्ति नहीं है।

श्रीकृष्ण महापात्र के घर कीर्तन हो रहा था—'निताइ जारे देखे, तारे बले—'कि करे बरण कूल !' (वंश)

आँखर—कुले कि गोबिन्द मिले ? 'गोविन्द तोमार हल्ताम बले'—आकुल प्राणे ना डाकिले, कुले कि गोविन्द मिले ?

भावार्थ—उच्च वंश से क्या लाभ ! हे गोविन्द 'मैं केवल आपका हूँ' इस प्रकार व्याकुल पुकार के बिना क्या कृष्ण-प्राप्ति सम्भव है ?

आधे घण्टे तक इसी पंक्ति पर खूब कीर्तन होने लगा। पुनः गाने लगे, देख, कपिकूले धन्य वीर हनुमान, श्रीराम भकतराज। बनेर बानर भकतिर बले, हृदय चीरे देखायछिल, मानुष हये तोमार गरब किसेर, जे मानुष हये हरि ना भजे, से तो पशु होतेओ अधम, हनुमान हृदय चीरे देखायछिल सीता रामेर युगल रूप।

भावार्थ—भक्तराज श्रीहनुमान जी बानर जाति के होते हुए भी उन्होंने भक्ति बल से हृदय चीरकर श्रीसीताराम के युगल स्वरूप का दर्शन कराया था। मनुष्य होकर तुम्हें अभिमान कैसे ? हरि भजन के बिना तुम तो पशु से भी अधम हो।' 'राक्षस हइया विभीषण वैसे ईश्वर सभार माझ ॥ दैत्येर औरसे, प्रह्लाद जनमि, भूवने जाहार यश। स्फटिक स्तम्भेते, प्रकट नरहरि हइया जाहार वश ॥ तार उत्तम कूले जनम नय, प्रह्लादेर विशुद्ध भकतिर बले नरसिंह रूपे प्रकट हलेन।'

भावार्थ—राक्षस कुल में जन्म लेते हुए भी विभीषण महाराज देवताओं की सभा में शोभा पाते हैं। प्रह्लादजी ने दैत्य कुल में जन्म लिया था पर उनकी भक्ति से भगवान् नरसिंह रूप धारण करके स्फटिक खम्ब में से प्रकट हुए थे।

श्रीपाद व्याकुल स्वर में रोते-रोते कीर्तन कर रहे थे—

देख, कि कूल विदुरेर छिल खाइल जाहार घरे। तार उत्तम

कूले जनम नय, दुर्योधनेर नाना उपचार फेले, दाओ दाओ बड़ क्षुधा पेयेछे बले, दासीपुत्र विदुरेरे काछे खूद कणा येचे खेले,

भावार्थ—दासी पुत्र विदुर के घर भगवान् ने दुर्योधन की सेवा छोड़कर अन्न के कण माँग-माँगकर खाया। इस पंक्ति को गाते हुए उनका मस्तक भीषण घूर्णित होने लगा। शरीर पर अश्रुकम्प अष्ट सात्त्विक भाव उदय होने लगे। कुछ शान्त भाव धारण करके कीर्तन करने लगे—

चण्डाल हइया मिताली करिल गुहक चण्डाल वरे। चण्डाल हइये पूर्णब्रह्मे रामा मिते बले डाकित। चण्डाल कन्या शवरी उच्छिष्ट फल खेते दिल। से केवल भकतिर वल, कूलेर गरब नय॥

भावार्थ—भक्ति के बल पर गुहक चण्डाल (केवट) पूर्णब्रह्म श्रीराम को मित्र कहके पुकारते, चण्डाल कन्या शबरी का उच्छिष्ट झूँठा ? फल खाया प्रभु ने, कुल-मर्यादा के कारण नहीं। अब श्रीपाद ब्रज गोपियों के प्रसंग पर प्रफुल्लित होकर गाने लगे—

देख किबा साधना करिल गोकुले गोपेर नारी। तारा तो गोआलार मेये, उत्तम कूले जनम नय। क्रीड़ापुत्तलिकार मत, अनादिर आदि श्रीगोबिन्दे जेमनि नाचाय तेमनि नाचे; श्री-रासमण्डल माझे जेमनि नाचाय, तेमनि नाचे॥

भावार्थ—ब्रज गोपी कौन से साधन द्वारा अनादि के आदि श्रीगोविन्द को रासमण्डल में इच्छानुसार नचाती हैं।

जाति-कूलाचार की करिबे तार ! जे भजे श्रीहरि तारि ।। श्रीकृष्ण भजने सबे अधिकारी, कूलेर गरब नाइ । चण्डाल हय द्विजश्रेष्ठ । कृष्ण प्रभू पासरिले, द्विज होयेओ श्वपचाधम । ताइ बाहु तुले निताइ बले बल प्राणेर गौर-हरि, कूल अभिमान परिहरि, बाहु तुले निताइ बले, तोमरा जान ना कि कलि जीव, एवार गोबिन्द—गौरांग हल ।।

भावार्थ—श्रीकृष्ण भजन में जातपात, उच्चकुल की गरिमा नहीं है । श्रीकृष्ण भजन करने पर श्रीहरि उसी के हो जाते हैं चण्डाल भी हरिभक्ति के द्वारा ब्राह्मण से भी उच्च पदवी पा सकता है । श्रीकृष्ण को भूलकर ब्राह्मण, हीन जाति से भी अधम है ।

श्रीनन्द नन्दन गोपीजनवल्लभ,
श्रीराधानायक नागर श्याम ।
सो शचीनन्दन, नद या पुरन्दर,
सुरमुनिगण मन, मोहन धाम ।।

'नन्देर नन्दन जेइ, शचीसुत हइल सेइ ।' नन्दसुत बलि जारे, भागवते गाय रे । सेइ कृष्ण, अवतीर्ण चैतन्य-गोसाँइ रे ।। आमार निताइ कैंदे बले—तोमरा जानना कि कलि जीव, एवार गोविन्द गौरांग हल, श्रीगौरांग रहस्य आवेशे निताइ बले ।

भावार्थ—श्रीनिताइ चाँद प्रेम प्रचार लीला में कलि जीव को सम्बोधित करते हुए कहते हैं, 'हे कलि जीव क्या तुम नहीं जानते श्रीनन्द नन्दन, गोपीजन वल्लभ श्रीकृष्ण कलिकाल में

श्रीगौरांग स्वरूप में अवतीर्ण हुए हैं। यही श्रीगौरांग अवतार का गूढ़ रहस्य है—

जय निज कान्ता, कान्ति कलेवर, जय निज प्रेयसी भाव विनोद। राधाभावद्युति चोरा, तीन वांछा पुराइते, आचरि धर्म शिखाइते, अनर्पित वितरिते—राधाभाव द्युति चोरा। हइल इच्छार उद्गम—के आमाय मुग्ध करे ! आमि तो भुवन मोहन ! आमि उहा आस्वादिब। कैछन राधाप्रेमा, कैछन मधुरिमा, कैछन सुखे तिहँ भोर। ए तीन वांछित धन, ब्रजे नहिल पूरण, कि करिबे ना पाइया ओर॥ ताइ भाविया देखिल मने, राधार स्वरूप बिने, ए वासना पूर्ण कभू नय। ताइ, राधाभाव, कान्ति धरि, राधाभाव गुरु करि, नदीयाते हइल उदय। एबार कृष्णेर, चैतन्य नाम। दिते राधा प्रेमेर प्रतिदान —श्रीकृष्ण-चैतन्य नाम॥

भावार्थ—श्रीरास मण्डल में क्रीड़ारत श्रीश्यामसुन्दर के मन में इच्छा जागी—'मैं तो स्वयं भुवनमोहन हूँ, पर मेरे मन को जो मुग्ध करता है, मैं उसे आस्वादन करूँगा। ब्रज प्रेयसी-गणों की शिरोमणि श्रीराधारानी का प्रेम, उस प्रेम का माधुर्य, उस प्रेममाधुरी से उत्पन्न सुख का आस्वादन करूँगा। ब्रज प्रेम का आश्रय स्वयं श्रीराधारानी हैं। उनके आश्रय के बिना यह सम्भव नहीं। इन तीनों वांछाओं की पूर्ति ब्रज लीला में सम्भव नहीं।' अतः श्रीश्यामसुन्दर को स्वामिनी जू की ही शरण लेनी पड़ी। उन्हें अपना गुरु मानकर स्वामिनी जू का प्रेम, भाव व गौर वर्ण प्राप्त कर अपनी अपूर्ण इच्छा का पूर्ण करने के निमित्त श्रीनवद्वीप में अवतीर्ण होना पड़ा। अब

(कलियुग में) श्रीकृष्ण ने ही श्रीराधाप्रेम का प्रतिदान देने के लिये श्रीचैतन्य नाम धारण किया है। चैतन्य अवतार का यही गूढ़ रहस्य है। कलिजीव को, ब्रज-रस का स्वयं आस्वादन कर के उन्हें पान कराने, स्वयं आचरण करके जीव को सिखाने के निमित्त भक्त भाव अंगीकार करके श्रीकृष्ण का यह चैतन्य अवतार है।

'एबार कृष्णेर चैतन्य नाम, दिते राधा प्रेमेर प्रतिदान, श्रीकृष्ण-चैतन्य नाम।' इस पंक्ति के कीर्तन पर प्रबल कीर्तन आरम्भ हुआ। श्रीपाद इसका गान करते हुए व्याकुल हो गये। समस्त शरीर में भीषण कम्पन होने लगा। उनका मस्तक इस प्रकार घूर्णित हो रहा था कि उन्हें पहचाना नहीं जा रहा था। प्रबल अश्रुधारा चारों ओर छिटकने पर दर्शक मण्डली भीज रही थी। श्रीअंगमें जो महाभाव प्रकट हुआ उसका वर्णन दु:साध्य है।

प्राय: एक घण्टे तक इस प्रकार कीर्तन चलता रहा। भाव कुछ शान्त होने पर पुन: गाने लगे, 'ब्रज तरुणी गण लोचन-मंगल, एबे नदीया-वधुगण नयन-आमोद।' अर्थात् ब्रज गोपियों के नेत्रों को (आनन्द) मंगल प्रदानकारी (श्रीकृष्ण) अब नदिया नागरी के नेत्रों को हर्षित कर रहे हैं।' इसके पश्चात् श्रीपाद ने कितने ही अनुराग व विरह के पदों का कीर्तन किया। उनकी अगाध कीर्तनावली लिखना सम्भव नहीं। यह समस्त कीर्तन पुस्तक आकार में प्रकाशित किया गया है।

रात्रि के प्राय: साढ़े बारह बजे तक कीर्तन हुआ। कीर्तन के पश्चात् श्रीपाद एक कक्ष में विश्राम करने लगे। पुलिस इन्सपेक्टर-जनरल श्रीकृष्ण महापात्र महाशय आकर उन्हें

साष्टांग दण्डवत् करके अपने भाग्य की सराहना करते हुए दैन्य प्रकाश करने लगे। समस्त भक्तों का प्रसाद पाने का बन्दोबस्त किया गया। परिकर सहित श्रील बाबाजी महाशय श्रीराजकिशोर बाबू के घर लौट आये।

इसी प्रकार गोकुल बाबू के घर भी कीर्तन उत्सव हुआ। प्रायः ४० वर्ष पूर्व को घटना है। विशेष-विशेष ही उल्लेख किया गया है। 'कटक' शहर में श्रीपाद के संग परम आनन्द से अतिबाहित करके 'भद्रक' शहर में श्रीभागवत बाबू के घर पहुँचे। श्रीपाद को अपने घर पाकर भागवत बाबू को मानो जैसे आकाश का चन्द्रमा मिला हो—आनन्द की सीमा न रही। उन लोगों की प्रीति-भक्ति का मैं क्या वर्णन करूँ। उनकी सेवा, आदर सत्कार भुलाया नहीं जा सकता। वहाँ पर भी कितना ही कीर्तन-आनन्द महोत्सव चला।

कुछ दिन भद्रक रहकर हम सब कलकत्ता लौट आये। कलकत्तावासी भक्तवृन्द इतने दिनों के बाद श्रीपाद को पाकर आनन्द निमग्न हो गये। उन दिनों गोपालदास नाम का एक बालक श्रीपाद शरणमें आया था श्रीअपेरा काकाजीके गांवका रहने वाला था। बहुत अनुरागी था अतः श्रील बाबाजी महाशय ने उसे अपने पास ही रख लिया था हम सब पाँचुदा के घर ही रह रहे थे।

हावड़ा में 'शालकिया' पहुँच कर श्रील बाबाजी महाशय को दर्शन करने में भक्तवृन्द को असुविधा होने पर कलकत्ता के बर्महाटा स्ट्रीट पर एक मकान भाड़े पर लेकर 'मठ' बनाकर उसी में हम सबके ठहरने की व्यवस्था की गई। उसमें

ठाकुरजी का मन्दिर, विश्राम स्थान, रसोई, पानी इत्यादि का सुबन्दोबस्त देखकर श्रीपाद प्रसन्न हुए। इस मठ की सेवा भी पाँचुदा ने ही की थी।

कुछ ही दिनों में पुरी में श्रीहरिदास ठाकुर का विरह उत्सव करना था। अतः श्रीपाद उत्सव को भिक्षा करने लगे। प्रतिवर्ष श्रीपाद दो बार भिक्षा में निकलते थे। एकबार श्रीरथयात्रा दूसरी बार श्रीहरिदास ठाकुर महोत्सव पर। भिक्षा पूर्ण होने पर श्रील बाबाजी महाशय के साथ—श्रीफणि काकाजी, नन्द काकाजी, मैं और पाँच छः जने भक्त मोटर से स्टेशन पहुँचे। सामान, बक्सा सब उतार कर रखा गया। एक बक्से में उत्सव की भिक्षा—ढाई हजार रुपये थे। उस बक्से को भी साथ उतार कर रखा गया।

श्रीफणि काका श्रीपाद के साथ वार्तालाप कर रहे थे—मैं भी उनके पास खड़ा था। अचानक फणि काका चिल्ला उठे—रुपयों का बक्सा कहाँ गया! उसी बक्से में सारा रुपया था यहाँ तक कि गाड़ी की टिकटें भी उसी में थीं। इधर-उधर ढूँढ़ने पर भी नहीं मिला। ऐसी अवस्था में सभी चिंतित हो गये क्या किया जाय, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। परन्तु श्रीपाद बिना कुछ कहे, अविचलित होकर नाम माला जप कर रहे थे।

इतने में पुलिस एक आदमी को पकड़ कर लाई—उसके हाथ में वही रुपयों वाला बक्सा था। श्रीफणि काका दौड़कर आये, उसके हाथ से बक्सा ले लिया। और उस पर दो-चार थप्पड़ जमा दिये। श्रील बाबाजी महाशय ने उन्हें शान्त

किया। पुलिस के उस आदमी ने बताया कि वह हम लोगों के पास ही खड़ा था। बक्सा लिए उसी आदमी को भागते देखकर उसने उसका पीछा किया, जिसका हम लोगों को पता तक नहीं चला। बहुत दूर तक जाकर उसे पकड़ पाया था। कहने लगा, 'यह तो चोर है, इसे जेल भिजवाउँगा।'

श्रील बाबाजी महाशय ने उससे कहा, 'ठाकुरजी की कृपा से जब हमें बक्सा मिल ही गया, तो उसे छोड़ दीजिये।' उनकी बात पर पुलिस ने उसे छोड़ दिया। चोर भी डरके मारे सिमट कर खड़ा था, श्रीपाद की कृपा से चोर ने मुक्ति पाई—इसी आनन्द से वह श्रीपाद को प्रणाम करके चला गया। प्राय: एक वर्ष के पश्चात् उसे मैंने 'दर्महाटा' मठ में देखा था। श्रील बाबाजी महाशय ने करुणा से द्रवित होकर उसे क्षमा किया था, उस पर कृपा दृष्टि की थी। एक वर्ष के पश्चात् उसने श्रीपाद की शरण में आकर उनसे दीक्षा ली व भक्त जीवन लाभ करके अपने को धन्य किया।

श्रीपाद के संग हम लोग सामान आदि लेकर गाड़ी पर बैठे। ट्रेन खड़गपुर, कटक, बालेश्वर, भुवनेश्वर आदि स्टेशनों पर रुकने पर वहाँ के भक्तवृन्द श्रीपाद के दर्शन कर रहे थे। पुरी धाम के निकट पहुँचते ही श्रीमन्दिर का शिखर दर्शन होने लगा। स्टेशन पर श्रीपरमानन्द काका, मुसो दा व अन्य भक्तगण भी आये हुए थे। श्रील बाबाजी महाशय के संग हम लोग नाम कीर्तन करते हुए 'श्रीझाँझपीटा मठ' पहुँचे। उसी स्थान पर श्रीबड़े बाबाजी महाराज रहते थे। उन्हें दर्शन प्रणाम करके तब और कहीं श्रीपाद जाया करते थे। श्रीगुरुदेव

(बड़े बाबा) निकुंज लीला में प्रवेश कर चुके थे परन्तु श्रीपाद उन्हें पूर्ववत् प्रकट स्वरूप में ही मानते थे।

स्नान-आन्हिक आदि के पश्चात् प्रसाद पाकर सभी ने विश्राम किया। सन्ध्या के समय हमारे अनेक साथी श्रीहरिदास ठाकुर मठ में चले गये। नरोत्तम काका आरती के बाद ठाकुरजी को लेकर मठ पर चले गये। श्रीपाद के संग केवल मैं और फणिकाका रह गये। कुछ देर बाद श्रील बाबाजी महाशय के संग श्रीमन्दिर दर्शन करने निकले। श्रीजगन्नाथ देव, श्रीषड्भुज, श्रीमन्महाप्रभु जी के चरणचिह्न दर्शन करके श्रीगम्भीरा दर्शन करने गये। वहाँ से श्रीसमुद्र महातीर्थराज के दर्शन व दण्डवत् कर श्रीहरिदास ठाकुर मठ पहुँचे।

उस समय श्रीहरिदास ठाकुर की आरती हो रही थी। श्रीपाद के संग-संग दण्डवत् प्रणाम व परिक्रमा करके मन्दिर के पीछे श्रीश्यामदास बाबाजी एवं श्रीगोविन्ददास को प्रणाम करके उन्हीं के पास बैठे। श्रीपाद उन दोनों बाबा जी महाशयों से आयु में छोटे होते हुए भी उनके अत्यन्त प्रीति व श्रद्धा के पात्र थे। श्रील बाबाजी महाशय स्टेशन पर चोरी की घटना का उल्लेख करते हुए श्रीगौरसुन्दर की बाल लीला स्मरण कर रहे थे—

'एक बार नदिया में दो चोर स्वर्ण आभूषणों से सज्जित बाल निमाइ चाँद को चुराकर ले गये थे। घूमते-घामते उन्हें उनके घर के आगे पुनः रखकर भाग गये थे।' यद्यपि चोरी की घटना श्रीफणि काकाजी ने उन्हें पहले ही बता दी थी परन्तु श्रीपाद के हृदय में प्रभु की लीला की ही स्फुरणा हुई

थी। उन्होंने सारा रुपया श्रीगोविन्ददास बाबाजी के आगे रख दिया उत्सव के लिए। वे ही उन दिनों वहाँ के महान्त थे।

चारों सम्प्रदाय के वैष्णवों को उत्सव का निमन्त्रण दिया गया। प्रातःकाल श्रीहरिदास ठाकुर की भजन-स्थली पर जाकर श्रील बाबाजी महाशय ने कीर्तन किया—'स्वयं महाप्रभु ने श्रीहरिदास ठाकुर का चिन्मय शरीर अपने कन्धों पर रख-कर नृत्य-कीर्तन करते हुए समुद्र में स्नान कराकर समाधि दी थी।' उसके बाद नाम कीर्तन करते हुए समुद्र के किनारे पर जाकर दण्डवत् कर व जल मस्तक पर स्पर्श करके श्रीहरिदास ठाकुर मठ में आये। संध्या के समय श्रीपाद श्रीहरिदास ठाकुर की निर्याण (अन्तर्धान) लीला कीर्तन करने के लिए श्रीनिताइ-गौर, सीतानाथ (श्रीअद्वैत) विग्रह के सम्मुख बैठे।

समस्त प्रांगण भक्तवृन्द से भर गया। चारों ओर जनता की भारी भीड़ थी कीर्तन सुनने के लिए। उस दिन के कीर्तन के विषय में वर्णन करना मेरे लिए असम्भव है। वह कीर्तन तो पाषाण (पत्थर) को पिघला रहा था। पाठक उनका कीर्तन पाठ करने पर किंचित् समझ सकेंगे। वह व्याकुलता, विरह-वेदना, वह क्रन्दन मेरे जैसे कितने ही पाषाण हृदयों को भी द्रवीभूत कर रही थी कितने ही पाषण्ड-हृदय व्यक्ति व्याकुल होकर अश्रुपात कर रहे थे। बहुत से भक्तवृन्द आवेश में लोट-पोट हो रहे थे।

उस दिन के कीर्तन का उल्लास, भाषा द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। कीर्तन के अन्त में 'जय ठाकुर हरिदास' यह नाम बहुत देर तक कीर्तन हुआ। श्रीमहाप्रसाद की पंगत

आरम्भ हुई। वैष्णवगण एक पंक्ति में बैठे। अन्य भक्तवृन्द जिसे जहाँ पर भी जगह मिली, बैठ गये प्रसाद पाने। छत पर भी तिलार्ध स्थान नहीं बचा। श्रीगोविन्द बाबा जगन्नाथजी का महाप्रसाद दे रहे थे और श्रीफणि काकाजी अमृत प्रसाद। मैं श्रीअद्वैत काका व चारुदा के संग प्रसाद पाने बैठा था। चारुदा दो-एक ग्रास प्रसाद पाकर ही चिल्लाकर बोल उठे— 'ऐसा स्वादिष्ट महाप्रसाद कलकत्ते में कहाँ मिलता है ? मुझे हाण्डि समेत प्रसाद दे जाइये ऐसा अवसर रोज-रोज नहीं मिलता, आज मैं नहीं छोड़ूँगा।'

श्रीगोविन्द बाबा ने कहा, चारु इस हाण्डि में आधा मन (२० किलो) कणिका प्रसाद है। खा सकोगे तुम ? चारुदा उछल कर बोले, 'फुटबाल की 'ब्लडर' की तरह पम्प से अपना पेट फुलाकर उसमें प्रसाद ठूँस-ठूँस कर भर दूँगा। यदि मेरा प्राणान्त भी हो जाय तो भी मेरा अहो भाग्य ! श्रीहरिदास ठाकुर की अप्रकट तिथि पर प्राण त्याग—यह असामान्य सौभाग्य अनेक साधना व श्रीगुरुकृपा से ही सम्भव है ! सुन कर श्रीअद्वैत काकाजी बोल उठे, 'शाबास चारु, तुमने मेरे मन की बात कह दी।' उपस्थित भक्तवृन्दों में हँसी का फुब्बारा छूट गया। रात के एक बजे तक पंगत चली। हम लोगों ने पत्तल उठाकर समस्त स्थान धोकर साफ किया। प्राय: दो बजे विश्राम करने गये।

श्रीपाद को मात्र एक दिन और पुरी में रहना था। अत: प्रात:काल झाँझपीटा मठ में चले आये। संध्या के समय पूर्ववत् श्रीजगन्नाथ देव, षड़भुज महाप्रभु, दर्शन परिक्रमा करके,

समस्त देव देवी को प्रणाम किया। श्रीगम्भीरा, श्रीहरिदास ठाकुर की समाधि व 'टोटागोपीनाथ' दर्शन करके अगले दिन कटक पहुँचे। वहाँ पर एक दिन रहकर भद्रक होते हुए कलकत्ता गये। कलकत्ते में तीन-चार दिन रहकर, मेघलाल दादा, उपेनदा, जानकी, नन्द काका, फणि काका, मदनदा व श्रीहरेकृष्णदा को संग लेकर श्रीनवद्वीप धाम दर्शन करने गये।

संध्या के समय हम लोग श्रीसमाज बाड़ी आश्रम पहुँचे। श्रीरथयात्रा में पुरी धाम जाने से पहले एकबार, और लौटते हुए एकबार—श्रीनवद्वीप धाम दर्शन का श्रीपाद का नियम था। इस बार भी नवद्वीप दर्शन करने आये थे। आश्रम में उन दिनों गोपीदा, कानाइदा, बड़े दयालदा निताइदास आदि रहते थे। गोपीदा श्रीमती ललिता सखी के आनुगत्य में नाम-कीर्तन, वैष्णव सेवा में अपना जीवन व्यतीत करते थे। श्रील बाबाजी महाशय के नवद्वीप पहुँचने पर कितने ही भक्त, वैष्णव उनके दर्शन करने आये। श्रीकृष्ण चैतन्य दादा महाशय, श्रीगदाधर दास बाबाजी भी आये। इसी प्रकार से अनेकों वैष्णवों के दर्शन होने लगे।

मैंने आज तक मंत्र दीक्षा नहीं ली थी। फिर भी श्रील बाबाजी महाशय मुझसे बहुत प्रीति करते थे। मेरे मन में सदा एक ही अभिमान रहता था कि मैं स्वयं किसी के पास जाकर दीक्षा नहीं लूँगा अथवा किसी को अपने गुरु के आसन पर स्वयं नहीं बिठाऊँगा। श्रीगुरु स्वयं आकर मुझे दीक्षा देंगे। यह निश्चय घर छोड़ने के पश्चात् हृदय में बद्धमूल हो गया था। मैं अपनी जिद पर अड़ा हुआ था।

जब मैं श्रीबन्धुसुन्दर के आश्रम में रह रहा था तब मैंने एक साधु से अपने होने वाले गुरु के विषय में पूछने पर उन्होंने बताया था कि श्रील रामदास बाबाजी महाशय मेरे श्रीगुरुदेव होंगे। तब मैंने विश्वास ही नहीं किया। उस साधु के नित्य-धाम को जाने के बाद ही मुझे गुरु की प्राप्ति हुई थी। कितने दिन ही तो मैंने श्रीपाद को मंत्र प्रदान करते हुये दर्शन करता था, उनके संग नाम कीर्तन करता था, प्राय: एक वर्ष से उनके संग भ्रमण कर रहा था, पर उन्होंने मुझे दीक्षा लेने के लिए कभी नहीं कहा था।

एक दिन मैं प्रात:काल गंगा स्नान करने जा रहा था। एक पागल, सर धर झूँठी हाँडी पर कर खिलखिला कर हँसता हुआ उलटी तरफ से आ रहा था। मुझे देखकर सर से हाँडी उतारी। शरीर पर कौपीन मात्र, लज्जा का चिह्न मात्र नहीं था। मुझसे बोला, 'दे भिक्षा दे।' मेरे पास चार ही पैसे थे, देने पर बहुत ही प्रसन्न होकर मुझसे कहा, 'पागल समझ कर मेरा परिहास न करना, आज तेरी दीक्षा होगी। मैं ठीक कह रहा हूँ, झूँठ नहीं।' यह कहकर हँसते-हँसते चला गया। मैंने सोचा, 'पागल भी कभी सच कहता है ?' मेरी तो दीक्षा लेने की कोई इच्छा ही नहीं होती थी, और श्रीपाद भी मुझसे कुछ नहीं कहते थे।

मैं स्नान करके आश्रम लौट आया। श्रीपाद भी स्नान-आन्हिक के पश्चात् बड़े बाबा के कक्ष में गये। उस दिन बहुत सारे लोग दीक्षा लेने के लिए आये हुए थे। दीक्षा लेने के लिए सब लोगों ने उसी कक्ष में प्रवेश किया। अनेकों दिन मैंने श्रीपाद

को दीक्षा देते हुए दर्शन किया था। उस दिन भी उसी भाव से उनके पास जाकर बैठा हुआ था। 'श्रील' बाबाजी महाशय दीक्षा देने से पहले बड़े बाबा से प्रार्थना करके 'नाम-कीर्तन' करने लगे।

उनके संग मैं, निताइ रमणदा, जानकी, मदनदा, दयालदा आदि बहुत से भक्त नाम कर रहे थे। नाम ध्वनि से लग रहा था कि 'छत' टूट कर गिर पड़ेगी। उच्च स्वर से नाम ध्वनि उठ रही थी। श्रीपाद एक-एक को मंत्र-दीक्षा दे रहे थे, और वह व्यक्ति उठकर एक तरफ बैठ रहा था। फिर एक व्यक्ति आया उसे दीक्षा दी। इसी तरह प्रायः १५ व्यक्तियों की दीक्षा हुई, श्रीदयालदास जी की दीक्षा भी उसी दिन हुई। मैंने ऊपर की तरफ देखा छत पर लगी हुई लोहे की बीम से टप-टप पानी गिर रहा था। कमरे के चारों ओर से पानी टपक रहा था, फर्श भी गीला हो रहा था, हमारे वस्त्र भी भीग गये थे। खिड़की खुली हुई थी, गरमी से ऐसा होना सम्भव नहीं था, कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

श्रीपाद की ओर देखा; तो देखा वे अजस्र अश्रु धाराओं से प्लावित हो रहे थे। एक-एक बार अश्रु पोंछकर फिर मंत्र दे रहे थे। उन्हें इस तरह क्रन्दन करते हुए देखकर मुझे भी रोना आ रहा था। अनजाने में ही मैं रोने लगा था। और दिन श्रीपाद सबको दीक्षा देने के बाद उठकर चले जाते थे, पर उस दिन उठे नहीं, क्रन्दन ही करते जा रहे थे। मैं भी रो रहा था।

उनकी एक तरफ करुणा तथा दूसरी तरफ व्याकुलता भरी छवि मैं जीवन भर नहीं भूल सकता। एक-एक बार मेरी ओर

देखते हुए अजस्र धाराओं में अश्रुपात कर रहे थे। अचानक उन्होंने अपना करुणामण्डित अभय, अरुण कर-कमल मेरी ओर प्रसारित कर दिया, जैसे-मुझे अपनी गोदी में लेना चाह रहे हों। तभी मेघलालदा और उपेनदा ने मुझे पकड़ कर उनकी गोदी में डाल दिया। मैं उनके गले से लग कर खूब रोया। वे भी मुझे अपने हृदय से लगाकर रो रहे थे।

प्रायः दस मिनट के बाद उन्होंने मुझे गले से लगाकर, 'जय श्रीराधारमण, जय श्रीराधारमण कहते हुए मेरे दोनों कान में मन्त्र प्रदान किया।' मन्त्र प्राप्त करते ही मैं मूर्च्छित होकर उनकी गोदी में गिर पड़ा। उसके बाद मुझे कुछ पता नहीं था। प्रायः चार दिन तक उसी दशा में पड़ा रहा। सुना था मेरे पहने हुए वस्त्रों का भी ठिकाना नहीं था। श्रीपाद ही मुझे प्रसाद पवाते थे, कोई कपड़े पहनाता था तो कोई स्नान करवा देता था। बाह्य ज्ञान मुझे था ही नहीं। स्वस्थ होने पर देखा सामने खड़े होकर श्रीपाद मंद-मंद हँस रहे थे।

मैं फिर से उन्हें पकड़ कर रोने लगा। श्रीपाद अपने हृदय से मुझे लगाकर सान्त्वना देने लगे। मेरी व्याकुलता कुछ शान्त हुई। उनकी अपार स्नेहराशि, उनकी प्रीति, मृदु-मन्द मुस्कान सब कुछ मुझे व्याकुल कर रही थी। उनको गले से लगाकर रोते-रोते मैंने कहा था, 'आपको तो मैंने बड़े भाई जैसे माना था, पर आज यह उल्टा कैसे हो गया।' तभी उन्होंने मुझसे कहा था, 'यही तो उत्तम भाव है, परन्तु मन में ही इस भाव को सजोंकर रखना, लोकदृष्टि में मान-मर्यादा करनी चाहिए।

मैंने आकर श्रीसखी माँ को भूमिष्ठ होकर दण्डवत् किया।

उन्होंने स्नेहवश मुझे अपनी गोद में भरकर दुलार करते हुए पूछा, 'क्या तुमने दीक्षा ली है ?' मैंने जाकर श्रीबिहारी काका, श्रीविजय काका, श्रीबसन्त काका व सारे गुरु भाइयों को दण्डवत् प्रणाम किया। उन दिनों श्रीपाद के संग प्रतिदिन सुबह श्रीमन्महाप्रभु, हरि सभा के गौर, निताइ बाड़ी, भजन कुटीर इत्यादि दर्शन करने जाता था। श्रीकृष्ण चैतन्य दादा महाशय मुझसे बहुत स्नेह करते थे। श्रीपाद के संग संध्या आरती के बाद मुझे प्रसाद पाने के लिए कहा। श्रीधाम नवद्वीप में श्रील बाबाजी महाशय के संग छः दिन ठहरे।

श्रीपाद कलकत्ता लौट आये। कलकत्ते में कालेज-स्क्वेयर में श्रीललितमोहन घोष नाम के एक प्रसिद्ध जमींदार रहते थे। वे एक बड़े वकील भी थे। उन्हीं के घर श्रील बाबाजी महाशय कीर्तन करेंगे, यह खबर सबको मिली। श्रीललित बाबू ने कीर्तन का विशाल आयोजन किया था। दूसरे दिन श्रीपाद के लिए गाड़ी भिजवा दी।

श्रील बाबाजी महाशय ठाकुरजी एवं खोल, करताल लिए परिकरों के संग उनके घर पहुँचे। श्रीललित बाबू ने अपनी पत्नी व परिवार के सदस्यों के साथ श्रीपाद को दण्डवत् प्रणाम किया। कीर्तन स्थल पर प्रायः एक हजार श्रोता श्रीपाद से कीर्तन सुनने आये हुए थे।

कीर्तन आरम्भ हुआ। प्रायः एक घंटा श्रीपाद ने 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण, हरे राम। यह नाम कीर्तन किया। यही नाम श्रीपाद विभिन्न सुर-ताल में कीर्तन करने लगे। श्रील बाबाजी महाशय के श्रीअंग पर अश्रु-कंप,

पुलक, हास्य आदि सात्विक भावों का विकास होने लगा। क्रमश: संकीर्तन स्थल ने रास मण्डल का आकार धारण कर लिया।

प्रत्येक श्रोता को अनुभव होने लगा। भावावेश में दर्शन होमे लगे—श्रीरासमण्डल में ब्रजगोपी श्रीकृष्ण को आलिंगन करती हुई, व श्रीश्यामसुन्दर भी अनेक स्वरूप धारण कर ब्रजगोपिकाओं को आलिंगन करते हुए नृत्य कर रहे थे। नाम व नामी अभेद हैं, तब यह अनुभव कदापि मिथ्या नहीं था। दिव्य भावों से विभोर श्रील बाबाजी महाशय ने भाव सम्वरण करके नाम महिमा कोर्तन प्रारम्भ किया।

'जप हरे कृष्ण हरे राम। कलियुगे महामंत्र', इस नाम बिना और साधन नहीं है। अद्वय-ब्रह्म श्रीनन्द नन्दन को पाने के लिए नाम बिना और साधन नहीं है—इत्यादि। वह विशाल नाम-महिमा कीर्तन पुस्तक आकार में प्रकाशित किया गया है। मैंने किंचित् दिग्दर्शन मात्र कराया है।

कीर्तन स्थली के चारों ओर मैंने अपनी दृष्टि घुमाई, देखा, कीर्तन सुनकर समस्त श्रोता रो रहे थे। मैं स्वयं भी रो रहा था। ऐसे लग रहा था मानो अश्रुओं की वर्षा हो रही थी चारों ओर। गौरवर्ण, सुन्दर, सुगठित देहधारी श्रीललित बाबू अजस्र धाराओं से अश्रुपात कर रहे थे। इतने बड़े धनी-सम्मानित व्यक्ति होते हुए भी भगवत् नाम में इतनी भक्ति देखकर मैं विस्मित हो गया। उस दिन के कीर्तन में ऐसा कोई भी न था जिसने व्याकुल क्रन्दन न किया हो। चारुदा, युगलदा,

बलाइदा, श्रीअद्वैत काका, माखनदा, शरत्दा श्रीपाद को घेर कर बैठे हुए कीर्तन कर रहे थे।

यद्यपि प्राय: ४० वर्ष पूर्व की घटनायें हैं। फिर भी मुझे चित्रवत् सब कुछ स्मरण हो रहा है। श्रीपाद के नेत्रों पर जैसे अश्रुओं की गंगा उतर आई थी। बीच-बीच में मस्तक घूर्णित व कंपित हो रहा था। श्रीअद्वैत काका अनवरत गमछे से उनके अश्रु पोंछ रहे थे। अन्त में केवल विरह का कीर्तन करने लगे—

'किछुइ देखते पेलाम ना, गौर-लीला, तार गणेर खेला, किछुइ देखते पेलाम ना। आमादेर काल-कलिर कबले फेले, तोमरा सबे कोथाय गेले!

भावार्थ—गौरसुन्दर व उनके परिकरों की लीला दर्शन से हम वंचित रह गये। हे गौर, हे गौर-भक्तगण! हमें काल रूपी कलि के ग्रास में छोड़कर कहाँ अदर्शन हो गये। वह हृदय विदारक आक्षेप, वह व्याकुलतामय कीर्तन का मैं क्या वर्णन करूँ!! कीर्तन के पाठ मात्र से ही हृदय द्रवीभूत हो जाता है। उस दिन संध्या के सात बजे से रात के बारह बजे तक कीर्तन हुआ। इन पाँच घण्टों तक सभी ने नीरव, निःस्पन्द होकर कीर्तन श्रवण करते हुए अश्रुपात किया था। कीर्तन के पश्चात् श्रीललित बाबू, श्रीनसू बाबू व ललित बाबू के भाई—श्रीकृष्ण चैतन्य बाबू श्रीपाद के निकट आकर बैठे।

नीचे गेट बन्द कर दिया गया था। सभी को प्रसाद पाकर जाने का अनुरोध किया गया। प्रसाद में सभी को पूरी-तरकारी

दी गई। भीड़ ज्यादा होने पर श्रीललित बाबू ने अपने मैनेजर को उतनी रात में भिजवाकर दुबारा घी मैदा मँगवाया। फिर से रसोई हुई, तुलसीदल से भोग निवेदन करके भक्तों को प्रसाद दिया गया। रात के एक बजे भक्तगण अपने-अपने स्थान पर लौटे। श्रीललित बाबू ने अपनी गाड़ी से श्रीपाद व उनके परिकरों को 'दर्म्महाटा' मठ पर पहुँचा दिया।

श्रीललित बाबू को मैं कभी भूल नहीं सकता। श्रीपाद के प्रति उनकी अपार श्रद्धा थी। मुझसे वे बहुत स्नेह करते थे। रथयात्रा के समय कितनी बार एक साथ रथ की रस्सी खींचते थे। गुण्डिचा मार्जन लीला में उन्हें कितनी बार व्याकुल होकर क्रन्दन करते हुए देखा था। इतने बड़े धनी होते हुए भी उन्हें बिन्दुमात्र अहंकार नहीं था।

उस समय उनकी आयु ४० वर्ष की होगी। मैं केवल १८ वर्ष का बालक मात्र था—श्रीपाद के संग-संग फिरता था, नाम करता था। श्रीपाद मुझे स्नेह करते थे—मात्र इन्हीं कारणों से वे ललित बाबू मुझ में भी श्रद्धा भक्ति करते थे, कभी-कभी वे मुझे दण्डवत् भी करते थे। मैं भी उन्हें दण्डवत् करता तो वे मुझे दैन्यवश उठाकर हाथ जोड़कर कहते, 'आप साधु-वैष्णव होकर मुझे दण्डवत् नहीं करना।' उनकी प्रीति भुलाई नहीं जा सकती।

श्रीललित बाबू पुरी धाम में 'श्रीहरिदास ठाकुर' मठ में अपने परिवार सहित प्रायः जाया करते थे। वहाँ पर श्रीगोविन्ददास बाबाजी व श्रीश्यामदास बाबाजी महाशय से सत्संग सुना करते थे। एकबार उन्होंने वहाँ के महन्त श्रीगोविंद दास बाबा के हाथ में एक हजार रुपये देकर निवेदन किया,

यदि मठ पर अनेक साधु वैष्णवों को निमन्त्रण देकर ठाकुरजी का प्रसाद उन्हें पवाया जाय तो उन्हें बहुत आनन्द प्राप्त होगा। श्रीगोविन्ददास बाबा श्रीजगन्नाथ जी के विभिन्न प्रकार के प्रसाद की व्यवस्था कर आये। आश्रम में भी बिभिन्न प्रकार की उत्तम-उत्तम भोग सामग्री प्रस्तुत की गई ! श्रीनिताइ-गौर अद्वैत प्रभु को भोग लगाकर श्रीहरिदास ठाकुर को प्रसाद समर्पण किया गया।

श्रीगोविन्द दास बाबा रसोई सेवा में बड़े ही निपुण थे। पुष्पान्न—अर्थात् घी-केसर मेवा आदि मिश्रित अन्न, परमान्न—खीर, रसगुल्ला, गुलाब जामुन आदि आश्रम पर ही तैयार किये गये सभी वस्तु अन्दाज एक हजार व्यक्तियों के लिए बनी थीं। संध्या के समय श्रीजगन्नाथ जी का प्रसाद भी आ पहुँचा। आठ बजे ठाकुरजी का भोग लग गया था। सभी को पंगत पर बिठाया गया। जो जितना माँगे यथेष्ठ दिया जा रहा था। श्रीजगन्नाथ जी का प्रसिद्ध दाल, व्यासर, मौर, कणिका प्रसाद, पनीर का रसा, विविध मिष्ठान्न के साथ रसगुल्ला, गुलाब जामुन भरपूर दिया जाने लगा।

श्रीगोविन्द दास बाबा को वैष्णवों को प्रसाद पवाने में बहुत आनन्द आता था। ललित बाबू खड़े-खड़े 'पंगत' दर्शन करके बहुत प्रसन्न हुए थे। वैष्णव पंगत के पश्चात् अपने परिवार के लोगों को साथ लेकर उन्होंने प्रसाद पाया।

अगले दिन श्रीललित बाबू ने अपनी पत्नी व पुत्र-कन्या को साथ लेकर श्रीहरिदास ठाकुर मठ में आकर श्रीगोविन्द दास बाबा व श्रीश्यामदास बाबा को दण्डवत् किया। उन्होंने

श्रीगोविन्द बाबा से कहा, 'कल वैष्णव सेवा बड़े ही सुन्दर रूप से सम्पन्न हुई। मैंने तो आपको केवल एक हजार रुपये दिये थे। आप कृपा करके बताइये मुझे और कितने रुपये देने पड़ेंगे; मैं रुपया अपने साथ लेकर आया हूँ। अवश्य ही बहुत खर्च हुआ होगा।'

श्रीगोविन्द दास बाबा हँसकर बोले, 'उन्हीं रुपयों में से ३० रुपये बचे हैं, यह लीजिए, वैष्णव सेवा का पैसा हम अपने पास नहीं रख सकते, हम तो कंगाल भिखारी हैं।' श्रीललित बाबू बड़े ही आश्चर्य चकित होकर बोले, 'एक हजार वैष्णवों को इतने सुन्दर रूप से, नाना प्रकार के प्रसाद पवाना इतने कम रुपये में कैसे सम्भव हुआ। और उनमें से भी ३० रुपये मुझे लौटा रहे हैं!'

ललित बाबू श्रीगोविन्द बाबा के व्यवहार से मुग्ध हो गये और कहने लगे, 'श्रीहरिदास ठाकुर की सेवा के निमित्त मेरे मन में एक अभिलाषा है, आप कृपा करके मुझे उनकी सेवा करने का सौभाग्य प्रदान करें।' बाबा बोले, 'यह मठ, यह ठाकुर व श्रीहरिदास ठाकुर आप लोगों के ही हैं। इस पर जैसे हमारा अधिकार है, उसी तरह आप लोगों का भी है।' श्री-ललित बाबू ने परम आनन्दित होकर एक मकान बनवाकर मठ की सेवा के निमित्त दान किया। उन दिनों उसका भाड़ा प्राय: १००) रुपये था। इसके अतिरिक्त सेवा के निमित्त अपनी स्टेट से अस्सी रु० प्रति महीना बन्दोबस्त कर दिया।

बहुत दिन हुए श्रीललित बाबू के स्वर्गबास को, परन्तु अब तक उनकी सेवा चल रही है। वह मकान अभी भी है। उनके

पुत्र श्रीगोविन्द बाबू यह सेवा करते आ रहे हैं। श्रीललित बाबू व उनकी पत्नी जयपुर से श्रीराधागोविन्द जी का विग्रह मँगवा कर बड़े ही प्रेम से सेवा किया करते थे। उनके अप्रकट के बाद वह श्रीविग्रह बराह नगर 'श्रीपाठ बाड़ी' में वैष्णवों द्वारा सेवित हो रहे हैं। श्रीहरिदास ठाकुर मठ जाने पर अब तक भी उनका गौरवर्ण सुन्दर स्वरूप मन में जागृत होता है।

एक दिन कलकत्ते में उनके घर मैं उनसे मिलने गया था। कुछ देर वार्तालाप के पश्चात् वे मुझसे कुछ सेवा स्वीकार करने के लिए बहुत ही आग्रह करने लगे—रुपया-पैसा कपड़ा जो भी हो। मैंने उनसे कहा, श्रीपाद ने कृपा करके मुझे अपने साथ रखा है, मुझे माँगने का कोई प्रयोजन ही नहीं है। फिर भी उनके बहुत जिद पर मैंने उनसे कहा, 'आपके पास महा-प्रभुजी का जो संन्यासी स्वरूप का चित्रपट है, उसी का एक छोटा संस्करण आप मुझे बनवा दें। मुझे वह स्वरूप बहुत ही प्रिय है।' उन्होंने ऐसा ही किया था। उनकी स्नेह-प्रीति कभी भुलाई नहीं जा सकती। बहुत दिनों तक यह चित्रपट मेरे पास था। खुलना निवासी श्री आर० सी० बोस की पत्नी के मुझसे वह चित्रपट माँगने पर मैंने उन्हें दे दिया।

इस प्रकार श्रीपाद के संग देश-विदेश में भ्रमण करते हुए कीर्तन आनन्द में दिन बीत रहे थे। अपना संग-सुख-सौभाग्य देकर अपने कृपाश्रय में उन्होंने मुझे रखा था। हृदय में दृढ़ धारणा बन गई थी, कि वे सदा ही हमारे संग रहेंगे, हमारे बिना वे कभी नहीं रह सकते—चिरबन्धु श्रील बाबाजी महा-शय कभी अदर्शन नहीं होंगे।

एक दिन 'दम्मोहाटा मठ' में हेतमपुर के महाराजा ने श्रील बाबाजी महाशय को नाम कीर्तन करने के लिए विनीत प्रार्थना पत्र भेजा। उन दिनों 'सिऊड़ी' जिले में 'हेतमपुर' राजा का बड़ा ही प्रभाव था। दुबराजपुर से हेतमपुर जाना पड़ता था। श्रीपाद ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की। राजा के मैनेजर ने आकर हम लोगों के लिए ट्रेन का एक पूरा कमरा रिजर्व करवा दिया। श्रीपाद के संग हम ७५ जने जा रहे थे। श्रीअद्वैत काका, फणि काका, नन्द काका, चारुदा, युगलदा, बलाइदा, तिनुदा इत्यादि बहुत भक्त संध्या के समय दुबराज-पुर पहुँचे।

'हेतमपुर' उनकी राजधानी थी। बहुत ही सुन्दर स्थान था। राजा महिमारंजन बाबू अपने 'गेस्ट हाउस' में हम लोगों की रहने की व्यवस्था करके अपनी पत्नी व दोनों पुत्रियों के साथ स्टेशन पर आये हुए थे। श्रील बाबाजी महाशय को दण्डवत् करके उन्होंने कहा, 'मेरा बड़ा ही दुर्भाग्य है, जो मुझे इसी क्षण कलकत्ता जाना पड़ रहा है। मेरी पत्नी बड़ी अस्वस्थ हो गई है। साथ-२ डाक्टरों को लेकर जाना पड़ रहा है। गाड़ी भी रिजर्व हो गई है।

आप लोगों के लिए मैंने सब बन्दोबस्त कर रखा है। आप जाकर कीर्तन करिये। वहाँ परम भागवत् एक कविराज जी भी हैं, बहुत से भक्तिमान प्रोफेसर भी हैं। मेरा दुर्भाग्य जो आपका संग लाभ न कर पाऊँगा। मेरी पत्नी की हालत बहुत खराब है।

श्रीपाद कुछ गम्भीर होकर बोले, 'हम लोग आये, और

आप चले जा रहे हो ! आप ही की प्रीति से आपके राजमहल में संकीर्तन करने आये हैं, और आप कलकत्ता चले जायेंगे। मेरा मन नहीं मानता। अच्छा, आज की रात आप और देख लीजिये, हो सके, निताइ चाँद की कृपा से आपकी पत्नी ठीक हो जाय। यदि आज रात तक ठीक न हो, तो कल चले जाना।'

श्रीपाद के कहने पर उन्होंने कलकत्ता जाना स्थगित कर दिया। परिवार सहित वे अपने घर लौट गये। हम लोगों के लिए ४ मोटरें व २० घोड़ा गाड़ियों का बन्दोबस्त किया गया था। श्रीपाद के संग उनके 'गेस्ट हाऊस' पर पहुँचे। 'गेस्ट हाऊस' बहुत बड़ा था। प्रायः दो सौ व्यक्तियों के ठहरने की जगह थी। बहुत बड़ा कम्पाउण्ड, तीन बड़े-बड़े तालाब, चारों ओर फूलों का बगीचा, खुला मैदान—वहाँ पर पहुँच कर सभी बड़े प्रसन्न हुए। हम लोगों की सेवा के निमित्त सात आठ सेवक समेत मैनेजर बाबू सदा तत्पर रहते थे।

राजा श्रीमहिमारंजन बाबू के पिता परम वैष्णव थे। उन्होंने श्रीराधागोबिन्द जी व श्रीमन्महाप्रभु जी का विग्रह प्रतिष्ठित किया था। उनकी सेवा के लिए भिन्न-भिन्न स्टेट नियुक्त कर गये थे। उन्हीं की आमदनी से श्रीविग्रह सेवा, साधु-वैष्णव सेवा सम्पन्न हुआ करती थी। वैष्णवों के ठहरने व प्रसाद पाने के निमित्त सदा ही द्वार खुला रहता था। अतः साधु-वैष्णवों का आगमन प्रायः लगा ही रहता था। संध्या आरती हो गई।

श्रीपाद के साथ रसोई के लिए मधुदादा इत्यादि चार

पुजारी ब्राह्मण आये हुए थे। श्रीफणि काका के ऊपर समस्त सेवा का भार दिया गया था। उनके आदेशानुसार समस्त आयोजन किया जा रहा था। एक कमरा पहले से ही चावल, दाल, आटा, घी, मैदा इत्यादि सामग्रियों से भरा हुआ था। ठाकुरजी का भोग लगने पर रात के बारह बजे श्रीपाद के संग हम लोगों ने प्रसाद पाया, फिर सब लोग विश्राम करने गये।

उस दिन चाँदनी रात थी। श्रील बाबाजी महाशय हाथ में माला लेकर जप करते हुए बरामदे में टहल रहे थे और एक-एकबार—जय श्रीराधारमण, जय निताइ कहकर हुँकार भर रहे थे। उनके पीछे-पीछे चारुदा, बलाइदा और मैं था सब चुप थे। श्रीपाद के गम्भीर मुखमण्डल को देखते हुए किसी को कुछ कहने का साहस नहीं हो रहा था। हठात् हम लोगों को देखकर कहने लगे, 'देखो तो; राजा महिमारंजन बाबू की प्रीति से हम लोग आये परन्तु आज हो उनकी पत्नी भीषण रूप से पीड़ित हैं। उनके जाने के लिए गाड़ी तक रिजर्व हो गयी थी। मैंने उन्हें जाने नहीं दिया, वे स्टेशन से लौट आये। देखो, ठाकुरजी क्या करते हैं!' यह कहकर वे विश्राम करने चले गये। हम लोग भी अपने-अपने स्थान पर जाकर सो गये।

प्रातःकाल प्रतिदिन के नियम अनुसार श्रीअद्वैत काका प्रभाती कीर्तन कर रहे थे। श्रील बाबाजी महाशय हाथ में मालाझोली लिये नाम जप करते हुए टहल रहे थे। उनके पीछे हम छः सात जने साथ-साथ टहल रहे थे। सुबह के सात बजे थे। इतने में देखा, कि एक मोटर गाड़ी गेट पर आकर

रुकी। राजा महिमारंजन, उनकी पत्नी, उनकी दोनों पुत्रियाँ चलकर आये और श्रीपाद को भक्तिपूर्वक दण्डवत् प्रणाम किया।

राजा श्रीमहिमारंजन कहने लगे, 'मेरी पत्नी आज सुबह अचानक पूर्ण स्वस्थ हो गईं। यह देखिये स्वयं चलकर आई और आपको दण्डवत् किया। कल तक वह शय्या पर पड़ी हुई थी। हमारे साथ तीन डाक्टर भी कलकत्ता जा रहे थे। आप के कहने पर हम लोग लौट आये थे। आज सुबह डाक्टर ने बताया उन्हें कोई बीमारी नहीं है, सम्पूर्ण स्वस्थ हैं। अवश्य ही आपकी कृपा से वह ठीक हो गई है।' यह कहते हुए राजा महिमारंजन श्रीपाद के चरण पकड़ कर रोने लगे।

श्रीपाद कहने लगे, 'यह सब निताइ चाँद की करुणा है। वे सब कुछ कर सकते हैं। उनकी इच्छा से विधाता का नियम भी बदलना सम्भव है।' राजा कहने लगे, 'मैंने निताइ चाँद को कभी देखा नहीं, आपही का दर्शन किया, आपकी ही अहैतुक करुणा से मेरी पत्नी ठीक हो गई है।' श्रील बाबाजी महाशय कहने लगे—आपने तो मेरे श्रीगुरुदेव के विषय में सुना ही होगा। हरिनाम की शक्ति से उन्होंने मृतदेह में प्राण संचार किया था, वृक्ष को नचाया था। उन्हीं से आपके निमित्त प्रार्थना की थी। उन्होंने ही आप पर कृपा की है। नहीं तो हम जैसे साधारण मनुष्य की क्या शक्ति है?

राजा महिमारंजन स्वयं श्रील बाबाजी महाशय की सेवा की देख-रेख करने लग गये। श्रीफणि काका के संग उनकी बड़ी प्रीति हो गई थी। अगले दिन श्रीराधागोविन्द जी के सन्मुख

प्रभाती कीर्तन के लिए श्रीपाद अपने परिकर के साथ पहुँचे। प्रात: छ: बजे कीर्तन प्रारम्भ हुआ। श्रीपाद के ठीक सामने राजा महिमारंजन व उनके भक्तगण बैठे थे। उनके साथ उनकी दोनों पुत्रियां भी बैठीं हुई थीं। 'चिक' के पीछे रानी व महिलायें बैठी हुई थीं। श्रील बाबाजी महाशय ने प्रभाती सुर में नाम कीर्तन प्रारम्भ किया—

श्रीकृष्ण चैतन्य जय, जय प्रभु नित्यानन्द।
प्रभु नित्यानन्द आमार, प्राण गौर चन्द्र॥

बड़ प्राणाराम एइ नाम भाई रे, बल श्रीकृष्ण-चैतन्य; ए नाम अमृत हतेओ परामृत, बड़ प्राण जुड़ान (प्राण को शीतल करने वाला) नाम भाई रे। इतना कहते ही उनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी, कण्ठ रुद्ध हो गया, पाँच मिनट तक केवल रोते ही रहे। सारे शरीर पर सात्त्विक भावों का विकास होने लगा। एक-एक आँखर की स्फुरणा के साथ विरह-व्याकुल हो रहे थे। चारुदा, बलाइदा, अद्वैत काका सभी अजस्र धाराओं से क्रन्दन कर रहे थे। राजा व उनके साथी भी रो रहे थे। एक घण्टे के बाद देखा, श्रोता मण्डली के सभी लोग रो रहे थे। 'चिक्' के पीछे बैठी हुई महिलाओं की आकुल क्रन्दन ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। राजा महिमारंजन बाबू की आँखें रो-रोकर लाल हो गई थीं।

उस दिन के कीर्तन में श्रोताओं की जो अवस्था हुई थी, वह अवर्णनीय है। वहाँ के एक प्रसिद्ध कविराज थे, उनके नेत्रों में अश्रुधारा का अन्त ही नहीं हो रहा था। रोते-रोते बीच-बीच में वे व्याकुल चीत्कार कर रहे थे। उस दिन का प्रभाती

कीर्तन दुपहर के तीन बजे समाप्त हुआ। इतने अधिक समय तक का प्रभाती कीर्तन मैंने कभी नहीं सुना था। लगातार नौ घण्टे के लम्बे समय तक श्रील बाबाजी महाशय ने एक आसन लगाये कीर्तन किया था। कीर्तन के अन्त में श्रीपाद दण्डवत् करके उठे।

राजा महिमारंजन, रानियाँ, उनके पुत्र-कन्या आदि सबने आकर श्रीपाद के चरणों में प्रणाम किया फिर मोटर गाड़ी से श्रीपाद को गेस्ट-हाउस पहुँचा दिया। थोड़ी देर बाद स्नान-आन्हिक करके प्रसाद पाने गये। उस दिन राजमहल में श्री-राधागोविन्दजी के मन्दिर में प्रसाद की व्यवस्था थी। प्रसाद पाकर प्राय: पाँच बजे श्रीपाद ने लौटकर विश्राम किया। ठाकुरजी के प्रांगण में उस दिन राजा व उनके परिवार के लोगों ने भी हमारे साथ एक संग बैठकर प्रसाद पाया—उस दिन उनके मन में तनिक भी अभिमान नहीं था।

उसी दिन संध्या के समय श्रीमन्महाप्रभु जी के सन्मुख कीर्तन होना था। श्रीपाद ने किंचित् विश्राम करने के बाद मन्दिर में आरती दर्शन किया। फिर श्रीमन्महाप्रभु के सन्मुख बैठकर नाम संकीर्तन प्रारम्भ किया। रात्रि के एक बजे तक कीर्तन हुआ। प्रसाद पाकर लौटते-लौटते ढाई बज गये। अगले दिन प्रात: राजा ने आकर श्रीपाद से निवेदन किया—उसी दिन से २४ प्रहर अर्थात् तीन दिवसीय अखण्ड नाम-संकीर्तन करने का। श्रील बाबाजी महाशय ने श्रीमन्महाप्रभु जी के मन्दिर में हरिनाम संकीर्तन करने का निश्चय किया।

श्रीपाद ने श्रीनरोत्तम काकाजी के ऊपर नाम यज्ञ की

व्यवस्था का भार अर्पण किया। सारी व्यवस्था हो जाने पर संध्या के समय आरती के पश्चात् श्रीपाद अधिवास कीर्तन करने लगे। महाप्रभुजी का मन्दिर उस दिन भारी जनता से पूर्ण हो गया था। श्रील बाबाजी महाशय की आगमन वार्ता चारों ओर फैल गई थी।

अत: दूर-दूर के शहर व गांव से कितने ही भक्त, वैष्णव-महाजनों का आगमन हो रहा था। महिमारंजन बाबू ने अपने मैनेजर को निर्देश दे दिया था—कि श्रील बाबाजी महाशय जब तक वहाँ अवस्थान करेंगे, तब तक जितने भी लोग आयेंगे उनकी रहने व प्रसाद की व्यवस्था की जायेगी।

रात के एक बजे तक अधिवास कीर्तन करके श्रीपाद खड़े होकर 'भज निताइ गौर राधे श्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' —यह नाम कीर्तन करने लगे। गगनभेदी नामध्वनि उठने लगी। मातन कीर्तन के साथ अपरूप नृत्य प्रारम्भ हो गया। श्रीपाद के नृत्य के साथ सभी ने नृत्य करना आरम्भ कर दिया। रात्रि के दो बजे कीर्तन समाप्त हुआ। प्रसाद पाकर जब विश्राम करने गये तो भोर हो गया था। शौचादि के बाद प्रभाती सुर में श्रील बाबाजी महाशय ने नाम प्रारम्भ किया। उनके मधुमय कण्ठ स्वर के आकर्षण से सभी ने आकर नाम संकीर्तन में योगदान किया।

क्रमश: नाम कीर्तन में बहुत आनन्द वृद्धि होने लगी। प्रतिदिन संध्या के समय श्रील बाबाजी महाशय आकर नाम कीर्तन करने बैठते थे और रात्रि के एक-दो बजे तक कीर्तन करते थे। इसी प्रकार तीन दिन का अखण्ड नाम चलने के

बाद नगर संकीर्तन का आयोजन किया गया। उस विशाल नगर कीर्तन में निशान (पताका), खुन्ति, चाँदी के सुन्दर-सुन्दर छत्र के साथ राजाओं के बहुत से हाथी भी चलने लगे। समग्र हेतमपुर भ्रमण करते हुए श्रील बाबाजी महाशय ने अपूर्व पद-पदावलियों का गान किया।

राजमहल के सम्मुख आकर रानियों की प्रार्थना पर 'धवल पाटेर जोड़ परेछे, रांगा रांगा पाइ दियेछे' लोचन दास के इस पद का कीर्तन किया। इस प्रकार नगर-नगर भ्रमण करते हुए प्राय: ढाई बजे श्रीमन्महाप्रभु जी के मन्दिर में लौट आये और 'नगर भ्रमिये आमार गौर एल घरे, गौर एल घरे आमार निताइ एल घरे' इत्यादि 'लूट' कीर्तन व हरिबोल ध्वनि से तीन बजे नाम समाप्त किया। स्नान-आन्हिक के पश्चात् प्रसाद पाकर सभी ने विश्राम किया।

'कीर्तन आनन्द में लगातार कई दिनों से परिश्रम हुआ है अत: कृपा करके कुछ दिन विश्राम के पश्चात् प्रत्यावर्तन करें' राजा महिमारंजन ने श्रीपाद के चरणों में विनीत प्रार्थना की। उनके अनुरोध पर श्रीपाद के संग हम लोग और तीन दिन हेतमपुर ठहरे थे। महिमारंजन बाबू ने श्रीपाद को संग लेकर दुबराजपुर की पहाड़ी पर उनके बहुत से फोटोग्राफ लिए। उनमें से एक फोटो मैंने देखा था— फोटो में श्रील बाबा जी महाशय के साथ चारुदा, मुलदा व मैं खड़ा हुआ था।

कुछ दिनों के पश्चात् राजा महिमारंजन व उनकी दोनों पुत्रियों ने श्रीपाद से दीक्षा ग्रहण की थी। महिमारंजन बाबू तब से श्रीपाद का संग सुख छोड़ना ही नहीं चाहते थे। सिऊड़ी

स्थित उनकी राजबाड़ी में एकबार श्रीपाद परिकरों के संग गए थे। वहाँ पर निमाइ बाबू नाम का एक लड़का प्रायः उड़िया भाषा में गीत सुनाया करता था, उसका कण्ठस्वर बहुत ही सुन्दर था। उड़ीसा राज्य के किसी जमींदार के बेटे थे वे।

इन्हीं दिनों 'रायसाहब' अघोरनाथ मुखर्जी के पुत्र श्रीभवानन्द मुखर्जी ने आकर श्रीपाद का दर्शन किया। वह मेरा पूर्व परिचित था, आजकल वह पटना हाईकोर्ट में वकालत करता है। श्रीपाद की कृपा से उसका भक्त जीवन बना है। सिऊड़ी में एक दिन रहकर श्रीपाद श्रीधाम नवद्वीप चले आये, महिमारंजन बाबू भी अपनी कन्याओं को लेकर हमारे साथ ही आये।

'समाजबाड़ी' मठ दर्शन करके राजा आनन्द विभोर हो गये, प्रतिदिन प्रातः व संध्या के समय भक्तों के संग नाम कीर्तन मन्दिर परिक्रमा, आरती दर्शन इत्यादि किया करते थे। श्रीसखी माँ, श्रीगोवर्धन काकाजी को अत्यधिक प्रीति लाभ की उन्होंने। श्रीधाम नवद्वीप वास करने की तीव्र आकांक्षा जगने पर मठ के सामने ही एक भवन निर्माण कराकर उसी में रहने लगे। एक धर्मशाला भी बनवा दिया था।

धाम वास करते हुए कभी-कभी हेतमपुर हो आते थे। नित्य धाम में गये हुए उन्हें बहुत दिन हो गये हैं परन्तु उनकी स्मृति अब तक मन में जागृत है। उनकी दोनों कन्यायें अब तक जीवित हैं व भजन-साधन में अपना जीवन व्यतीत कर

रही हैं। श्रील बाबाजी महाशय श्रीधाम नवद्वीप में दो दिन रहकर सपरिकर कलकत्ता 'दर्म्महाटा' मठ में चले आये। इस मठ की सेवा—६०) रु० प्रति माह भाड़ा द्वारा श्रीमहिमा-रंजन बाबू स्वेच्छापूर्वक बहुत दिनों तक करते थे। प्रायः अठा-रह वर्ष पर्यन्त श्रीपाद ने इसी मठ में अवस्थान किया था। उसके बाद वे 'पोस्ता' राजवाड़ी चले गये थे। वहीं से उनका हरिनाम प्रचार होता था। राजा के कलकत्ता आने पर जहाँ भी श्रीपाद कीर्तन करते थे, वैष्णव-सेवा किया करते थे।

श्रीपाद कलकत्ता चले गये। मैं कुछ अस्वस्थ होने पर 'समाजबाड़ी' आश्रम में ही रह गया। श्रीपाद ने मुझे ठीक हो जाने पर कलकता आ जाने के लिए कहा। श्रीधाम नवद्वीप में मेरे पूर्व परिचित श्रीहजारीलाल मुखर्जी—पुलिस इन्सपेक्टर से मिलकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। वे श्रीमती सखो माँ की बहुत श्रद्धा-भक्ति किया करते थे। वे प्रायः समय पर आश्रम में आया करते थे; सखी माँ को 'दीदी' सम्बोधन किया करते थे। 'यशोहर टाउन' में (बंगला देश) श्रद्धेय श्रीयदुनाथ मजूमदार महाशय के आमन्त्रण पर जब श्रील बाबाजी महाशय कीर्तन करने गये थे तब श्रीहजारी बाबू वहाँ के पुलिस-इन्सपेक्टर थे।

इन दिनों उनकी बदली श्रीनवद्वीप में हुई थी। पुलिस का कार्य करते हुए भो वे बड़े ही सात्विक ब्राह्मण थे। घर पर शालग्राम व गोपालजी की सेवा थी। अब तक उनका ठाकुर मन्दिर नवद्वीप में है। उनकी चारों कन्यायें—दुर्गा, पचोन, बुलू व शिबू पिता जैसी परम भक्तिमती थीं। श्रीधाम में हजारी बाबू का संग-सुख पाकर मैं बहुत आनन्दित हुआ।

एक दिन सुबह एक अनोखी घटना घट गई—प्रख्यात श्रीविश्वानन्द स्वामी आठ-दस संगी लिए हमारे 'समाजबाड़ी' मठ में उहस्थित हुए। अपने प्रभाव से उन्होने विख्यात 'शिव-धाम' श्रीतारकेश्वर के महान्त को गद्दी से हटाया था। नवद्वीप धाम में श्रीमती सखी माँ का प्रभाव सुनकर आये हुए थे। उन्होंने सुना था—एक सुन्दर युवा पुरुष, महिलाओं जैसे चोली लहंगा, ओढ़नी पहन कर, अपूर्व स्वर्ण अलंकार, नक-वेसर धारण किये, हाथों में तुलसी के कंगन पहन कर रहते हैं। बड़े-बड़े घर की बहू-बेटी उनके संग उठती बैठती हैं और वे उत्तम से उत्तम वस्तुओं का भोग लगाते हैं इत्यादि।

बहुत दिन पहले 'श्रीधाम पुरी' में जयगोपाल नाम का एक प्रबल उच्च संस्कारी ब्राह्मण बालक श्रीबड़े बाबा के (श्रीराधा-रमण चरणदास बाबाजी) कृपाश्रय प्राप्त करते हुए झाँझपीटा मठ में श्रीराधारमण जी की सेवा किया करता था। गुरु, वैष्णवों की कृपा व आनुगत्य से उसे युगल सेवा में दृढ़ निष्ठा व प्रीति हो गई थी। एक दिवस श्रीबड़े बाबा ठाकुरजी के सन्मुख विविध लीलाओं का गान-कीर्तन कर रहे थे। जयगोपाल व अन्यान्य बालक कीर्तन के भाव अनुसार गोपी वेश धारण किये युगल सरकार की सेवा में तल्लीन हो गये थे।

'जयगोपाल' ललिता सखी के रूप में सेवारत थे। उसी भाव में वह आविष्ट होकर ठाकुरजी के चरणों में मूर्छित होकर गिर पड़ा। कीर्तन समाप्त हो गया। मूर्छा भंग होने पर भी जयगोपाल वेश परिवर्तन करने में असफल रहा। बड़े बाबा ने उसे वेश परिवर्तन कराने की बहुत चेष्टा की परन्तु उसे तो

अपनी पूर्वावस्था की विस्मृति हो गई थी। तभी से श्रीजगन्नाथ जी ने अपने पुजारी से अपनी प्रसादी साड़ी भिजवाकर जयगोपाल को गोपी रूप में स्वीकार किया व श्रीबड़े बाबा को प्रत्यक्ष आदेश भी दिया।

उसी दिन से जयगोपाल ललिता सखी के नाम से जाना जाने लगा। वे सर्वदा ललिताजी के आवेश में रहती थीं। महिलायें उनके निकट निःसंकोच होकर भगवद्-प्रसंग किया करती थीं। बहुत लोग उनके प्रति श्रद्धाभक्ति करते थे। देश-विदेशों से प्रतिदिन हजारों लोग उनके दर्शन करने आते थे। समग्र भारत में उनकी प्रसिद्धि हो गई थी। जगत् में दुष्टों की संख्या भी कम नहीं। ऐसे ही कुछ लोगों ने जाकर स्वामी विश्वानन्द के पास श्रीललिता सखी की निन्दा करी थी।

मनुष्य अधिकतर किसी के गुणों का आदर न करके उसकी निन्दा में ही अधिक रुचि लेता है। वह अपने जैसा दूसरों को समझता है। प्रकृत साधु सभी को साधु और असाधु व्यक्ति सभी को असाधु समझा करता है। कृष्ण-बहिर्मुख जीव भक्त की निन्दा श्रवण करके भक्त को शासन करने में भी संकोच नहीं करता।

एकबार श्रील बाबाजी महाशय से सुना था— स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने एक दिन दुर्योधन को एक साधु एवं युधिष्ठिर को एक असाधु व्यक्ति उनके सन्मुख उपस्थित करने को कहा। दिन भर चेष्टा करने पर भी दोनों ही असफल रहे कारण, दुर्योधन की दृष्टि में सभी व्यक्ति असाधु थे एवं युधिष्ठिर को सभी साधु लगते थे। वैसे ही दो चार निन्दकों से श्रीललिता

सखी जी के विषय में सुनकर स्वामी विश्वानन्द क्रोधित होकर श्रीधाम नवद्वीप पहुँचे। उन्हें शासन करने के लिये। आश्रम पर पहुँच कर स्वामी विश्वानन्द ने मुझसे पूछा—'कहाँ है वह।'

मैंने बताया 'सखी माँ (ललिता सखी) ऊपर भजन कर रही हैं। स्वामी ने व्यंग करते हुए कहा—'भजन कर रहे हैं—पाखण्ड', और अपने पाँच छः साथियों के साथ ऊपर चले गये। मैं उनके व्यवहार से बहुत ही आश्चर्य चकित हुआ और उनके पीछे-पीछे ऊपर पहुँचा। श्रीललिता सखी माँ छत पर करमाला जपतीं हुई टहल रही थीं। उन्हें देखते ही विश्वानन्द प्रचण्ड क्रोधित होकर उनके सन्मुख उपस्थित हुआ।

श्रीसखी माँ ने विश्वानन्द को साधु के वेश में देखकर उन्हें भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। वे उनके आने का उद्देश्य नहीं जानती थीं। स्वामी व्यंग करते हुए सखी माँ से कहने लगा 'औरतों को भुलाने के लिये क्या जनाना-ठाठ बना रखा है !!' सखी माँ हाथ जोड़कर केवल 'जय गुरु जय गुरु' उच्चारण कर रही थीं। उतारो, इन कपड़ों को और साधु के वेश में रहो। लहंगा, ओढ़नी चोली पहन कर लड़कियों को भुला रहा है। अब यह सब नहीं चलेगा। मैं विश्वानन्द हूँ, 'तारकेश्वर' के महान्त को भी मैंने भगाया है, तुम्हें भी मजा चखाऊँगा। उतारो कपड़े, नहीं तो मैं छीन लूँगा तुम्हारे ? ओढ़नी-चोली। श्रीललिता सखी माँ उनके यह अहंकार-पूर्ण शासन वचन सुनकर उनसे बिना कुछ कहे 'जय गुरु, जय गुरु' करती हुई पीछे हटने लगीं।

उधर सारे नवद्वीप में प्रचार हो गया था कि विश्वानन्द 'सखी माँ पर शासन जमाने आया' है। हजारी बाबू पुलिस इन्स्पेक्टर नौ-दस सिपाही लेकर अकस्मात् आश्रम पर पहुँचे। बाहर का फाटक बन्द करवाकर विश्वानन्द को खोजते हुए ऊपर पहुँचे। उन्होंने देखा विश्वानन्द तर्जन गर्जन करते हुए सखी माँ की ओर बढ़ रहा था और सखी माँ पीछे हटती हुई छत के किनारे पर आ पहुँची थी। उनके मन में था, यदि विश्वानन्द उन्हें स्पर्श करे और बलपूर्वक उनके वस्त्र उतारे तो वे 'जय गुरु, जय गुरु' करतीं हुई छत से नीचे कूदकर अपना प्राण त्याग देंगी। इसी क्षण की प्रतीक्षा में थीं वे।

विश्वनाथ चीत्कार कर रहा था, 'ओढ़नी-चोली खींच लूँगा मैं।' उसी समय आवाज आई,'खबरदार ! विश्वनाथ !' विश्वनाथ ने मुड़कर देखा, हाथ में रिवाल्वर लिए पुलिस इन्सपेक्टर व सशस्त्र राइफलधारी सिपाही। 'तेरी यह हिम्मत ! तेरी दवाई तो मेरे पास है' कहते हुए हजारी बाबू ने हाथ में रिवाल्वर लिये दूसरे हाथ से बिश्वनाथ को पकड़ लिया और सिपाहियों को उसे पकड़ कर नीचे ले जाने के लिये हुक्म दिया। सबके साथ सखी माँ भी नीचे उतर आयीं।

उधर फाटक के बाहर लोगों की भीड़ जमा हो गई थी। उनमें से कुछ बलवान युवक लाठी लेकर चिल्ला रहे थे, 'फाटक खोलो, हमारी सखी माँ का अपमान करने आया है विश्वानन्द, हम उसे मजा चखा देंगे।' इत्यादि। हजारी बाबू बोले कि उसे 'थाने' ले जायेंगे। बिश्वानन्द मुँह लटकाये खड़ा था श्रीललिता सखी माँ ने देखकर कहा, 'हजारी ! यदि आपने

मुझे एक दिन भी प्रीति की हो तो आप इन्हें इसी क्षण मुक्त कर दें। यह हमारे आश्रम में अतिथि हैं।'

सखी माँ का आदेश उल्लंघन करने की सामर्थ किसी में न थी। 'अच्छा' कहकर हजारी बाबू ने उनके हाथ खोल दिये। सखी माँ विश्वानन्द को एक आसन पर बैठकर पंखा लिए स्वयं हवा करने लगीं। उधर फाटक के बाहर बहुत शोरगुल हो रहा था। सखी माँ के निर्देश पर हजारी बाबू ने जाकर उन्हें शान्त किया। फाटक खोलने पर जनता भीतर आकर अवाक् रह गई।

सखी माँ, उन लोगों के हाथ में लाठी देखकर, उनके मन के भाव को जान गई थीं। उन्हीं के निर्देश पर स्वामी के आगे बालभोग का प्रसाद रखा गया। श्रीललिता सखी माँ ने उनसे प्रसाद पाने को प्रार्थना करने पर स्वामी बिना कुछ कहे प्रसाद पाने लगा। पंखा करती हुई श्रीललिता सखीजी स्वामी से मधुर स्वर में कहने लगीं—'बाबा प्रसाद पाकर आप कृपा करके स्टेशन चले जाना और किसी गाड़ी से अन्य स्थान को चले जाना। आप यहाँ की अवस्था तो देख ही रहे हैं। यहाँ पर भी बहुत से दुष्ट लोग रहते हैं, जिन्हें मुझसे प्रेम है, वह देखिये सब खड़े हैं। आप कृपा करके आये हैं, परन्तु मुझसे आपकी कोई सेवा न बन पाई। मुझे डर है उन लोगों से आप को कोई क्षति न पहुँचे।

सखी माँ के निर्देश पर पुलिस इन्सपेक्टर हजारी बाबू ने स्वयं अपने साथ विश्वानन्द को स्टेशन ले जाकर गाड़ी से

भज निताई गौर राधेश्याम ।
जप हरे कृष्ण हरे राम ॥

मूल-लेखक
परमपूज्य श्रीश्रीजीवनकृष्ण ब्रह्मचारी महाराज

रवाना कर दिया। जाने से पहले सखी माँ ने विश्वानन्द को फाटक तक पहुँचा कर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीललिता सखी माँ के इस विनम्र व्यवहार से विश्वानन्द को आँखों में आँसू आ गये।

श्रीललिता सखी माँ की क्षमा-शक्ति व उनकी सहनशीलता को देखकर लोग चमत्कृत रह गये थे। कई दिनों तक सारे नवद्वीप में इस घटना की चर्चा चलती रही। शत्रुभावापन्न व्यक्ति के प्रति भी उनका सदय व्यवहार आज तक मेरे हृदय में जागरूक है। कुछ दिनों के बाद मैं स्वस्थ होकर श्रील बाबाजी महाशय के निकट कलकत्ता चला गया। वहाँ पहुँच कर सुना कि श्रीपाद बराकर, धनबाद, गिरिडि, देओधर, काशी, लखनऊ होते हुए कानपुर कीर्तन करने जायेंगे।

दो दिन के बाद श्रीपाद ने परिकरों के संग यात्रा प्रारम्भ की। कृपा करके उन्होंने मुझे भी अपने साथ ले लिया। श्रीपाद के संग हम परमानन्द से बेराकर आ पहुँचे। वहाँ श्रीनरहरि सरकार ठाकुर के वंशज परम भागवत श्रीनवीन ठाकुर महाशय रहते थे। वे बहुत बड़े सरकारी अफसर थे। उन्हीं के आमन्त्रण पर श्रीपाद वहाँ कीर्तन करने गये थे। सुपरिन्टेन्डेन्ट के घर भी नाम संकीर्तन हुआ। वहाँ के निवासी कीर्तन आनन्द में विभोर हो गये।

उन दिनों भारत के श्रेष्ठ मृदंग वादक श्रीकिंकर काका का, मृदंग वादन, श्रीपाद के मधुकण्ठ स्वर से भगवद्-नाम-कीर्तन, भक्तों की मधुर नृत्य छन्द ने आनन्द-विभोर कर दिया था वहाँ के लोगों को। बहुत उच्च शिक्षित व्यक्ति भी कीर्तन में नृत्य

कर रहे थे। संध्या से रात के नौ बजे तक नाम-संकीर्तन करके बारह बजे तक श्रीनित्यानन्द गुण कीर्तन किया श्रीपाद ने। अगले दिन नगर कीर्तन के पश्चात् नाम-यज्ञ समाप्त हुआ।

उसी दिन संध्या के समय 'धनबाद' पहुँचे। वहाँ पर कीर्तन का विशाल आयोजन किया गया था। वहाँ के अनेक गणमान्य, धनी शिक्षित समाज आये हुए थे कीर्तन सुनने। खूब कीर्तन आनन्द हुआ। नाम महिमा कीर्तन के पश्चात् 'भज निताइ गौर राधेश्माम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम पर अद्भुत नृत्य कीर्तन हुआ था।

अगले दिन श्रील बाबाजी महाशय प्रवीण डाक्टर प्रताप बाबू के आमन्त्रण पर गिरिडि पहुँचे। श्रीपाद के संग श्रीकिंकर काका, युगलदा, दिनेश काका, तिनुदा, विश्वरूपदा, कृष्णकमल दा, बलाइदा, जानकी, शशीदा, पशुपतिदा, भगवानदा, रमण दा (दोनों), हरेकृष्णदा, चारुदा, मदनदा, श्रीराधाचरणदा इत्यादि हम लोग प्रायः २० जने थे। संध्या के समय गिरिडि पहुँचे। आरती कीर्तन के बाद श्रीपाद बैठे थे। श्रीप्रमथनाथ महामहोपाध्याय-तर्कतीर्थ महाशय श्रीपाद के दर्शन करने आये थे। वे भारत के अद्वितीय विद्वान् थे।

श्रीपाद ने उन्हें भूमिष्ठ होकर दण्डवत् किया। वे श्रीपाद से कहने लगे, 'मैं कुछ दिनों से यहाँ आया हुआ हूँ। आपके आगमन की वार्ता मैंने सुनी। कदाचित् अब आपके श्रीमुख से नामकीर्तन सुनने का सौभाग्य प्राप्त होगा।' रात के साढ़े नौ बज गये थे। श्रीपाद ने उन्हें अगले दिन प्रभाती कीर्तन पर आमन्त्रित किया। उसी दिन श्रीद्विजपद गोस्वामी नामका एक

एक बालक, आयु सत्रह-अठारह की होगी, ने आकर श्रीपाद को प्रणाम किया। श्रीभोलागिरि महाराज के शिष्य होते हुए भी मन ही मन वे श्रील बाबाजी महाशय के प्रति अत्यन्त प्रीति-भक्ति करते थे। श्रीपाद की महिमा श्रवण कर बहुत ही प्रभावित हुए थे। उनसे शिला को भी द्रवीभूत कराने वाला कीर्तन सुनने व दर्शन के निमित्त व्याकुल होकर आये थे।

उस बार चारुदा ने श्रीपाद का निरन्तर संग प्राप्ति के कारण अपने कार्यालय से एक महीने की छुट्टी ली थी। बलाइ दा, युगलदा, अद्वैत काका व चारुदा—चारों श्रीपाद के प्रधान संगी थे कीर्तन के। सभी का अपूर्व तेजोद्दीप्त कण्ठ स्वर था—श्रीपाद उन्हें अपने दाँये-बाँये रखकर कीर्तन करते थे। उनके बिना उन्हें कीर्तन में आनन्द नहीं आता था। और युगलदा व चारुदा के संग श्रीपाद की सख्य प्रीति थी। दास भाव से सख्य भाव अधिक मधुर होता है—हास-परिहास सर्वदा चलता ही रहता था। श्रील बाबाजी महाशय कीर्तन के समय तो केवल क्रन्दन ही करते रहते थे, अधिकतर समय पुलक, हुँकार, वैवर्ण आदि सात्त्विक भावों से विभूषित रहते थे। अतः श्रीअद्वैत काका व चारुदा हास परिहास करते हुए उन्हें प्रफुल्लित रखने की चेष्टा करते थे। परिहास-प्रिय डाक्टर प्रताप बाबू के साथ चारुदा की खूब मित्रता हो गई थी।

रात के ग्यारह बजे सब लोग प्रसाद पाकर जब उठने लगे तो प्रताप बाबू चारुदा व श्रीपाद से हाथ जोड़कर कहने लगे, 'आप लोगों की सेवा के निमित्त सारा दिन बहुत परिश्रम करना पड़ा। खून पसीना एक कर दिन भर मूली, कद्दू, थोड़

ढूँढ़-ढूँढ़ कर लाया हूँ। आप लोगों के कृपा करने पर ही मेरा परिश्रम सार्थक हुआ है।' उनकी बात पर सभी हँसने लगे। चारुदा बोल उठे—

'इस दूर देश में हँसने के लिए कोई तो मिला। कल से तो श्रील बाबाजी महाशय का कीर्तन और रोना ही रोना आरम्भ होगा। साधारण रोना नहीं, हा निताइ, हा गौर, दर्शन दो इत्यादि हृदय विदारक आर्तनाद करेंगे। उनके कीर्तन का सार तो यही है। केवल स्वयं क्रन्दन करें, तो भी अलग बात, पर बाल-वृद्ध, नारी पुरुष सभी रोने लगते हैं। पर उनके क्रन्दनरत श्रीमुख के दर्शन बिना रह भी नहीं सकता और हँसने-हँसाने के लिए भी कोई नहीं मिलता। चलो आज आप जैसा एकरत्न तो मिला, खूब जमेगी।'

इसी प्रकार हास-परिहास का आनन्द लेते हुए सभी विश्राम करने चले गये। श्रील बाबाजी महाशय प्रातःकाल खोल-करताल सहित कीर्तन करने बैठे। उन्हें घेरकर चारुदा, बलाइदा, अद्वैत काका बैठे, उनके पीछे हम सब बैठे थे। कर-ताल हाथ में लिए श्रीपाद दण्डवत् कर रहे थे; इतने में श्री-प्रमथनाथ तर्कभूषण महामहोपाध्याय जी आकर उनके सन्मुख बैठे।

श्रील बाबाजी महाशय ने कीर्तन प्रारम्भ किया—

श्रीकृष्णचैतन्य जय, जय प्रभु नित्यानन्द।
बड़ प्राण जुड़ान नाम भाई रे, जय जय श्रीकृष्णचैतन्य,
बड़ प्राणाराम नाम भाई रे, प्राण भरे गाओ भाई रे,

आमार गौरांग नाम अमिया धाम, नामेर प्रतिवण पूर्णामृत,
अमृत हतेओ परामृत, आमार गौरांग नाम अमिया धाम;
जय श्रीकृष्ण चैतन्य—गंगाजल तुलसी दिये,अनशने हा कृष्ण
बले केंदे, केंदे, सीतानाथेर आनानिधि ।।

इतना कहते ही श्रीपाद अश्रु धाराओं से सिंचित होने लगे, सात्त्विक भावों ने उन्हें घेर लिया। देखा श्रीप्रमथनाथ तर्कभूषण महाशय भी क्रन्दन कर रहे थे। श्रीपाद पुनः कीर्तन करने लगे, 'श्रीकृष्ण चैतन्य।'

नदीया विनोदिया, प्राण शची दुलालिया,
श्रीवास अंगनेर नाटुआ, कीर्तन केलिरस विनोदिया;
आमार रसराज गौरांगनट, संकीर्तन सुलम्पट,
गौर आमार गदाधरेर प्राण बंधूआ, संकीर्तन रास-रसिया;
नरहरिर चितचोर, रसमय गौर किशोर;
श्रीसनातनेर गति,सर्वतत्वेर अवधि, महाभाव प्रेमरसवारिधि
श्रीरूप हृत्केतन, महाभाव प्रेम रसघन;

कीर्तन करते-करते श्रीपाद भाव विभावित हो गये। मस्तक घूर्णित होने पर चारों ओर उनका नेत्र जल छिटकने लगा। चारों ओर श्रोतागण निस्तब्ध होकर कीर्तन सुधा पान करते हुए श्रीपाद के अभिरमणीय मुखमण्डल का दर्शन कर रहे थे। श्रीप्रमथनाथ महाशय एक-एकबार 'बलिहार-बलिहार' कहते हुए अश्रु पौंछ रहे थे। श्रीपाद पुनः कीर्तन करने लगे—

आमार सोनार गौरांग प्रभू, दास रघुनाथेर साधनेर धन; लोकनाथेर हृदबिहारी, नदीया ब्रिहारी गौरहरि; गोपाल भट्टेर प्राण गोरा, काबेरी तीर बिहारी, श्रीरंगक्षेत्र विलासी,

प्रकाशानन्देर परमानन्द; मायावादी मर्दनकारी, प्रकाशानन्देर नयनानन्द; सार्वभौमेर चैतन्यदाता, आत्माराम श्लोक व्याख्याता; राजा प्रतापरुद्र र त्राणकारी, षड़भुजधारी गौर-हरि, अमोघेर प्राणदाता गौर मुरति, अमोघेर प्राणदाता औदार्य मूरति स्वरूपेर, सरवस्व, विंशति भाव विवश; गम्भी-रार गुप्तनिधि, महाभावे विभावित निरवधि; रामरायेर चित-चोर, रसमय प्राण गौरकिशोर; राधाभावे सदाइ विभोर, रामरायेर चितचोर; युगल उज्ज्वल रस निर्यास मूरति, महा-भाव प्रेमरस घनाकृति; नित्य मिलने नित्य विरह, विलास विवर्त मूरति; मूरतिमन्त प्रेमवैचित्र्य, मिलने दूइ रसेर खेला, निगुढ़ गौर लीला; राइ-कानु एकाकृति, विलास विवर्त मूरति; आमार प्राण राधारमणेर आस मिटान मूरति रे !

कीर्तन के माध्यम से श्रीमन्महाप्रभु की लीला व तत्व सिद्धान्त स्थापित करते हुए श्रील बाबाजी महाशय अपूर्व भाव विभोर होने लगे। पाठक चाहे तो उनका 'प्रभाती-कीर्तन' पाठ करके जीवन धन्य कर सकते हैं। श्रीपाद के सेवक श्रीगोपाल दास व श्रीव्रजगोपाल दास ने बहुत परिश्रम करके उन्हें पुस्तक आकारमें छपवाया है।

कुछ देर बाद श्रीपाद 'आमार पाषाण गलान गोरा, प्रभु निताइ पागल करा' गाते-गाते उच्चस्वर से बालकवत् व्याकुल क्रन्दन करने लगे। उस हृदयविदारक क्रन्दन के दृश्य को दर्शन करने का सौभाग्य जिन्हें प्राप्त हुआ है वे जानते हैं उस विलाप में कितनी व्यथा, कितना दर्द भरा हुआ था। प्रातः छः बजे तक कीर्तन हुआ। श्रीप्रमथनाथ तर्कभूषण महाशय कीर्तन के

बाद श्रीपाद को आलिगन करते हुए कहने लगे, 'आज मैं धन्य हो गया, चिर कृतार्थ हो गया। मेरी विद्या का अभिमान चूर-चूर हो गया। आपने कीर्तन में समस्त शास्त्रों का सार श्रवण कराया। धिक्कार है मुझे अपनी विद्या अभिमान पर।' इत्यादि कितने ही प्रकार से स्तुति करने लगे।

श्रीपाद मौन धारण किये हाथ जोड़कर खड़े रहे। सभी लोग विश्राम करने लगे। श्रीपाद गौर विरह व्यथा से व्यथित हृदय—उदास बैठे हुए थे। चारुदा उनके सन्मुख आ पहुँचे। अनवरत छः घण्टे से श्रीपाद को क्रन्दनरत दर्शन करके उनका हृदय भी अप्रसन्न व अस्वच्छन्द हो उठा था। परन्तु श्रीपाद की उदासी भंग नहीं कर पाये। श्रीपाद स्नान करने चले गये।

किसी व्यक्ति का एक बहुत सुन्दर तालाब था। वहीं पर हम लोग स्नान करने गये थे। श्रीपाद स्नान करके निकले तो देखा चारुदा अपनी दोनों उंगली से किसी वस्तु को पकड़े बार बार उसे अपने मस्तक व वक्षस्थल पर बड़े ही भक्तिपूर्वक स्पर्श करा रहे थे। श्रीपाद ने कौतुहलवश पूछा, 'क्या बात है चारु, इतनी भक्ति किसे कर रहे हो?' चारुदा बोल उठे, 'आज मुझे किसी अमूल्य वस्तु की प्राप्ति हुई है। इतने दिनों से आपका संग लाभ करने पर भी आज ही मेरा भाग्य धन्य हो गया।'

मैंने सोचा चारुदा आज के कीर्तन के विषय में कुछ इंगित कर रहे हैं। पर ऐसा नहीं। चारुदा कुछ गम्भीर होकर कहने लगे, 'स्वरूप, नाम, श्रीअंग, श्रीअंग की वस्तु सभी चिन्मय,

अप्राकृत होते हैं। आज मुझे आपके चिन्मय श्रीअंग को एक चिन्मय वस्तु की प्राप्ति हुई है। तभी मैं उसे बार-बार अपने मस्तक व वक्षस्थल से स्पर्श करा रहा था। इसे मैं एक सोने के ताबीजमें भरकर गलेमें लटकाये रखूँगा।' श्रीपाद ने उत्सुकता से पूछा, 'वह वस्तु क्या है, यह तो बताओ ?' 'आपके श्रीअंग के रोमावली में से एक रोम आपके वस्त्र पर लगा हुआ था, वही मुझे प्राप्त हुआ है,' 'चारुदा' ने उत्तर दिया। सुनकर सभी उच्चस्वर से हँसने लगे।

डाक्टर प्रताप बाबू कहने लगे, 'शाबाश ! चारुदा, बलिहारी, आपकी निष्ठा व अनुभव शक्ति ! पूजा-आन्हिक के बाद सभी प्रसाद पाने बैठे श्रीपाद के संग। उस दिन डाक्टर बाबू भी हम लोगों के संग पंगत में बैठे थे—कहने लगे, 'चारुदा मैं पहले शक्ति की उपासना करता था। बीस वर्ष की आयु से लेकर पचास वर्ष तक उसकी उपासना करते-करते कमर टूट गई—'अंग गलितं, पलितं मुण्डम्' दशा हो गई है। पर माँ की कृपा नहीं मिली।

आप लोगों का संग पाकर आजकल मैं वैष्णव बनने चला। पहले भी रोया करता था। पर शक्ति की यन्त्रणा से। 'शक्ति' मुझसे विदा लेकर चली गई है। आजकल शक्तिमान् की उपासना करके धन्य हो रहा हूँ।' डाक्टर बाबू का पत्नी वियोग हो चुका था। उनका रहस्यमयी आलाप सुनकर सभी मृदुमन्द हँसने लगे। चारुदा उल्लासित होकर बोल उठे, 'डाक्टर बाबू, आपकी यह गम्भीर तत्व-मीमांसा सुनकर मैंने आपको 'षड़-दर्शनाचार्य' उपाधि से भूषित किया।'

'गिरिडि' में श्रील बाबाजी महाशय ने चार दिन अवस्थान किया था। कीर्तन-आनन्द व डाक्टर बाबू की सेवा स्नेह प्रीति आज तक भुलाई नहीं जाती। स्टेशन पर हमें विदा करते हुए डाक्टर बाबू से रहा नहीं गया—अस्फुट स्वर से कहा, 'आज, आनन्द का बाजार उठ गया' जब तक हमारी गाड़ी दिखाई दे रही थी वे वहीं पर खड़े-खड़े हमें देखते हुए आँसू बहा रहे थे।

श्रीपाद के संग हम लोग देवघर पहुँचे, कहाँ जाना, किधर ठहरना कुछ स्थिर नहीं था। श्रीपाद ने सभी से कहा, 'खोल, करताल लो, नाम करो।' किंकर काका व मदनदा मृदंग बजाने लगे। श्रील बाबाजी महाशय बोले, 'चलो, नाम करते हुए बाबा वैद्यनाथजी के दर्शन कर आते हैं।' स्वयं नाम प्रारम्भ किया—'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम। श्रील बाबाजी महाशय का मधुर कण्ठ स्वर और बाबा बैद्यनाथजी के दर्शन उत्कण्ठा से प्रवल नाम ध्वनि ने चारों दिशाओं को मुखरित कर दिया। मार्ग पर जो भी हमें मिल रहे थे वे ही हमारे साथ हरिनाम कीर्तन में सम्मिलित होते जा रहे थे। मन्दिर पहुँचने पर वहाँ के पण्डागणों ने भी संकीर्तन में योगदान किया।

श्रील बाबाजी महाशय ने मन्दिर में महादेव बाबा वैद्यनाथ जी को साष्टांग दण्डवत् किया व नाम कीर्तन करते हुए तीन बार मन्दिरपरिक्रमा करके मन्दिरके प्रांगणमें खूब नृत्य कीर्तन करने लगे। श्रील बाबाजी महाशय ने कीर्तन आरम्भ किया,

गौरी-शंकर, सीताराम, हरे कृष्ण हरे राम ।
बाबा भोलानाथेर प्राणाराम, हरे कृष्ण हरे राम ।।

इस नाम ध्वनि पर प्रचण्ड नृत्य आरम्भ हो गया । कुछ लोग 'जय बाबा वैद्यनाथ' की ध्वनि देते हुए हुँकार कर रहे थे, कुछ लोग कीर्तन आवेग से भूमि पर लोटपोट कर रहे थे । बहुत समय तक कीर्तन करके मन्दिर के एक किनारे पर बैठकर श्रीपाद विश्राम करने लगे । इतने में वहाँ पर कोई स्थानीय भक्त ने आकर श्रीपाद से विनम्र निवेदन किया, 'बाबा मन्दिर के निकट ही धर्मशाला है, स्थान भी अति सुन्दर है । आपके संग जब ठाकुरजी हैं तब वहीं चलकर भोग आदि की व्यवस्था स्वीकार करें ।'

श्रीपाद कहने लगे, 'देखो बाबा की कितनी कृपा ! हमसे अधिक उन्हें चिन्ता पड़ गई । स्वयं ही सारी व्यवस्था कर रखी है ।' खोल, करताल, ठाकुर सहित हम लोग धर्मशाला में जाकर ठहरे । ठाकुरजी को विराजमान किया गया । 'शिव-गंगा' में स्नान कर आये हम लोग । वहाँ के भक्तवृन्द व पण्डागण ने मिलकर ठाकुरजी के भोग आदि की सभी व्यवस्था कर दी । पेड़ा और शरबत का भोग लगा । पुजारी ने शीघ्र ही अन्न, रसा व दाल प्रस्तुत करके ठाकुरजी का भोग लगाया । पूजा-आन्हिक के बाद प्रसाद पाकर सभी ने विश्राम किया । संध्या के समय मन्दिर के पण्डागण श्रीपाद से कहने लगे, 'संध्या आरती के बाद प्रांगण में बैठकर आप बैद्यनाथजी को कीर्तन सुनायें ।'

श्रीपाद हँसकर बोले, 'यह तो मेरा परम सौभाग्य है ।'

श्रीपाद आरती दर्शन करके नाम कीर्तन करने बैठे। शुक्ल पक्ष की चाँदनी रात थी। अनेक साधु-सज्जन, भक्त कीर्तन सुनने आये थे। कीर्तन आरम्भ हुआ—

भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम। ए नाम बाबा भोलानाथेर प्राणाराम, पंचमुखे गाय अविराम; बाबा भोलानाथेर प्राणाराम, माँ योगमायार प्राणाराम॥ इत्यादि बहुत देर तक हरिनाम महिमा कीर्तन किया। रात के साढ़े ग्यारह बजे तक कीर्तन हुआ इतने में श्रीबालानन्द ब्रह्मचारीजी के एक साधु शिष्य ने आकर कहा कि ब्रह्मचारी जी ने श्रीपाद से कीर्तन सुनने के लिए उन्हें आग्रह किया है। श्रीललितमोहन घोष (कलकत्ता निवासी) ने भी, जो उन दिनों वहीं पर थे विशेष आग्रह व अनुरोध कर भिजवाया है।

अगले दिन श्रील बाबाजी महाशय के संग नाम कीर्तन करते हुए श्रीबालानन्द ब्रह्मचारी जी के आश्रम पर पहुँचे। ब्रह्मचारी जी आश्रम के बरामदे में एक आसन पर विराज रहे थे। हम लोगों ने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। ब्रह्मचारी जी ने युगलदा से भगवद् गुणगान सुनाने के लिये कहा। वह गीत मुझे अब तक स्मरण है। युगलदा गा रहे थे—

आमार मन रसना, जप हरे कृष्ण हरे राम। तारे निरानन्द दूरे जाबे, पावि आनन्दघन अविराम॥ ज्ञानीगण जारे ब्रह्म-स्वरूप करि, योगीगण परमात्मा हृदयेते धरि, भक्त बले भगवान द्विभुज मुरलीधारी, वृन्दाबने गोपीसने भक्तजनार प्राणाराम॥

आश्रम बहुत सुन्दर था, हम लोग घूम फिर कर चारों तरफ देख रहे थे। उसके बाद श्रील बाबाजी महाशय ने बहुत देर तक हरिनाम संकीर्तन किया। ब्रह्मचारी महाराज के अनुरोध पर किंचित मिष्ठान्न तुलसी से निवेदन करके मधुदा ने सबको प्रसाद दिया। उसी दिन काशी जाना था। श्रीपाद के संग मन्दिर परिक्रमा करके आश्रम से चले आये।

काशीधाम पहुँच कर श्रीपाद के संग स्टेशन से हरिनाम करते हुए हम लोग 'दशाश्वमेध' घाट पर पहुँचे। काशी में पाँचुदा के एक मकान में ठहरने की व्यवस्था की गई थी। श्रील बाबाजो महाशय भावविभोर हो गये कारण उनके हृदय में श्रीमन्महाप्रभु की काशी लीला उदय हो रही थी—श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती का उद्धार, श्रीसनातन गोस्वामी को शिक्षा प्रदान, श्रीतपन मिश्र पर करुणा की लीला स्मरण होते ही दशाश्वमेध घाट पर कीर्तन करने लगे—

कै से आमार प्राण गौर ! आमरा एसेछि एइ काशोधामे, कै देखिते तो पाइना तोमाय। कै से प्रकाशानन्द, मायावादी मर्दनकारी गौर, आमार प्रकाशानन्देर नयनानन्द; कै से तपन मिश्रेर प्राण गौर इत्यादि विलाप, विरह, प्रार्थना करने लगे। कोर्तन के पश्चात् गंगा स्नान करके नाम करते हुए पाँचुदा के घर पहुँचे।

अगले दिन लखनऊ गये श्रील बाबाजा महाशय। प्राय: ढाई बजे वहाँ पहुँचने पर परम भक्त नलिनी बाबू व विधु बाबू जो श्रीपाद का स्वागत करने के लिये आये थे, उनके चरणों में पड़ गये। उन लोगों की भक्ति प्रीति पर हम लोग बड़े हो

आश्चर्य चकित व प्रसन्न हुए। वहाँ किसी जमींदार के खाली भवन में हम लोगों की ठहरने की व्यवस्था की गई थी। सामने बहुत ही सुन्दर बगीचा था। बहुत बड़े प्रांगण में कीर्तन का विशाल आयोजन किया गया था। स्नान-आन्हिक के बाद प्रसाद पाकर विश्राम किया।

संध्या के समय कीर्तन की व्यवस्था थी। कीर्तन सुनने अनेक उच्चशिशित, गणमान्य लोग आये हुए थे। समग्र भारत-वर्ष में उन दिनों श्रीपाद के कीर्तन की प्रसिद्धि थी। उस दूर देश में उन्हें अपने बीच पाकर भक्तवृन्द आनन्द विभोर हो रहे थे। विस्तीर्ण प्रांगण श्रोताओं से भरा हुआ था। श्रीपाद ने हाथ में करताल लिये सभा के मध्य में दण्डवत् प्रणाम किया। किंकर काका व हरेकृष्णदा मृदंग वादन कर रहे थे। किंकर काका की मधुर मृदंग ध्वनि सुनकर सब लोग आश्चर्य चकित रह गये थे। श्रील बाबाजी महाशय ने नाम कीर्तन प्रारम्भ किया—'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम। फिर नाम महिमा कीर्तन करने लगे—

जप हरे कृष्ण हरे राम। रामे रमे मनोरमे, जप हरे कृष्ण हरे राम।। श्रीराधारमण राम, जप हरे कृष्ण हरे राम।। बीच-बीच में श्रोतामण्डली—'हरि बोल, हरि बोल' ध्वनि कर रही थी। श्रीपाद कीर्तन करने लगे—

एई तो कलियुगेर महामंत्र, जप हरे कृष्ण हरे राम। परि-त्राणेर मूलमंत्र, ए जे वेदेर निगूढ़ मर्म, कलियुगोचित एई नामधर्म; चारि वेद, चौदह शास्त्र, अठारह पुराण तंत्र, गीता आदि करिया मंथन एई हरे कृष्ण नामेर प्रकाश; ए नाम

अखिल रसेर धाम, अभेद नाम-नामी, नाम—चिंतामणि कृष्ण, चैतन्य रस विग्रह; नाम बइ आर साधन नाई रे; सच्चिदानन्दघन मूरति देखते, अनादिर आदि गोबिन्द पेते—एइ नाम बई आर साधन नाई रे। ब्रजवासी गणेर मत—सम्बन्धेर बन्धने बाँधते नित्य नव कैशोर-नटवर देखते, परिपूर्ण कृष्ण प्राप्ति करते, एई नाम बिना आर साधन नाहि रे।'

इसी प्रकार प्राय: पाँच घण्टे तक अपूर्व श्रीनाम महिमा कीर्तन करके पुन: पद गाने लगे—

नवद्वीप धामे आसि, प्रेम बिलाय राशि-राशि, तरंगें जार जगत भासाय रे। नवद्वीप धामे आसि, हये राइ-कानु मिशामिशि, नाम धरिल गोरा-राशि। राइ-सन्मुखे कालशशी, नाम धरिल गोराशशी॥ गाते-गाते व्याकुल होकर क्रन्दन करने लगे। अश्रु-कम्प-पुलक-हुँकार आदि सात्विक विकारों से विभूषित होने लगे। रात के बारह बजे तक इस प्रकार कीर्तन के बाद प्रचण्ड नृत्य व नाम कीर्तन करके एक बजे कीर्तन समाप्त किया।

लखनऊ वासी भक्तवृन्द प्रतिदिन संध्या समय श्रील बाबा जी महाशय से अपूर्व नामकीर्तन श्रवण करके कृतार्थ हो गये। वहाँ पर मुख्य सड़क पर किसी इंजीनियर बाबू का घर था। वे सर्वदा विदेशी पोशाक में ही रहते थे। प्रतिदिन श्रीपाद का दर्शन व उनसे कीर्तन सुनने आया करते थे। विदेशी अदब के होते हुए भी वे निरभिमानी थे।

एक दिन उन्होंने श्रीपाद के चरणों में दण्डवत् करते हुए

उनके घर में प्रभाती कीर्तन करने की विनम्र प्रार्थना की। कहने लगे, 'बाबा यदि आप कृपा करें तो मेरा जीवन धन्य हो जायेगा।' श्रीपाद ने उत्तर में कहा, 'आप से अधिक हम धन्य होंगे। कारण जब कोई हम से नामकीतन सुनने का अनुरोध करता है तभी तो हम करते हैं। नहीं तो हम नाम कब करते ! आप लोग श्रद्धापूर्वक नाम सुनना चाहते हैं, प्रीति पूर्वक बुलाते हैं अतः आप लोगों को श्रीहरिनाम सुनाकर हम स्वयं धन्य होते हैं। 'नामे आलस, भोजने हुँसियार। तुलसी कहे ऐसे नर को बार-बार धिक्कार।'

हम लोगों को शिक्षा देने के लिए ही श्रील बाबाजी महाशय ने इस प्रकार कहा। उनका कथन उनके स्वभाव सिद्ध दैन्यवश ही था। वे तो स्वयं प्रतिदिन पन्द्रह-सोलह घण्टे नाम कीर्तन करते थे। नाम के बिना उनका जीवन धारण असम्भव था। दस वर्ष की आयु से प्रायः सत्तर वर्ष की आयु पर्यन्त उन्होंने समग्र जगत् को कीर्तन आनन्द से धन्य किया था। नाम-कीर्तन-परायण, नाममय-जीवन श्रील बाबाजी महाशय दैन्यवश व्याकुल हृदय से क्रन्दन करते हुए प्रभु से फिर भी प्रार्थना करते थे—'प्रभु मुझे नाम करने की शक्ति प्रदान करो, आपके नाम में रुचि दो। समग्र जीवन उनका इसी प्रकार आर्ति दैन्य बना रहा। वे सदा सर्वदा प्रभु के नाम, रूप, लीला, गुण स्मरण करते हुए भाव विभोर रहते हुए ही कीर्तन के अन्तमें प्रतिदिन यही प्रार्थना व आक्षेप करते थे।

आमि किछुइ देखते पेलाम ना रे, आमार नामे रुचि होलो

नारे, सबाइ आमाय नाम करबार शक्ति दाओ, केवल साज सेजे लोक भाँड़ालाम। इत्यादि

भावार्थ—मैं कुछ भी देख नहीं पाया, मेरी नाम में रुचि नहीं हुई। सब मुझे नाम करने की शक्ति दो वैष्णव वेश में केवल लोग-प्रतारणा ही की है मैंने !

लाखों की संख्या में लोगों ने जिन्हें परम भागवत, परम वैष्णव जानकर श्रीचरणों में आश्रय ग्रहण किया है उनकी यह दीनता, निरभिमानता अद्भुत है। ऐसे अभिमान शून्य महापुरुष के चरणों में आश्रय पाकर भी हम लोगों के हृदय से अहंकार, अभिमान दूर नहीं होता।

इन्जीनियर बाबू के प्रार्थना से वहाँ पर ठाकुरजी का भोग लगाने की प्रार्थना भी श्रीपाद ने स्वीकार कर ली। अगले दिन श्रीपाद ने उनके घर प्रभाती कीर्तन प्रारम्भ किया। शुरू से ही कीर्तन में उन्मादना छा गई थी। असंख्य लोग कीर्तन सुनने आये थे। भीड़ के कारण लोग खड़े-खड़े ही कीर्तन श्रवण कर रहे थे। श्रील बाबाजी महाशय अजस्र अश्रुधाराओं से प्लावित हो रहे थे। भक्तवृन्द भी उनके व्याकुल क्रन्दनरत मुखमण्डल के दर्शन करते हुये रो रहे थे। अन्त में श्रीपाद गान करने लगे—

हा श्रीशचीनन्दन चित्तचौर, हा चितचोरा प्राणगोरा, ए तोमार केमन धारा, चित चुरी करे दाओना धरा, ए तोमार केमन धारा; जे दिन हते तोमार सुनेछि, खुंजे-खुंजे हलाम सारा; नदीया, नीलाचले, बृन्दाबने, सुरधुनी आर सिन्दूकूले,

खुंजे-खुंजे हलाम सारा; हा चितचोर चूड़ामणि; केन तुमि दाओना धरा; आमरा तो तोमाय भूलेइ छिलाम; भूले छिलाम, भालइ छिलाम, केन तुमि जानाइले; श्रीगुरु रूपे देखा दिये— 'तुमि सेव्य, आमरा सेवक' बले केन तुमि जानाइले।'

भावार्थ—हा चितचोर शचीनन्दन, प्राणगौर, यह कैसा है तुम्हारा स्वभाव, जो कि मेरा चित-चोरी करके पकड़ में नहीं आ रहे हो। जिस दिन से मैंने तुम्हारा नाम सुना है, मैं तुम्हें नदिया, नीलाचल एवं वृन्दावन में खोजता हुआ घूम रहा हूँ, परन्तु हे चितचोर चूड़ामणि आप मुझे कहीं भी नहीं मिले। मैंने तो अपने प्राण आपको सौंप दिये हैं। किशोर अवस्था में संसार के खेल में, मैं आपको भूले हुए था, सो अच्छा ही था। गुरु रूप में दर्शन देकर आपने मुझे क्यों जनाया? तुम मेरे स्वामी हो एवं मैं तुम्हारा सेवक हूँ, यह आपने मुझे क्यों जनाया?

विरह वेदना की अभिव्यक्ति उनके हृदय के अन्तःस्थल से निकल रही थी। तीव्र विरह से उनका कण्ठ रुद्ध हो रहा था। श्रीअद्वैत काका गमछे से अनवरत श्रीपाद के अश्रुजल पोंछ रहे थे। उपस्थित समस्त भक्तवृन्द श्रीपाद के रोदनरत श्रीमूर्ति के दर्शन से स्वयं रो रहे थे। हठात् मैंने देखा दस-बारह काबुल देश के रहने वाले पठान हाथ में लाठी लेकर सड़क पर खड़े होकर श्रीपाद का दर्शन कर रहे थे। निर्निमेष दृष्टि से दर्शन करते-करते उनके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। कौतुहल वश मैंने जाकर उनसे पूछा, 'आप लोग तो काबुली वाले है। आप को बंगला भाषा तो समझ में नहीं आती तो आप लोग क्यों रो रहे हो?'।

उन्होंने हाथ जोड़कर उत्तर दिया, 'यह फकीर अल्लाह के नाम पर इतना रो रहा है कि इसने हमारे पत्थर जैसे कलेजे को भी पिघला दिया। यह खुदा का कोई प्यारा होगा। यह एक सच्चा फकीर है।' समझा, भक्तके दर्शन मात्र से ही कठोर हृदय पर भी भक्ति महारानी का उदय होता है। प्रार्थना कीर्तन करते हुए दोपहर के एक बजे प्रभाती कीर्तन समाप्त हुआ। स्नान आन्हिक के बाद प्रसाद पाकर सभी ने विश्राम किया। इसी प्रकार कीर्तनानन्द में ५/६ दिन लखनऊ रहने के बाद हम लोग श्रीपाद के संग कानपुर पहुँचे।

कानपुर के भक्तवृन्द के विशेष आग्रह से श्रीपाद वहाँ पर कीर्तन करने गये। उनमें से विशेष आग्रही थे वहाँ के मास्टर रामगति घोषाल महाशय। बहुत दिनों से वे श्रीपाद के श्रीमुख से कीर्तन सुनने के अभिलाषा थे। अतः वे स्टेशन से श्रील बाबाजी महाशय को अपने घर ले गये।

प्रतिदिन संध्या के समय श्रीपाद कीर्तन करते थे। बहुत भक्त समागम होता था। श्रीरामगति घोषाल कीर्तन सुनकर कई बार अत्यन्त आविष्ट हो जाते थे। ३/४ दिन कीर्तन आनन्द में व्यतीत करके श्रीपाद श्रीधाम अयोध्या जाने के लिए स्टेशन पर पहुँचे। श्रीरामगति घोषाल महाशय प्लेटफार्मपर श्रीपादको दण्डवत् किये एक किनारे नीरव निस्पन्द होकर खड़े-खड़े श्रील बाबाजी महाशय की ओर निष्पलक दृष्टि से दर्शन करने लगे। मानो जन्म-जन्मान्तर के निजजन से बिछुड़ने के विरह से व्यथित हो रहे थे। जब गाड़ी उनकी दृष्टि से बाहर हो गई तब वे प्लेटफार्म पर मूर्छित होकर गिर पड़े।

'जय निताइ' कहकर श्रीपाद भी व्याकुल होकर मुझसे बोले, देखो, देखो, कैसा अनुराग है ! अब उससे घर पर रहना नहीं होगा।' २०/२५ दिन बाद जिस दिन हम लोग श्रीपाद के संग कलकत्ता लौटे उससे अगले दिन ही श्रीराममति घोषाल ने स्कूल में इस्तीफा देकर, घर संसार छोड़कर सदा के लिए श्रीपाद के श्रीचरणों का आश्रय ग्रहण किया।

समग्र जीवन उन्होंने श्रीगुरु शरणागति में ही व्यतीत किया। अपूर्व थी उनकी गुरुनिष्ठा। जीवन-मरण, शयन-स्वप्न में श्रीगुरु पादपद्म ही उनके जीवन का एकमात्र आधार था। उनके मधुमय संग का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। श्रीगुरु-आदेश का पालन ही उनके जीवन का एकमात्र व्रत था। श्रीबराह नगर पाठबाड़ी आश्रम में एक दिन अकस्मात् अस्वस्थ होकर श्रीगुरु पादपद्म का ध्यान व हरिनाम करते हुए उन्होंने पार्थिव देह का त्याग करके चिन्मय धाम में प्रवेश किया।

अयोध्या पहुँच कर श्रील बाबाजी महाशय के संग नाम करते हुए सरयू नदी के तट पर पहुँचे। मार्ग में अनेक वैष्णव-जन आकर नाम में योगदान करने लगे। वे जप कर रहे थे। पर मधुर नाम संकीर्तन की ध्वनि के आकर्षण द्वारा वे रह नहीं सके। उन वैष्णवों में से कईओं ने श्रीभक्तमाल में श्रीमन्-महाप्रभु के विषय में पढ़ा हुआ था। कुछ श्रीचैतन्यचरितामृत पाठ करने के बाद उन्हें स्वयं भगवान् कहकर भी मानते थे स्टेशन के निकट एक धर्मशाला में हम लोग ठहरे। स्नान करके श्रील बाबाजी महाशय के संग श्रीराम, लक्ष्मण, सीता महारानी व परम भक्त महाबीर के दर्शन किये। उसी दिन हम

लोगों को भागलपुर जाना था। अतः शीघ्र ही ठाकुर को खिचड़ी भोग अर्पण कर सबने प्रसाद पाया। विश्राम करके रात को भागलपुर रवाना हुये।

वहाँ पर दो दिन, कीर्तन आनन्द में व्यतीत हुए। 'माधोपोरा' से एक भक्त आकर श्रील बाबाजी महाशय को कीर्तन के लिये लेने आये। रात्रि के समय ट्रेन में ही ठाकुरजी को शयन कराकर हम सब जब निद्रित थे उसी समय किसी चोर ने ठाकुरजी का चित्रपट चुरा लिया। सुबह होने पर पता चला कि ठाकुरजी नहीं हैं।

श्रीपाद बहुत ही व्याकुल हो पड़े। हम लोगों की असावधानता के कारण ही ऐसा हुआ था। छोटे रमण के पास एक छोटा सा चित्रपट था। उसी की सेवा पूजा होने लगी। शशीदा को उसी समय श्रीपाद ने कलकत्ता भेज दिया ठाकुरजी का चित्रपट बनवाने के लिए। 'माधोपोरा' में दो दिन रहकर कलकत्ता लौटने के लिए स्टेशन पहुँचे। श्रीपाद का मन बहुत ही उदास था ठाकुर चोरी होने पर। कहने लगे, 'हम लोगों के अपराध से ही ऐसा हुआ। प्रत्यक्ष मानकर यदि उनकी सेवा पूजा करते तो वे कभी नहीं जाते हमें छोड़कर। भक्त की निष्कपट भक्ति से ही उनका अवस्थान होता है।'

श्रील बाबाजी महाशय के संग मैं, चारुदा व बलाइदा श्रील उद्धारण दत्त ठाकुर के श्रीपाट सप्तग्राम दर्शन करने गये। बाकी सब लोग कलकत्ता चले गये। श्रीउद्धारण दत्त ठाकुर के तिरोधान तिथि के दूसरे दिन हम लोग पहुँचे थे। तिथि के दिन उपस्थित न हो पाने से श्रीपाद व्याकुल होकर कितना ही

क्रन्दन कर रहे थे। सब ठाकुरों को दण्डवत् प्रणाम करके 'माधवीलता' वृक्ष को स्पर्श किया व उसे दण्डवत् किया। श्रीपाद मुझसे कहने लगे, 'कितने एकनिष्ठ निताइ-भक्त यहाँ पर आये थे। सुवर्ण वणिक जाति पर प्रभु नित्यानन्द की बड़ी ही कृपा है। उन्हें उन्होंने मधुर प्रेम भक्ति का दान दिया है।

श्रीउद्धारण ठाकुर उनके प्रिय परिकर थे। उनके द्वारा रसोई किया हुआ भोग प्रभु नित्यानन्द पाया करते थे। श्री-उद्धारण ठाकुर के छोटी जाति के होने पर ब्राह्मणों ने निताइ चाँद पर दोषारोपण किया था। एक दिन उन्हीं लोगों ने श्रीउद्धारण ठाकुर के गले में चमचमाता हुआ सुवर्ण यज्ञोपवीत का दर्शन किया। उन लोगों की अवज्ञा बुद्धि दूर हो गई। 'भक्त सर्वश्रेष्ठ होता है।' यह प्रभु निताइ चाँद ने प्रत्यक्ष दिखाया था। इसी प्रकार श्रीकृष्ण लीला में भी राजसूय यज्ञ के समय भगवान् श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर की पाकशाला में छोटी जाति के वाल्मीकि को प्रसाद पवाकर दिखाया था कि समस्त जातियों में एकमात्र भक्त ही श्रेष्ठ होता है।'

श्रीपाद के साथ-साथ मैं भी दर्शन कर रहा था। हठात् उन्होंने मुझसे कहा—'देख उस गढ्ढे में भक्त अधरामृत पड़ा हुआ है। वहाँ से भक्त अधरामृत उठाकर ले आ।' श्रीपाद की आज्ञा शिरोधार्य करके तत्क्षण मैं भक्त अधरामृत उठा लाया। कुत्ते भी खा रहे थे उस गढ्ढे से। श्रीपाद ने दोनों हाथों से अधरामृत ग्रहण किया, स्वयं अपने मुख में डालकर कुछ मुझे देते हुए बोले, 'ले खाले भक्त अधरामृत।' श्रीपाद ने अपने हाथों से दिया था। अतः बिना विचार किये, दुविधा न करते हुए

मैंने खा लिया ।

मुझे अधरामृत पाते देखकर श्रीपाद ने मुझसे कहा, 'आज से तेरा जाति अभिमान मिट गया; भक्त व उसके अधरामृत में इतनी शक्ति है। 'भक्त पदरेणू और भक्त पदजल, भक्त भुक्त अवशेष तीन साधन सम्बल।' भक्त व वैष्णव को इस प्रकार अकुण्ठ, निर्विचार व सर्वत्रप्रसारी मर्यादा देते श्रीपाद जैसे मैंने और किसी को नहीं देखा है।

दण्डवत् प्रणाम करके श्रीपाद के संग हावड़ा स्टेशन पहुँचे। अनेक भक्त उनके दर्शन करने आये हुए थे। शशीदादा भी आये हुए थे ठाकुर बनवाकर। दर्शन करके श्रीपाद प्रसन्न व शान्त हुये। पाँचुदा व एस० सि० आड्डि महाशय भी आये हुए थे। प्राय: एक महीने से कलकत्ता निवासी भक्त वृन्द श्रीपाद के दर्शन से वंचित रहकर प्राय: प्राणहीन दशा में थे। अत: उनके दर्शन लालसा से बाल, वृद्ध, नारी, पुरुष सभी दम्र्महाटा मठ में आये हुए थे।

श्रीपाद के मुखारविन्द में सदा मृदुमंद मादकतामयी हँसी की तरंग उठती रहती थी। हरिदा व बटुकाका ने सेवा का सभी बन्दोबस्त कर रखा था। भक्तवृन्द के सेवा के निमित्त पाँचुदा ने सभी प्रकार की सामग्री जुटा रखी थी। तभी हम लोग जाकर रसोई के लिये गंगाजल ले आये। श्रीपाद गंगाजल के बिना ठाकुरजी का भोग नहीं लगाते थे। गंगाजल में स्नान व गंगाजल से बना ठाकुरजी का भोग पाने का उनका आजीवन

नियम रहा। कलकत्ते में हैंजे की महामारी फैलने पर भी उनके नियम का उल्लंघन होते नहीं देखा। ऐसी थी उनकी निष्ठा !!

श्रील बाबाजी महाशय 'निमतलाघाट' पर बैठे-बैठे माला जप कर रहे थे। मुझसे कहने लगे, 'श्रीगुरुदेव (बड़े बाबा) ने मुझे कलकत्ता में रहकर ही नाम संकीर्तन करने का आदेश दिया है। सो मेरा मन कलकत्ते के बिना कहीं नहीं लगता है। मेरे लिए यह एक तीर्थ के समान है। यह सुरधुनी (गंगाजी), यह निताइ-गौर की पदांकित भूमि—यहाँ आने पर ही मन-आनन्द विभोर हो जाता है। संकीर्तन में जो आनन्द व स्फूर्ति यहाँ पर होती है वैसा और कहीं नहीं होता। उस पागल प्रभु (बड़े बाबा) का स्मरण स्वतः ही यहाँ पर होता रहता है। उन्हीं के आदेश से संकीर्तन किया जाता है।'

श्रीपाद पुनः कहने लगे—'निमतला में 'ठाकुर बाड़ी' देखी है तुमने ? जिन गोसाँई जी को मैंने अभी दण्डवत् किया, वे ही मुझे दोपहर का प्रसाद दिया करते थे; रात को यतीन मित्र महाशयके घर प्रसाद पाया करता था। इसी तरह नाम प्रचार का कार्य चलता था आजकल प्रभु की कृपा से यथेष्ट अनुकूल हो गया है।'

'एकबार व्रजधाम में श्रीराधाकुण्ड के तट पर मैं बैठा हुआ था। श्रीपण्डित बाबा, श्रीरामहरि दास बाबा, श्रीहरिचरण दास बाबा व श्रीमाधवदास बाबा भी वहाँ पर विराजमान थे। उन्होंने मुझसे पूछा, 'अच्छा राम ! तुम इस वृन्दावन धाम में क्यों नहीं रहते हो ? श्रीधाम आश्रय तो भक्ति का श्रेष्ठ साधन है।' मैंने सश्रद्ध व विनम्र निवेदन किया, 'इसके कुछ

कारण हैं। श्रीगुरुदेव ने मुझे कलकत्ता रहकर ही नाम कीर्तन करने का आदेश दिया है; अतः वह शिरोधार्य है। मेरे मन में एक लालसा भी है। कलकत्ता निवासी बहुत से लोग घर-संसार, भोग-विलास लेकर उन्मत्त रहते हैं। पर इससे उन्हें शान्ति नहीं मिलती।

अतः कभी-कभी वे अस्थिर और बेचैन हो उठते हैं और उनके मन में भगवत् नाम भगवत् गुणगान सुनने की आकांक्षा जगती है। तब वे मेरे पास आते हैं, अपने घर ले जाकर नाम कीर्तन श्रवण करके जीवन सफल करते हैं। धीरे-धीरे संसार के प्रति उनकी आसक्ति कम होने लगती है नाम के प्रति श्रद्धा होने लगती है। भगवत् सेवा, साधु वैष्णवों की सेवा करने की लालसा हृदय में जागृत होती है।

इस प्रकार वे उनकी सेवा करके, भक्तिमय अवलम्बन करके अपने जीवन को कृतार्थ करते हैं। उनकी इस सेवा करने के लोभ से ही मैं कलकत्ता में रहता हूँ। यह उत्तर सुनकर श्रीपाद माधवदास बाबा व श्रीहरिदास बाबा आलिंगन देते हुए बोले, 'अहा! रामदास क्या मधुर वचन बोले तूने !! एकमात्र नित्यानन्द शक्ति जिसके भीतर संचारित हो जाये केवल वह ही ऐसी अमूल्य वाणी सुना सकता है।' श्रीपाद के वचनों से अत्यन्त प्रीति लाभ करके स्नेह पूर्वक कहने लगे, 'तू धन्य है राम!'

इन मधुर प्रसंग से यथेष्ट देर हो गई थी। श्रीपाद गंगाजल मस्तक से स्पर्श कराकर दण्डवत् किया व जल में प्रवेश किया। सुरधुनी (गंगा)के स्पर्श मात्र से ही वे आनन्दसे डगमगा उठे।

गमछा से जल भर-भर कर मस्तक पर दे रहे थे, रह-रहकर उनका देह कम्पित हो रहा था। जल के बीच खड़े हुए गीत गुन-गुनाने लगे—'ओ गो, सुरधुनी, कोथा मोदेर गोरा गुणमणि बलेदे, बलेदे।' (हे सुरधुनि गंगे, हमारे गौर गुणमणि कहाँ हैं, बताओ) श्रीपाद स्थिर दृष्टि से गंगाजी का दर्शन कर रहे थे। हम लोग गंगाजी में तैर रहे थे और कभी-कभी मैं उनका दर्शन कर रहा था। अचानक उनका गमछा बहकर मेरे पास आ टकराया। मैंने उन्हें गमछा दिया। अन्यमनस्क होते हुए उन्होंने कहा, 'चलो चलते हैं।' हम सब वस्त्र परिवर्तन करके समस्त ठाकुरों को दण्डवत् प्रणाम करके, चरणामृत लेकर दर्महाटा मठ पहुँचे।

श्रीपाद आन्हिक करने बैठे। बलाइ, आड्डि, चारुदा, युगल दा, बटुदा, हरिदा, फणिकाका, बलाइदा इत्यादि सब बैठे हुए थे। मैंने चारुदा से सारी घटना कह सुनाई। चारुदा कहने लगे, 'अच्छा तो उन्हें गौरसुन्दर का स्मरण हो रहा था, सो गमछा बह गया, कहीं बहिर्वास तो नहीं बह गया।' श्रीपाद ने हँसकर चारुदा की पीठ पर एक चपेट मारा।

दोपहर दो बज गये थे। सभी ने प्रसाद पा लिया था पर श्रीपाद का तब तक आन्हिक-पूजा समाप्त नहीं हुआ था। श्रीनरोत्तम काका ने उनके लिए प्रसाद ढककर रख दिया। तीन बजे श्रीपाद आसन से उठे, पूछा, 'सभी ने प्रसाद पा लिया है न ?' उत्तर मिला 'हाँ'। श्रीपाद आनन्द पूर्वक प्रसाद पाने बैठे तो मैंने उनसे पूछा, 'आप सभी के प्रसाद पाने के बाद इतनी देर में क्यों प्रसाद पाते हैं ? श्रीगुरुदेव के प्रसाद पाने

के पश्चात् ही तो शिष्यों को प्रसाद पाना चाहिये। पर आपके यहाँ तो उल्टा ही देखने में आता है।'

श्रील बाबाजी महाशय ने हँसकर उत्तर दिया, 'शिष्य श्रीगुरुदेव की प्रकाश-मूर्ति हैं। हम लोगों ने गुरु-सेवा, गुरुभक्ति तो कभी की नहीं। अतः श्रीगुरुदेव शिष्य के रूप में आकर अपनी सेवा करा लेते हैं, समझे ?' 'मेरी समझ में नहीं आती यह बात। गुरु तो सदा ही 'गुरु' हैं, वे किसी भी समय 'लघु' नहीं हो सकते। शिष्य तो शिष्य ही हैं; वह कैसे गुरु बन सकता है ?' मैंने कहा।

मेरी बात सुनकर श्रीपाद हँस पड़े। 'ठीक कहा है तुमने' चारुदा बोल उठे। प्रसाद पाते-पाते श्रीपाद हम लोगों से बात-चीत कर रहे थे। चार बज गये। उठकर श्रीपाद पान प्रसाद पा रहे थे। प्रसादी पान चबा-चबाकर थोड़ा-थोड़ा हमारे हाथ में देने लगे। अधरामृत प्रसाद पाने के लिये चारुदा, रमणदा, बलाइदा, मदनदा ने छीनाझपटी शुरू कर दी। श्रीपाद विश्राम करने चले गये। चारुदा की छुट्टी खत्म हो गई थी। बलाइदा, युगलदा को भी बन्द पड़ी दुकानें खोलनी थी। संध्या के समय श्रीपाद को दण्डवत् करके वे सब चले गये।

श्रील बाबाजी महाशय मुझे साथ लेकर 'तालतला' में एक भक्त के घर ले गये। 'नरसिंह' नाम के एक वृद्ध जो श्रीबड़े बाबा के शिष्य थे, वहाँ पर रहते थे। श्रीपाद को देखते ही गिरते-उठते दौड़ आये व चीत्कार करने लगे, 'देखो, देखो कौन आया है, कहाँ हो सब लोग; जल्दी आओ।' घर के छोटे बड़े सभी दौड़ आये और श्रीपाद के चरणों में गिर गये। सभी के

नेत्रों में अश्रुधारा थी। प्राय: एक महीने से श्रीपाद के अदर्शन से उनकी सेवा से वंचित रहकर वे व्यथित हो रहे थे।

वृद्ध नरसिंह जी श्रीपाद से रोकर कहने लगे, 'दादा हमारे प्रति क्यों निष्ठुर हो जाते हो! तुम्हें देखे बिना, सेवा किये बिना मर जाना ही श्रेय: है।' उन लोगों की प्रीति भक्ति श्रद्धा देखकर मैं मुग्ध हो गया। घर के छोटे बड़े, बहू-बेटी सभी ने श्रीपाद से मंत्र दीक्षा ली थी। सभी एक प्राण एक हृदय से गुरुनिष्ठ थे। वे सुवर्ण वणिक् जाति के थे। उनके घर में ठाकुर सेवा की बड़ी सुन्दर परिपाटी थी; सात्विक आहार-विहार, शुद्धाचार था। परम वैष्णव-सेवी थे। 'ताल तला' लेन, व 'डाक्टर लेन' श्रीपाद के लिए तीर्थ के समान था।

श्रीबड़े बाबा की पदांकित भूमि थी। नरसिंह बाबा के घर कुछ दिन रहकर कीर्तन आनन्द, महा महोत्सव होने लगा। बहुत भक्त समागम हुआ था। कितने भक्त श्रीपाद को कीर्तन कराने ले जा रहे थे। श्रीबड़े बाबा की पदांकित भूमि होने के कारण श्रीपाद कीर्तन के अन्त में उन्हें (बड़े बाबाजी को) स्मरण करते हुए कितने ही प्रकार से विनय प्रार्थना किया करते थे। वहाँ पर श्रीपुलिन बाबू के घर भी जाते थे श्रीपाद। वे भी सुवर्ण-वणिक जाति के थे।

श्रीधर्मदास बाबू के घर पर भी महामहोत्सव हुआ करता था। शरद् ऋतु में श्रीबड़े बाबा प्राय: कलकत्ता आकर बहुत से भक्तों के घर कीर्तन, उत्सवादि किया करते थे, कितनों को मन्त्र प्रदान किया था। श्रीपाद उन्हीं विशेष-विशेष

तिथियों को स्मरण करते हुए वहाँ पहुँचकर उन्हीं का विरह कीर्तन करते हुए अगणित भक्तों को प्रसाद वितरण करते थे।

'पोस्ता' की रानी श्रीमती सखी सोनादासी ने भी श्रील बाबाजी महाशय का चरण आश्रय लिया था। वे भी सुवर्ण वणिक थीं। श्रीपाद अपने शेष जीवन के प्रायः अठारह वर्ष पर्यन्त सखी सोनादासी की राजबाड़ी से नाम-प्रेम प्रचार कार्य किया करते थे। राजबाड़ी के तीसरे मंजिल पर वे बैठक, वैष्णव खण्ड, रसोई घर, ठाकुर मन्दिर, श्रीपाद का पृथक् कक्ष बनवाकर स्वयं सपरिवार नीचे रहती थीं। देश विदेश से जितने भी साधु-वैष्णव-भक्त श्रील बाबाजी महाशय के दर्शन करने आते थे, सभी की प्रसन्नता पूर्वक सेवा करके अपने को धन्य मानती थी। इसे वे गुरु-सेवा ही मानती थीं। वहाँ पर उत्सव लगा ही रहता था।

यदि कोई श्रीपाद से सम्बन्ध युक्त होता अथवा कोई उनका शिष्य होता, चाहे वह दीन दरिद्र ही क्यों न हो, उसे वे अपना मान सेवा-यत्न किया करती थीं। श्रीवृन्दावन, श्रीनीलाचल वासी वैष्णव अथवा श्रीधाम नवद्वीप से किसी साधु वैष्णव संन्यासी के आगमन पर दीदी उनकी सेवा करके अपने को धन्य मानती थी। इसका एकमात्र कारण था—परम कारुणिक व उदार श्रील बाबाजी महाशय के चरण आश्रय से उन्हें भी महान् गुणों की प्राप्ति हुई थी। श्रीगुरु वैष्णव, आचार्य गोस्वामी सन्तान व ब्रजवासियों की सेवा उनके जीवन का महान् आदर्श था। 'दर्म्महाटा' मठ छोड़कर श्रीपाद ने सुदीर्घ अठारह वर्ष पोस्ता राजबाड़ी में ही अवस्थान किया था।

'दर्म्महाटा' मठ में रहते समय एक दिन श्रीपाद के संग अष्टप्रहर अखण्ड नाम-संकीर्तन करने दार्जीपाड़ा गये थे। अपूर्व नाम-संकीर्तन हुआ वहाँ पर। वहाँ पर एक घटना घटी थी जो आज तक मेरे हृदय पट पर अंकित है। श्रीपाद नगर संकीर्तन के दिन वहाँ एक रास्ते के मोड़ पर खड़े होकर कीर्तन कर रहे थे—

पाषण्डदलन बाना नित्यानन्द राय रे।
निताइ आमार आपे नाचे, आप गाय, गौरांग बोलाय रे॥

यह पंक्ति गाते-गाते श्रीपाद व्याकुल हृदय से क्रन्दन कर रहे थे। शरीर थर-थर कम्पित हो रहा था, कण्ठस्वर रुद्ध हो रहा था। खूब मातन कीर्तन व उद्दण्ड नृत्य होने लगा। बहुत भीड़ थी। अचानक देखा कि एक घर से एक व्यक्ति निकल आया। मैं एक किनारे खड़ा था, मेरे ही निकट आकर खड़ा हो गया। शराब की दुर्गन्ध आ रही थी उसके मुँह से, पैर, लड़खड़ा रहे थे। फिर भी वह कीर्तन के ताल पर ताली बजाकर झूम रहा था। वहाँ पर प्रायः एक घण्टा कीर्तन करके श्रीपाद ध्वनि देते हुए अग्रसर हुए—

'प्रेम दाता निताइ बले, गौर-हरि, हरि बोल।' कीर्तन सुनकर उस व्यक्ति का नशा कम हो गया था, अस्फुट स्वर से कहने लगा, 'ठीक, ठीक ही तो है। मेरा जीवन तो व्यर्थ ही बीत गया, नहीं—अब और नहीं।' मैंने उसके प्रति देखा, उसके नेत्र सजल थे। मुझसे पूछा, 'इनका क्या नाम है, कहाँ रहते हैं?' मैंने उत्तर दिया, 'इनका नाम श्रील रामदास बाबाजी महाशय है। हम सब उनके शिष्य हैं। वे सदा जीवों को नाम

संकीर्तन सुनाया करते हैं। आजकल वे १६० नम्बर दर्म्महाटा स्ट्रीट पर रहते हैं।' वह चला गया। श्रीपाद ने नाम यज्ञ के स्थान पर लौटकर नगर संकीर्तन समाप्त किया।

प्राय: तीन बजे श्रीपाद ने दर्म्महाटा मठ पहुँच कर विश्राम किया। पाँच बजे भक्तवृन्द उनके दर्शन करने आ रहे थे। श्रीपाद माला जप कर रहे थे। इतने में मैंने देखा 'दार्जीपाड़ा' का वही व्यक्ति जो नशे में चूर था आ पहुँचा। श्रीपाद को दण्डवत् प्रणाम करके उनके चरणों में गिर पड़ा व रोते-रोते कहने लगा, 'मेरा उद्धार करो प्रभु, मैं महापतित, मद्यप, दुरा-चारी हूँ।' श्रीपाद उसकी आर्ति देखकर बोले, 'जय निताइ, जय श्रीराधारमण, उठो, उठो।' वह उठ बैठा और हाथ जोड़ कर कहने लगा, 'प्रभु, कृपा करके मुझे अपने चरणों में आश्रय देकर मेरा उद्धार करें। अब तक मेरा जीवन व्यर्थ में ही बीत गया। आपके दर्शन करके व आपसे कीर्तन सुनते ही मुझे चेतना हो गई, दुर्लभ मनुष्य जीवन वृथा ही गँवा दिया। अब आप मुझे मन्त्र दीक्षा प्रदान करें।'

श्रीपाद करुणा से आप्लावित (विचलित) होकर कहने लगे—'निताइ चाँद पतितपावन हैं, चिन्ता क्यों, वे आपको अवश्य आश्रय देंगे। संध्या आरती व नाम संकीर्तन हुआ। वह व्यक्ति उस रात हम लोगों के साथ प्रसाद पाकर मठ में ही रह गया, घर नहीं लौटा। अगले दिन गंगा स्नान कर आया। श्रीपाद ने आन्हिक के पश्चात् कितने ही प्रार्थना-कीर्तन करके उसे दीक्षा दी।

दीक्षा के बाद वह 'जय पतित पावन श्रीगुरुदेव, जय पतित पावन श्रीगुरुदेव कहकर रोने लगा। श्रीपाद की कृपा लाभ करके वह समस्त विलास, मद्य-मांस त्याग कर कण्ठ में तुलसी माला व तिलक धारण तथा हरिनाम जप कीर्तन, आन्हिक पूजा इत्यादि करके अपना जीवन धन्य करने लगा। उसका नाम था श्रीललितमोहन दास, वे संभ्रान्त परिवार के थे। घर पर उनकी पत्नी, पुत्र, कन्या सभी थे। परन्तु वे अधिकतर श्रील बाबाजी के संग ही रहते थे। एक कपड़े का टुकड़ा उनका परिधान था। हाथ में सर्वदा मालाझोली, मुख में हरिनाम, साधु वैष्णव के दर्शन मात्र से ही वे उन्हें भूमिष्ठ हो प्रणाम करते थे। श्रीपाद के आदेश से कभी-कभी कुछ देर के लिए घर पर जाते थे। उनकी पत्नी, पुत्र-कन्या भी श्रीपाद से दीक्षा लेकर सात्विक जीवन भगवत् सेवा में व्यतीत करने लगे।

'दर्म्महाटा' मठ पर रहते समय उन दिनों मुझे ज्वर हो गया था। श्रील बाबाजी महाशय को 'पुरुलिया' जाना था कीर्तन करने। उन्होंने श्रीललित बाबू से कहा, 'हम लोग कीर्तन करने जायेंगे, दस-पन्द्रह दिन के बाद लौटेंगे, तुम इसे अपने घर ले जाकर इसकी सेवा करके इसे स्वस्थ करना। हमारे लौटने पर तुम लोग मठ में आना।' ललित बाबू ने काम काज करना छोड़ दिया था।

संध्या के समय श्रीपाद ने उनके हाथ पर पचास रुपये देकर कहा, 'इसी से उसकी सेवा करना।' मैं रो पड़ा तो मुझे सान्त्वना देते हुए बोले, 'ललित बाबू तुम्हारी अच्छी देखभाल

करेंगे, वहीं रहना। चारु और बलाइ को भी मैं कहकर जाऊँगा। मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा। ललित बाबू मुझे अपने घर ले गये। वहाँ पर चारुदा, बलाइदा आकर मिले। बलाइदा की पत्नी बहुत ही वात्सल्यमयी माँ थीं। उन सबकी सेवा प्रीति से मैं स्वस्थ हो गया।

कुछ दिनों के बाद श्रीपाद के लौट आने पर ललित बाबू मुझे लेकर 'दर्म्महाटा' मठ लौट आये। उसके बाद वे फिर कभी घर नहीं गये—सदा के लिए श्रीपाद के आश्रय में ही रहने लगे। श्रीनीलाचल धाम, श्रीनवद्वीप धाम जहाँ-जहाँ श्रीपाद गमन करते थे वहीं पर उनकी छाया की भाँति उनका अनु-गमन करते थे।

एक दिन श्रीपाद ने उन्हें बुलाकर कहा, 'श्रीवराह नगर पाठबाड़ी' में हम लोगों का आश्रम बना है। वहीं पर तुम श्रीमन्महाप्रभु जी की सेवा के लिए रहो। मैं कभी-कभी वहाँ दर्शन करने जाया करुँगा।' 'श्रीगुरु-आज्ञा बलवान' मानकर वे बराह नगर श्रीपाठबाड़ी चले गये। जीवन के अन्तिम प्रायः पैंतीस वर्ष श्रीपाठबाड़ी में रहकर साधन भजन करते हुए व्यतीत किये। वे कहा करते थे, 'मेरा सब कुछ यहीं पर है—निताइ-गौर, जगन्नाथ, युगलकिशोर, श्रीगुरुदेव सब कुछ यहीं पर है।'

श्रीनीलरतन काका, गुरुदास, रामगति मास्टर, ननी-गोपाल, नगेन कविराज आदि भक्तवृन्द भी वहीं रहा करते थे। उस समय आश्रम पूर्ण रूप से बना नहीं था। श्रीपाद की कृपा से धीरे-धीरे नाट-मन्दिर, ग्रन्थ-मन्दिर, ठाकुर मन्दिर,

वैष्णव खण्ड इत्यादि निर्माण किया गया। श्रीपुलिन चन्द्र दे महाशय बहुत बड़े व्यापारी थे। श्रीपाद का चरणाश्रय पाकर उन्होंने आश्रम की बहुत सेवा की थी। वे श्रीपाद के बहुत ही अनुगत शिष्य थे।

श्रील बाबाजी महाशय के कृपा आदेश पर पुलिन बाबू ने बड़े ही यत्न से आश्रम का निर्माण किया था। कुछ अन्य भक्तों को भी सेवा-सौभाग्य प्राप्त हुआ था। 'कृपा के बिना जीव में कुछ करने की कोई सामर्थ्य नहीं है। जब कोई यह न समझ कर अभिमान में उन्मत्त हो जाता है तो उसे श्रीगुरु वैष्णव की करुणा से वंचित होना पड़ता है। श्रीपाद की करुणा इतनी विशाल थी कि हम जैसे पतितों को भी अपने शीतल चरणों का आश्रय प्रदान किया था। पुलिन बाबू के बाद बड़े गोपाल दास व केदार ठाकुर के ऊपर आश्रम की सेवा का भार दिया गया है।

एक दिन श्रीपाद के निकट बैठकर हम लोग उनके श्रीमुख से कितने ही सिद्धान्त वाणी श्रवण कर रहे थे। श्रीपाद कह रहे थे, 'यदि नींव पक्की हो तो उस पर मकान बहुत दिनों तक टिक सकता है। कृपा ही बलवान है। कृपा से प्रेमभक्ति की भी प्राप्ति होती है। गुरु कृपा के बिना गोविन्द भजन सम्भव नहीं।' उसी समय वहाँ पर कुछ उपाधि धारी भक्त आ पहुँचे। श्रीपाद ने उनमें से एक को पूछा, 'कहाँ से आना हुआ ?' उन्होंने उत्तर दिया—'भागवत धर्म' पर भाषण दे रहा था। लोगों की भीड़ जम गई। ठाकुर की कृपा से स्फूर्ति भी खूब हुई। मेरे भाषण से सब लोग चकाचौंध रह गये।'

श्रीपाद ने हँसकर दूसरे भक्त से पूछा, 'तुम कहाँ से आ रहे हो ?' वे बोले, 'मैं अनेक स्थानों में कीर्तन करके आ रहा हूँ। आनन्द की बाढ़ आ गई थी, ऐसी-ऐसी शब्दावलियों का स्फुरण हो रहा था जो मेरी चिन्ता के बाहर थे। सब लोग कीर्तन सुनकर नाचने लग गये थे। दो तीन औरों से भी इसी प्रकार आत्म-प्रशंसा सुनकर मुझे थोड़ा बहुत क्रोध आ गया था।

श्रील बाबाजी महाशय की कृपा से ही वे बड़े-बड़े भक्त बने थे तथापि उनके विषय में, कुछ न कहकर, उनकी करुणा-शक्ति को सीमित करके अपनी ही प्रशंसा कर रहे थे। श्रीपाद चुपचाप मृदुमंद हँसते हुए माला में हरिनाम जप कर रहे थे। मैंने हाथ जोड़कर उनसे कहा—'यदि आदेश हो तो मैं कुछ कहूँ ?' उन भक्तों के प्रति मैंने कहा, 'आप लोगों का वृत्तान्त तो सुना, अब मेरी भी सुनिये।' 'हाँ, हाँ, कहो' उन लोगों ने कहा। 'कहो क्या कहना चाहते हो' श्रीपाद बोले।

मैंने कहना शुरू किया—'जब मैं दस-बारह वर्ष का था तो हमारे गाँव में एक बार एक पागल ने दियासलाई की तीली से एक छप्पर में आग लगा दी थी। आग तुरन्त चारों ओर फैल गई, सारा बाजार जलकर राख हो गया। बाजार में लगे हुए बाँस के जलने पर फट्-फट् पटाखे जैसी आवाज हो रही थी। किसी को पता नहीं चल रहा था कि आग किसने लगाई थी। मैंने नदी के किनारे जाकर देखा उस पागल को। मुझे अपने हाथ में पकड़ी हुई दियासलाई की तीली दिखाते हुए बोला, 'क्यों क्या देख रहे हो ! माल तो मेरे हाथ में ही है कैसे

पटाखे फूट रहे हैं !' सुनते ही श्रीपाद 'हो' 'हो' करके उच्च-स्वर से हँसकर बोले, 'क्या पते की बात कही तूने ।'

मेरी बात सुनकर वे लोग चुपचाप वहाँ से चल दिये। श्रीपाद कृपाशक्ति की महिमा वर्णन कर रहे थे। हम लोगों की समस्त 'शुभ' एकमात्र श्रीगुरु कृपा पर ही आधारित है। 'अशुभ' तो तब होता है जब हम उसे भूलकर स्वतन्त्र होते हैं। अतः कृपा की अवज्ञा मुझसे सही नहीं गई। इसी कारण मैंने वह बात कही थी ।

श्रीपाद के मधुमय संग में रहकर परम आनन्द से हमारे दिन व्यतीत हो रहे थे। कलकत्ते से प्रायः कीर्तन के आमन्त्रण आते थे, श्रीपाद के संग हम कीर्तन करने जाते थे । महामहोत्सव हुआ करता था । कितने ही साधु, वैष्णव, भक्तों के दर्शन होते थे। श्रीपाद के संग उन दिनों श्रीबटु काका, हरिदा, गोपाल, रामचरण, शान्तिदा, शशीदा, कृष्णकमलदा, राधाचरणदा, रमणदा, श्रीफणि काका, नन्द काका, श्रीमधु जेठा, विश्वनाथदा, श्रीसच्चिदानन्द स्वामी, माखन, निताइ, मदनदा, हरेकृष्णदा, गौरहरिदा, मेघलालदा, दयाल, उद्धव आदि बहुत भक्त रहते थे। वे सब श्रील बाबाजी महाशय के संग-संग श्रीनीलाचल, श्रीनवद्वीप, श्रीवृन्दावन धाम व प्रभु के विभिन्न लीला स्थलियों पर कीर्तन आनन्द में भ्रमण किया करते थे ।

मैं कभी-कभी श्रीपाद के निकट आया करता था, फिर अन्यत्र चला जाता था। एकबार मेरे मन में आया—किसी एकान्त स्थान पर बैठकर भजन करूँगा, न ही किसी से मिलूँगा और न ही कीर्तन करते हुए इधर-उधर फिरूँगा। मैं काशी

धाम चला गया। वहाँ जाकर मस्तक मुण्डन करवाकर श्रीधाम वृन्दावन में श्रीमाधवदास बाबाजी महाशय के पास पहुँचा। उन्होंने बड़े ही स्नेह से मुझे अपने पास रखा। वहाँ पर स्वरूप दा व मदनदा के साथ खूब प्रीति हो गई।

कुछ दिन वहाँ पर रहकर 'राल' ग्राम में श्रीरजनीदा के पास पहुँचा। कुछ दिन वहाँ रहकर उन्हीं के संग बरसाना, नन्दगाँव, राधाकुण्ड, कृष्णकुण्ड इत्यादि दर्शन करके श्रीगौरांग दादा के पास पहुँचा। उनके मधुमय संग ने मुझे आनन्द-विभोर कर दिया। मन चंचल हो उठा। सोचा विंध्याचल की पहाड़ी पर किसी एकान्त स्थान पर बैठकर भजन करूँगा, वहाँ परि-चित कोई भी नहीं होगा।

मैं विंध्याचल पहुँचा। एक एकान्त स्थान में एक गुफा में बैठकर गुरुदत्त नाम मन्त्र जप करता। १५/२० दिन के बाद एक दिन जप करते-करते कुछ निद्राभास होने पर मैं लेट गया। सामने देखा श्रील बाबाजी महाशय आकर कह रहे हैं, 'तुम यहाँ बैठे ध्यान जप कर रहे हो ! मैं कितना अस्वस्थ हूँ। सभी मुझे देखने आये हैं। एक तुम ही नहीं पहुँचे। स्वप्न देखकर मैं हड़बड़ा कर उठ बैठा—सामने कोई नहीं था। श्रीपाद के इस प्रकार अद्भुत दर्शन पाकर मुझसे रहा नहीं गया। स्टेशन पहुँच कर कलकत्ता रवाना हो गया। मन अत्यन्त व्याकुल हो उठा। गाड़ी से उतकर ताँगे से दम्मँहाटा मठ पहुँचा—देखा, श्रीपाद बहुत ही अस्वस्थ थे। देश-विदेश से कितने ही भक्त उनके दर्शन करने आये हुए थे।

श्रीधाम वृन्दावन से श्रीगौरांगदा, श्रीरजनीदा आये हुए

थे। मैंने श्रीपाद को दूर से दण्डवत् करके उनके पास आकर बैठ गया। वे शयन किये हुए थे। मेरे प्रति दृष्टि करते हुए बोले, 'कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो ध्यान जप तो करते हैं, पर उन्हें दर्शन देने पर ही हमें उनके दर्शन मिलते हैं।' मेरे बिना और किसी को यह पहेली समझ में नहीं आई। उनकी बातों पर मुझे रोना आ गया। टप-टप आँसू बहने लगे, श्रीपाद के प्रति दृष्टिपात भी न कर सका। मृदु हँसकर बोले, 'विंध्या-चल से आ रहे हो ?' उत्तर दिया 'जी हाँ।'

इसी प्रकार उनकी अपार करुणाशक्ति मुझे आकर्षण करके ले आती थी। दो चार महीने श्रीपाद के निकट रहकर फिर चला जाया करता था। श्रील बाबाजी महाशय ने स्वयं मुझे एक करताल दी थी। उसी कृपादत्त करताल को लिये नाम कीर्तन करता हुआ भ्रमण किया करता था—खूलना, बागेर हाट, फिरोजपुर, चिटागाङ, बासण्डा, प्रभृति स्थानों में जाया करता था। कभी राँची, पटना, काशी व मधुपुर में एक दो महीने रहने के बार श्रीपाद के निकट भागा चला आता था। बहुत से लोग मुझसे मन्त्र दीक्षा लेने का आग्रह करते थे पर मैं कभी किसी को मन्त्र नहीं देता था।

एक दिन मैंने श्रीपाद से निवेदन किया, 'बहुत लोग मुझसे श्रीहरिनाम, मन्त्र दीक्षा लेना चाहते हैं, सभी को आप तक लाना भी सम्भव नहीं। आपके आदेश के बिना मन्त्र देना भी सम्भव नहीं।' श्रीपाद कहने लगे, 'श्रीभरतजी का राज्य-शासन जामते हो ? भगवान् श्रीराम की पादुका सिंहासन पर विराज-मान करके वे राज्य संचालन करते थे। यह मार्ग भी वैसा ही

है। गुरु अभिमान त्यागकर मंत्र देना होता है। सुना नहीं 'पदों' में 'तोमारि गरबे, गरबिनी हम'। अर्थात् हे गुरुदेव ! मेरा जो कुछ भी है वह सब आपही की कृपा से। निरभिमान हुए बिना गुरु बनने पर उसका पतन अवश्यम्भावी है। गुरु का धर्म आत्मप्रशंसा, आत्म गौरव वर्जित है।' उनके यह अमृतमय उपदेश पाकर मैंने बहुत लोगों को गुरु-कृपालब्ध नाम-मंत्र प्रदान किया।

कुछ दिन 'राँची' रहकर खुलना (वर्तमान बंगला देश) चला आया। उन दिनों दौलतपुर कालेज में प्रोफेसर श्रीभुवनमोहन मजूमदार पढ़ाया करते थे। मुझे उनका संग प्राप्त हुआ था। उसी कालेज का छात्र था गुरुदास। उन्हीं दिनों श्रीकृष्ण चन्द्र भटाचार्य, रमेश चटर्जी, निरंजन घोष, दुलाल गोस्वामी, मतिदा, नारायण, उपेन बाबू इत्यादि भक्तों के संग कीर्तन आनन्द में दिन व्यतीत हो रहे थे। गुरुदास, दुलाल गोस्वामी, कृष्णचन्द्र, रणजीत व बसन्त घर छोड़कर मेरे साथ चले आये। गुरुदास ने श्रीधाम वृन्दावन जाकर कठोर भजन करते हुए वहीं पर कम आयु में ही देह त्याग दिया।

श्रीपाद उसे अन्तिम समय श्रीधाम वृन्दावन में दर्शन देने आये थे। उनकी चरण-रज पाकर ही उसने प्राण छोड़े थे। वह बहुत विद्वान् व भजनशील बालक था। 'साधक कण्ठमाला ग्रन्थ उसी की कीर्ति है। ग्रन्थ सम्पादन करके श्रीपाद के नाम से प्रकाशित करवाया था। 'गौरांग चम्पू' की बंगला टीका भी उसी ने लिखी थी। उसके अप्रकट के पश्चात् वह ग्रन्थ पाठबाड़ी से प्रकाशित हुआ था। 'यशोहर' (बंगला देश) जिले का

कृष्णचन्द्र उसका मित्र था। बहुत दिनों तक ब्रजवास करने के पश्चात् पुनः घर लौटकर विवाह किया है।

आजकल वह रेलवे में बड़ा अफसर है। उसकी पत्नी, उसके पुत्र कन्या सभी श्रीपाद के चरणाश्रित हैं। गृहस्थी होने पर भी उसके हृदय में आज भी अटूट भक्ति है। दुलाल गोस्वामी माता-पिता की सेवा करने के लिए पुनः घर लौट आया। ब्रह्मचारी रहकर मास्टरी कर रहा है। इस गोस्वामी परिवार के प्रति श्रीपाद बहुत ही प्रसन्न थे। बसन्तदास नाम का एक बालक—वह कभी वृन्दावन कभी पाठबाड़ी में रहा करता था। आजकल वह श्रीधाम बृन्दावन में है।

श्रील बाबाजी महाशय अप्रकट होने से एक वर्ष पहले, पुरीधाम के झाँझपीटा मठ में दो तीन महीने थे। उड़ीसा में 'तापन' नामक एक सम्पन्न गाँव है। श्रीपाद के आदेश अनुसार हमारे एक गुरु-भ्राता श्रीलिंगराज सरदार ने पूर्व बंग से लाये हुए श्रीनिताइ गौर के विग्रह की यहाँ प्रतिष्ठा की थी। उन्होंने श्रीगुरुदेव की सेवा भी स्थापित की है। इन्हीं दिनों वे श्रीपाद को एकबार वहाँ पर ले गये थे।

पुरी के झाँझपीटा मठ में जो श्रील बाबाजी महाशय का कक्ष है वह भी उन्होंने ही अति यत्नपूर्वक बनवाया था। भक्तवाञ्छा कल्पतरु श्रील बाबाजी महाशय भक्त की इच्छा पूर्ण करने के लिए उस कक्ष में तीन महीने ठहरे थे। जिस दिन श्रीबाबाजी महाशय पुरी से कलकत्ता के लिए रवाना हुए, उस दिन आश्रम की दीवारें, मन्दिर आदि सब पसीज रहे थे।

अनेक लोगों ने हाथ लगाकर भी देखा कि दीवारों से जल चू रहा था।

गत साठ वर्षों से प्रतिवर्ष दो बार रथयात्रा व हरिदास ठाकुर तिरोभाव तिथि, में पुरी जाकर कलकत्ता लौट आते थे, परन्तु ऐसी विचित्र लीला पहले कभी नहीं हुई। पुरी में यह उनका प्रकट स्वरूप में अन्तिम आगमन था, क्या यह लीला उसी का पूर्वाभास था ! मेरा विश्वास है कि भक्त विरह में दीवारें भी रोती हैं, चाहे कोई विश्वास करे या न करे, परन्तु पाठवाड़ी के सेवक गोपालदास व अनेकों ने दर्शन किया था। वहाँ से श्रीपाद कलकत्ता में पोस्ता चले आये, और फिर पाठवाड़ी। उसके पश्चात् वे और कहीं नहीं गये।

श्रीपादके अप्रकटके छै महीने पहले मैं मधुपुरके किसी साधु के राम मन्दिरमें ठहरा हुआ था श्रीकृष्णचन्द्र भट्टाचार्य ने मुझे बुलवा लिया था। मैं उत्कंठित हो तत्क्षण चला आया। श्रीपाद ने करुणा पूर्वक निरवच्छिन्न रूप से छै महीने अपने संग रखा। उनके स्नेह व प्रीति का ऐसा आकर्षण था कि उन्हें छोड़कर कहीं भी जाना असंभव था। लीला संवरण से छै दिन पहले की बात है—मैं उनके पीछे रहकर ठाकुरजी का दर्शन कर रहा था।

श्रीपाद तुलसी मञ्च परिक्रमा, वैष्णव खण्ड में दण्डवत्, श्रीजगन्नाथ, श्रीश्रीनिताइ गौर के दर्शन व दण्डवत् करके पीछे मुड़े तो उन्होंने मुझे देखा। हठात् मुझसे बोले—'भ्रमिते-२ ए देह पतन हबे' (भ्रमण करते हुए इस देह का पतन होगा), सुनकर मैं रो पड़ा। मैंने कहा, 'आज ऐसे निदारुण वचन क्यों

कहृ रहे हैं ?' सुनकर मृदुमन्द हँसकर बोले, 'भक्तिपथ का साधन करते हुए चले जाना होगा, यदि ऐसा न हुआ तो जीवन भर मैंने क्या किया।' पुनः मुझे आश्वास देते हुए कहने लगे 'डा० नलिनी सेन महाशय के अनुसार मुझे अभी तो दस साल और रहना है।'

यह कहकर वे युगलकिशोर को दण्डवत्, श्रीभागवताचार्य के आसन पर दण्डवत्, नाट मन्दिरमें नाम की परिक्रमा, दण्डवत् करके निज भजन कुटीर में पधारे। वहाँ गुरुजनों के चित्र-पट दर्शन करने लगे, मैं भी उनके पीछे उन्हीं की परिक्रमा कर रहा था। श्रीपाद दण्डवत् करके उठ खड़े हुए।

जब मैंने भूमिष्ठ होकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया तो वे मेरी ओर देखकर बोले, 'क्यों ! और कहीं दण्डवत् न करके केवल मुझे दण्डवत् क्यों किया ?' मैं बोला, 'मैं अशक्त हूँ— जिन्होंने सब ठाकुरों को दण्डवत् प्रणाम किया, उन्हें दण्डवत् करने से क्या सबको प्रणाम करना नहीं हुआ ?' 'तुम बहुत चतुर हो' कहकर वे हँसने लगे। उनके अन्तरंग भक्तगण जैसे नगेन कविराज, पोस्ता की रानी दीदी, गोविन्द डाक्टर आदि नित्य ही दर्शन करने आते थे, उनके श्रीअंग सेवक नन्द, राजू, सत्य आदि निरन्तर उनके संग रहते थे। पर किसी को भी आभास तक न था कि दो दिन के बाद ही श्रीचरणों के दर्शन-सौभाग्य से हम सदा के लिये वञ्चित हो जायँगे।

एक वर्ष पर्यन्त श्रीपाठबाड़ी आश्रम में अवस्थान करते हुए उन्होंने श्रीहरिदास ठाकुर तिरोभाव तिथि, श्रीनरहरि सरकार की तिरोभाव तिथि आदि समस्त तिथियों का पालन वहीं पर

किया। स्वयं अप्रकट होने से एक दिन पूर्व श्रीपाद ने श्रीनरहरि सरकार ठाकुर का सूचक कीर्तन किया। उस दिन का कीर्तन विशेष था। शुरू से ही कीर्तन-आनन्द के संग प्रबल रूप से विरह-व्यथा उमड़ रही थी। समस्त भक्त मण्डली नाम तरङ्ग में सराबोर हो रही थी। उसी कीर्तन में श्रीपाद के श्रीमुख से निगूढ़ तत्त्वों का प्रकाश हुआ—'नाम नामी अभिन्न है', 'नाम, नामी व नामदाता अभिन्न हैं।'

उस दिन उन्होंने सुगम्भीर, तेजोद्दीप्त स्वर से कीर्तन किया। उस समय उनकी सत्तर वर्ष की आयु थी। कीर्तन के पश्चात् खड़े होकर उन्होंने जो मधुर, आवेगमय उद्दण्ड नृत्य व नाम कीर्तन किया वह अवर्णनीय है। उस समय कौन जानता था कि कल ही वे अप्रकट हो जायेंगे। अगले दिन (मार्गशीष कृष्णा त्रयोदशी, सन् १९५३), रात्रि के दो बजे हठात् श्रीपाद उठ बैठे और बोले, 'मैं रज पर बैठूँगा।'

श्रीपाठबाड़ी श्रीमन्महाप्रभु की विहार भूमि होने के कारण वे उसके धूलिकणा को रज कहते थे। फिर वे स्वयं ही रज पर बैठ गये। और सबको नाम करने के लिए कहा। श्रीगुरु-देव (श्रीपाद बड़े बाबाजी) व सखी माँ के चित्रपट का दर्शन करके स्वयं ही उच्चस्वर से 'भज निताइ गौर राधे श्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम करते हुए साधक देह त्याग पूर्वक, चिन्मय देह से नित्य लीला में प्रवेश किया। तभी से यही भुवन पावन हरिनाम संकीर्तन निःवच्छिन्न रूप से पाठबाड़ी आश्रम में चल रहा है।

हाय श्रीपाद के दर्शन बिना अच्छेद्य दुर्भाग्य विजड़ित जीवन हैं हमारे ? हमारे चिरसुन्दर, चिरमधुमय श्रीगुरु पाद-पद्म दर्शन से हम सदा के लिए वञ्चित हो गये। इससे बढ़कर मर्मान्तक दुःख और क्या हो सकता है। उनके मुख से अनेकों बार सुना—'कोई कहीं नहीं जाता। जिस प्रकार भगवान् श्रीगौरकिशोर की लीला नित्य है, उसी प्रकार श्रीगुरु-वैष्णवों की लीला भी नित्य है। अप्रकट होने के पश्चात् भी उनके दर्शन मिल सकते हैं, एवं उन्हें प्राप्त भी किया जा सकता है। उनसे वार्तालाप व सेवा—सभी कुछ सम्भव है।' इन्हीं वचनों का दृढ़ विश्वास ही हमारे भजन का अवलम्बन है।

श्रीगुरुदेव की अप्रकट लीला की चमत्कारी व आकर्षण शक्ति से ही आज तक भी श्रीमन्महाप्रभु की सेवा व श्रीभाग-वताचार्य की श्रीपाठबाड़ी गौरव मण्डित रूप से विराजमान है। कीर्तन, महोत्सव, समान भाव से साधु वैष्णव सेवा व सर्व-देशीय भक्तों का आगमन आदि अद्यावधि पूर्णरूपेण विद्यमान है।

आश्रम में श्रीकृष्णचैतन्य सच्चिदानन्दघन विग्रह की पूजा अर्चना, निरन्तर श्रीहरिनाम संकीर्तन सेवकों का ध्येय है। श्वेत शुभ्र वस्त्र पहने, द्वादश अंगों में प्रसादी चन्दन का तिलक धारण किये सेवक गणों का भक्तिमण्डित स्वरूप नित्य अगणित जनस्रोत को आकर्षित करता है। श्रीपाठबाड़ी का यह आक-र्षण श्रीपाद के अप्रकट लीला माधुर्य का चूड़ान्त निदर्शन है।

'जय गुरु श्रीगुरु जय गुरु श्रीगुरु'

प्रभो यह सब आपकी अप्रकट लीला का अन्तहीन वैभव है।

अहमेव परंब्रह्म सच्चिदानन्द विग्रहः।
ग्राहयामि हरो भक्ति कलौ पापहतान्नरान्॥